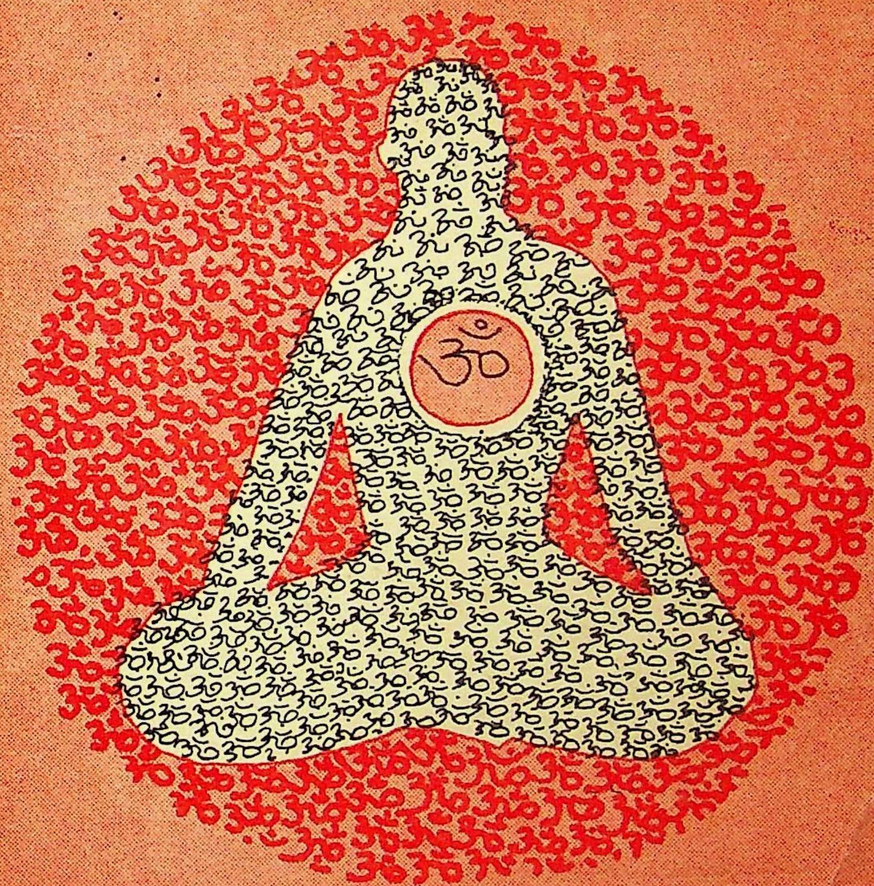


विश्वानुभूति

स्वामी रामतीर्थ प्रतिष्ठान
14, मारवाड़ी गली अमीनाबाद
लखनऊ - 226 018



स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली- भाग 4

विश्वानुभूति

'ॐ' का तात्पर्य सभी दृश्यमान, भासमान परिवेश के पीछे अधिष्ठान सत्य है। 'ॐ' शाश्वत सत्य है। 'ॐ' अविनाशी आत्मा है। यही आत्मा आप हैं; आप सच्चिदानन्द हैं, पूर्ण ज्ञान हैं, पूर्ण शान्ति हैं, आप 'ॐ' हैं।

-राम

प्रकाशक
स्वामी रामतीर्थ प्रतिष्ठान
14 मारवाड़ी गली, अमीनाबाद,
लखनऊ-226 018

प्रस्तोता
भगवत स्वरूप

प्रकाशन वर्ष- 1996

मूल्यः
रु० 35.00

आवरण
अरुण कुमार पाण्डेय

परिकल्पना
स्वामी रामतीर्थ कम्प्यूटर प्रिज्म
274/376 राजेन्द्र नगर लखनऊ- 226 004

मुद्रकः-
लखनऊ पब्लिशिंग हाउस
कैन्ट्रनमैंट रोड
लखनऊ



तमाम दुनियाँ है खेल मेरा,
मैं खेल सबको खिला रहा हूँ!

–राम

विषय - सूची

1-	प्रस्तावना	I-II
2-	राम महान थे	III-XI
3-	सत्य का मार्ग	1-38
4-	धर्म का लक्ष्य	39-64
5-	मूल अध्यात्मिक तथा मानस शक्तियां	65-85
6-	चरित्र-निर्माण का आध्यात्मिक विधान	86-101
7-	स्वर्ग का साम्राज्य	102-118
8-	'ॐ' का पवित्र मंत्र	119-138
9-	ईश्वरः अन्तस्थल में	139-160
10-	कुछ प्रश्नोत्तरः वेदान्त जिज्ञासुओं के लिये	161-182
11-	क्या किसी विशेष समाज की आवश्यकता है?	182-209
12-	मनुष्य का भ्रातृत्व	210-244



प्रस्तावना

विश्व की अनुभूति करने की प्रत्येक व्यक्ति की आकांक्षा होती है। मानव की यह जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक है कि विश्व है क्या, उसकी वास्तविक 'अस्ति' क्या है, आदि-आदि। इन प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त सरल और सुबोध है, इतना अधिक कि आपने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की होगी। केवल आवश्यकता है, वैज्ञानिक दृष्टि की, जिससे आप सम्पूर्ण विश्व का निरूपण कर सकें, यहाँ तक की सम्पूर्णता की सम्पूर्णता में अनुभूति कर सकें।

वेदान्त आपका मार्ग दर्शन करता है। यह बतलाता है कि जिस प्रकार आप किसी रसायन की परीक्षा प्रयोगशाला में करते हैं, उसी प्रकार आप विश्व की अनुभूति का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल यही है कि आप, जो प्रयोग कर्ता हैं और प्रयोगशाला,जहाँ प्रयोग होना है, पूरी तरह सुसज्जित हो और आपने प्रयोग की पूरी तैयारी सम्पन्न कर ली हो। वेदान्त आपके ऊपर कोई मत या मतान्तर नहीं थोपता है, वह तो आपसे यही अपेक्षा करता है कि आप अपने आप को जानें। जब आप स्वयं को जान लेंगे तो प्रयोगशाला में प्रयोग सम्बन्धी जो निष्कर्ष आपके सामने आयेगा, वह यही होगा कि दृष्टा तथा दृश्य, दोनों एक हैं, दोनों ही आप हैं, आप ही आत्मा हैं, आप ही ब्रह्म हैं, आप ही सर्वस्व हैं, आपसे परे कुछ भी नहीं और कुछ भी ऐसा नहीं जो आपसे परे हो।

राम का आपसे, सभी से,एक ही आग्रह है कि आप स्वानुभूति का अपने जीवन में प्रयोग कीजिये। वाचक-ज्ञान की अनुभूति से कोई सरोकार नहीं,अनुभूति का सम्बन्ध व्यवहार से है। सत्य को जानिये,सत्य का व्यवहार कीजिये और स्वयं सत्य बन जाइये। यही व्यावहारिक वेदान्त है।

स्वानुभूति के लिये राम आपको एक मंत्र देता है:- वह है, 'ॐ', जो शाश्वत है, 'ॐ', जो सच्चिदानन्द है, 'ॐ', जो सर्वत्र, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान है, 'ॐ', जो मन, वाणी, भाषा-सभी से परे है, 'ॐ', जो केवल 'ॐ' है, उसी 'ॐ' का आप हृदयंगम कीजिये, उसकी अनुभूति कीजिये और स्वयं 'ॐ' बन जाइये।

इस ग्रन्थ में सम्मिलित राम के भाषणों से आपको स्वानुभूति की प्रेरणा मिलेगी, साथ ही आप आत्म-साक्षात्कार करने में समर्थ होंगे, इसमें किंचित संदेह नहीं।

स्वामी रामतीर्थ प्रतिष्ठान अपने कृपालु पाठकों तथा संरक्षकों को 'विश्वानुभूति' का यह संस्करण समर्पित करने में गौरवान्वित अनुभव कर रहा है। यह गौरव प्रतिष्ठान का उतना ही है जितना आप सभी का। आप इस प्रतिष्ठान के हैं और यह प्रतिष्ठान आपका है, कोई द्वैत नहीं, आप अद्वय है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

गुरु-पूर्णिमा भगवत स्वरूप

३० जुलाई १६६६ मंत्री

राम महान थे !

-लाला बैजनाथ

(लाला बैजनाथ राम के समकालीन थे, राम के भक्त थे, राम का सानिध्द्र प्राप्त करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तत्कालीन समाज में लाला जी की विशेष प्रतिष्ठा थी, उन्होंने अपनी योग्यता के आधार पर न्यायाधीश का पद प्राप्त किया। उन्हें रायबहादुर की उपधि से भी विभूषित किया गया। उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व था, साथ ही वे समाज-सुधारक थे और एक लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक। अपनी 'तीन भारतीय सुधारक' पुस्तक में उन्होंने राम के बारे में लिखा है। उस लेख में लालाजी की लेखनी का भावांश कुछ इस प्रकार थाः-)

स्वामी राम से मेरा घनिष्ठ परिचय था, मैंने उनके साथ काम भी किया। राम विश्व की उन उत्कृष्ट आत्माओं में थे जो संसार को सत्य का मार्ग दिखाने के लिये कभी-कभी प्रकट हुआ करते हैं। राम ने लोगों के सामने सत्य का, व्यावहारिक वेदान्त का उच्च आदर्श रखा और इस पर अमल करने की प्रेरणा दी।

स्वामी राम का जन्म दीपमालिका की प्रतिपदा को २२ अक्टूबर १८७३ को पंजाब के मुरारीवाला गाँव में (जो अब पाकिस्तान में है) एक धर्म-परायण ब्राह्मण वंश में हुआ था। निर्धनता में पले-पुसे, आर्थिक कठिनाइयों से घिरे, विना साधन तथा पूंजी के, उन्होंने २०-२१ वर्ष की अवस्था में पंजाब यूनिवर्सिटी से एम. ए. की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर नाम कमाया। इसके बाद वे लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन

कालेज में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुये। परन्तु अधिक समय तक वे सांसारिकता में नहीं रह सके, क्योंकि उनमें सत्य की, ब्रह्म की खोज करने की लगन समायी थी।

अन्ततः उन्होंने प्रोफेसर-पद से त्यागपत्र दे दिया, कुटुम्बियों तथा मित्रों आदि का साथ छोड़ दिया और हिमालय की ओर चल दिये। उनके हाथ में उपनिषद की पुस्तक थी। हिमालय में उनके साथी थे- जंगली पशु-पक्षी, गंगा का सुरम्य सानिध्य और प्राकृतिक आकर्षक परिवेश। चाहे गर्मी हो या सर्दी या कोई मुसीबत, वे इन सब का आनन्द लेते रहे और सत्य की खोज में निरन्तर निमग्न रहने लगे। अपनी मौज-मस्ती में कभी वे कैलाश शिखर पर चढ़ते तो कभी अमरनाथ की यात्रा करते। आज यदि वे यमुनोत्री के दर्शन कर रहे हैं तो कल गंगोत्री का आनन्द उठायेंगे। वे सत्य की खोज में निरन्तर लगे थे। एक बार ऐसा हुआ कि वे आत्मानुभव के आनन्द की तुर्यावस्था में इतने अधिक डूबे गये कि उन्हें अपने शरीर का ध्यान ही नहीं रहा और उन्होंने अपने शरीर को गंगा के हवाले कर दिया। फिर क्या था? गंगा ने उन्हें गोद में उठा लिया और एक चट्टान पर उन्हें विराजमान कर दिया। अन्त में उन्हें २५ वर्ष की अवस्था में आत्म-साक्षात्कार हुआ, उन्होंने सत्य को जाना और वे परिपूर्ण ब्रह्म बन गये।

कभी-कभी स्वामी राम पहाड़ों से उतर कर मैदानी क्षेत्र में आते थे। वे लोगों को उपदेश देते, सबको आत्मवत समझते और लोगों को आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नयन के लिये प्रेरित करते। उनका तेज इतना प्रभावशाली था कि लोग बरबस उनकी ओर आकर्षित होते और उनके भक्त, प्रशंसक तथा अनुयायी बन जाते।

स्वामी राम शारीरिक चेतना से ऊपर थे। उन्हें जो भोजन मिलता वे प्रेम से खाते। गरिष्ट और स्वादिष्ट भोजन उन्हें नही भाता। जो उन्हें भेंट स्वरूप मिलता, उसको वे तुरन्त बाँट देते। वे अपने पास कुछ भी नहीं रखते। पैसा वे छूते नहीं थे, पर राम के काम में कोई व्यवधान नहीं आता था। वे ब्रह्म थे, फिर व्यवधान कैसा? राम का कहना था कि जो लोग सत्य के मार्ग पर चलने के लिये इच्छुक हैं, उन्हें उसका मूल्य चुकाना होगा, उन्हें अपने विचार शुद्ध और परिष्कृत करने होंगें और सादा जीवन व्यतीत करना होगा। राम में कोई गर्व नहीं था, वे सब के साथ समभाव थे कोई भेद-भाव नहीं था। जो कोई भी राम के संसर्ग में आया, वही उनसे मोहित हो गया, मानों उसके सारे संकट, सारी शंकायें दूर हो गयीं हों।

स्वामी राम विद्यार्थी जीवन से बड़े अध्ययनशील थे। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का शौक था। दर्शन, धर्म, तत्व, सत्य से सम्बन्धित ग्रन्थों में उनकी विशेष रूचि थी। थोड़े ही समय में उन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनों की पुस्तकों को हृदयंगम कर लिया था। उनकी जिह्वा पर वेद, उपनिषद, पुराण, व्यास की कृतियां, बुद्ध, महावीर के दर्शन, राम-कृष्ण, शंकर आदि की भाष्य पुस्तकों के मूल मंत्र उसी प्रकार रहते थे, जिस प्रकार अरबी, फारसी के महासन्तों, जैसे शम्स तबरेज, मौलाना रूम आदि के उपदेश। पश्चिमी दार्शनिकों में वे कान्ट, शोपनेहायर, फिचटे, हीगल आदि से घनिष्ट रूप से परिचित थे। कबीर, नानक, सूर, तुलसी उनके विशेष प्रिय थे। उर्दू, फारसी भाषा के वे विशेषज्ञ थे। प्रारम्भ में उन्होंने 'अलिफ' रिसाला उर्दू में प्रकाशित की थी। उनके पद्य, उनके गीत, उनके भाषण, सभी वेदान्त से सराबोर थे, वे वास्तव में स्वयं वेदान्तमूर्ति थे।

वर्ष १९०२ में स्वामी राम जापान होते हुये अमरीका पहुँचे। जापान में उन्होंने अपने भाषणों से श्रोताओं पर अद्भुत छाप छोड़ी। वे लगभग दो वर्ष तक अमेरिका में रहे। उन्होंने अपने तेज से, अपने ओज से लोगों को आकर्षित किया। अपने भाषणों में उन्होंने भारतीय सर्वोच्च दर्शन-वेदान्त का जिस प्रकार निरूपण किया, उससे वहाँ के श्रोता और विद्वान सभी प्रभावित हुये। अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति स्वमेव उनसे मिलने आये; राम ने उन्हें भारत की ओर से एक अपील भी दी। अमेरिका के प्रेस, अमेरिका के लोग राम के आकर्षण से अभिभूत रहे। अमरीका की 'ग्रेट पैसिफक रेल-रोड़ कम्पनी' के प्रबन्धकर्ता ने अपनी 'पुलमैन' कार में राम को बैठाते हुये कहा कि उनकी मुस्कराहट निर्विकार है, अद्भुत है, अद्वितीय है,और बरबस अपनी ओर खींच लेती है। अमरीका में वेदान्त का पाश्चात्य परिपेक्ष्य में व्याख्या करते हुये, सत्य का उद्घोष करते हुये, वे भारत के हित-साधन में लगे रहे।

यज्ञ के बारे में स्वामी राम ने कहा-यज्ञ का अर्थ है त्याग। यज्ञ की पुराणपन्थता से उसका अर्थ नष्ट नहीं होना चाहिये। दीनों की सेवा और रक्षा करना यज्ञ का एक उद्देश्य है। प्रत्येक भारतवासी को चाहिये कि यदि कोई उनसे पद में, धन में, विद्या में, शक्ति में छोटा है तो वे उससे उसी प्रकार प्रेम करें जिस प्रकार बच्चों से प्यार किया जाता है। यज्ञ से उसी प्रकार का उत्साह और प्रेम का प्रसाद मिलना चाहिये जिस प्रकार से बालक को माता से किसी पुरस्कार की इच्छा के बिना प्यार मिलता है। यही निष्काम यज्ञ है।

राम ने अपने निराले ढंग से लिखा-

आवश्यकता है:-

सुधारकों की,

ऐसे सुधारकों की नहीं,

जो करें दूसरों का सुधार,

वरन् आवश्यकता है

ऐसे सुधारकों की

जो करें स्वयं अपना सुधार।

आवश्यकता है:-

ऐसे सुधारकों की

भले ही जिन्हें न मिलीं हों

विश्वविद्यालय की उपाधियाँ,

पर जिन्होंने प्राप्त की हो विजय,

अपनी क्षुद्रात्मा पर, अपने अहंकार पर।

अवस्था:-

दिव्यानन्द का यौवन

वेतन:-

ईश्वरत्व

शीघ्र आवेदन भेजें:-

दीन-हीन याचना से नहीं,

वरन्

प्रतिष्ठित हों

स्वयं की परमानन्दित आत्मा में

और

आदेश दें ब्रह्माण्ड- नियामक को
अपने आदेशों के अनुपालनार्थ

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

विदेशों का भ्रमण करने के उपरान्त राम भारत लौटे। जापान और अमरीका में उन्होंने देखा कि लोग भले ही वेदान्त दर्शन से परिचित न हों, पर वे व्यावहारिक वेदान्त का अनुशीलन करते हैं। राम ने भारत में जो व्याख्यान दिये उन सभी में वेदान्त अर्थात् सत्य को व्यवहार में लाने पर बल दिया, निड़र, निर्भीक, निर्भय होकर सत्य पर ड़टे रहने का आह्वान किया। भारतीय दर्शन के उत्कृष्ट तथा पाश्चात्य दर्शन के व्यावहारिक पक्ष के समन्वित रूप को राम ने समझाया। भारत की बुराइयों, भारत के अभिषापों को दूर करने की अपील की। भारत की ज्वलंत समस्याओं का उल्लेख करते हुये राम ने कहाः-

भारत में व्यावहारिक बुद्धि की दरिद्रता के साथ-साथ यहाँ पर जनसंख्या की अधिकता है। शारीरिक श्रम से घृणा; जाति-पाँत के अस्वाभाविक भेद-भाव; विदेश-यात्राओं का विरोध और उनसे परहेज; बाल-विवाह; स्त्रियों का व्यापक शारीरिक तथा मानसिक उत्पीड़न; स्त्रियों को ज्ञान से दूर रखकर अज्ञान की अन्धकार मय कोठरियों में बाँधे रखना, आदि इस प्रकार की अन्य सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक कुरीतियाँ व्यावहारिक दृष्टि से देश के अभाव तथा कंगाली की परिचायक हैं।पूर्वजों से विरासत में मिली संस्कृति गर्व का विषय है, इसके विना काम नहीं चल सकता है। अपनी सभ्यता और संस्कृति की मूल भावना का जो

समाज त्याग करता है, वह नष्ट हो जाता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि अपनी सभ्यता और संस्कृति की विरासत के मूल तत्वों को भुलाकर केवल उसके ऊपरी आवरण, उसके दिखावे, उसके ढकोसले मात्र का ढोल पीटते रहें और गर्त में गिरते रहें। यह दुखद स्थित है। देश उन बड़े व्यक्तियों से बलवान नहीं होता, जिनके विचार छोटे हैं; देश उन छोटे व्यक्तियों से शक्तिशाली तथा बलशाली बनता है, जिनके विचार ऊँचे होते हैं। एक औसत परिवार, समग्र भारतीय राष्ट्र की अवस्था का द्योतक है। परिवार या व्यक्ति की आमदनी की कमी औंर परिवार में प्रतिवर्ष खाने वाले लोगों की वृद्धि देश की दरिद्रता तो बढ़ाती ही है, परन्तु हमारे पराभव का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि हम निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में अन्ध-विश्वास करते हैं और अपनी सामर्थ से बाहर उनमें अधिक व्यय करते हैं। यदि जनसंख्या की वृद्धि की समस्या को हल नहीं किया गया तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मैत्री की सारी चर्चा निष्फल होगी। कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों को समाप्त करना होगा, जैसे विदेश यात्रा से जाति और धर्म नष्ट हो जाते हैं। ऐसी धारणाओं को भी त्यागना होगा। यह अन्ध विश्वास भी छोड़ना होगा कि बिना पुत्र पैदा किये माता-पिता को स्वर्ग में प्रवेश नहीं मिल सकता है। विवाह पवित्र बंधन है, मधुर सम्बन्धों का प्रतीक है। विवाह से अयोग्य, असमर्थ, परान्न-भोगी संतति पैदा करना एक जघन्य अपराध है।आपको तलवार की धार पर चलकर आत्मिक शुद्धता प्राप्त करनी होगी। बिना आत्मिक शुद्धता के न तो आप वीरता प्राप्त कर सकते हैं, न ही एकता और न ही शान्ति। शिक्षा के क्षेत्र में हमारा प्रधान कर्तव्य यही है कि हम गरीबों और स्त्रियों को शिक्षा दें और समुन्नत देशों में जाकर यहाँ के युवक कृषि, उद्योग, कला-कौशल के क्षेत्र में ज्ञान

अर्जन करें और अपने उपयोगी ज्ञान तथा विद्याओं का भारत में प्रचार और प्रसार करें। यदि आपके हृदय में, विश्वास और आस्था की लौ और ज्ञान से प्रज्वलित मशाल सजीव नहीं है तो आप एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। जवानी जमा-खर्च की अपेक्षा, वाचक ज्ञान की अपेक्षा आपके लिये यह आवश्यक है कि आप प्रकृति की गहराइयों में उतरें, उन्हें समझें और तदानुसार उनको जीवन में व्यवहृत करें, आप अपने 'स्व', अपने अस्तित्त्व, अपनी आन्तरिक वास्तविकता, सच्ची आत्मा की अनुभूति करें,उसका साक्षात्कार करें, यही सच्चा जीवन है,यही अमरता है, यही 'तत्वमसि' का मूर्तिरूप बनना है।

मेरी विनम्र सम्मति में राम की चेतावनी थी मत कीजिये आत्म-अपकर्ष; जान बूझकर सिसक-सिसक कर आत्म-हत्या; संसार से बिल्कुल विलगता; संयम-शून्य और विवेक रहित वंश-वृद्धि; अज्ञानता और दासता में लिप्तता, भूतकाल का विचारहीन और निर्वलकारी संकीर्तन। वर्तमान और भविष्य का सुधार आपको करना होगा। पुराने आडम्बरों का त्याग और अन्धविश्वासों से विरक्ति यही भारत की व्यावहारिक आवश्यकता है।

आत्म-ज्ञान के साक्षात्कार से, सत्य की अनुभूति से जो चेतना, जो शक्ति, जो उत्साह पैदा होता है, उससे सभी अन्धकार, सभी अज्ञान तुरन्त पलायन कर जाते हैं। भारत की समृद्धि के लिये आत्म-ज्ञान को जीवन में उतारना, उसका व्यवहार करना ही अत्यावश्यक है।

जिस दृढ़ता से, जिस विश्वास से, जिस तेज से राम ने

सत्य को जीवन में प्रतिष्ठित किया और सरल, सुबोध, वैज्ञानिक ढंग से आत्म-साक्षात्कार की विवेचना की, वैसी बहुत कम उपदेशकों ने की हो। राम केवल उपदेशक नहीं हैं; वे सत्य के व्यावहारिक रूप हैं। यह खेद की बात है कि राम की वाणी का, जो सत्य से परिपूर्ण है, लोगों में जितना प्रसार होना चाहिये था, वह नहीं है।

जो भी हो, राम थोड़े समय तक मैदानी क्षेत्रों में रहे, तदुपरान्त अपने में मग्न होने, स्वयं का ब्रह्माण्ड से तादात्म्य स्थापित करने, मन-वाणी से परे आत्मानुभव में तल्लीन होने के लिये वे पुनः हिमालय गये। ठीक दीपावली के दिन, १७ अक्टूबर १६०६ को तेंतीस वर्ष की अल्पायु में आत्म-विभोर होकर टेहरी (उत्तर प्रदेश) के पास भिलन गंगा में 'ॐ', 'ॐ', 'ॐ', का उच्चारण कर उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया और 'ॐ' बन गये।

राम की महानता राम की है। राम में द्वैत कहाँ? इसलिये राम का पर्याय नहीं। इसीलिये राम ने कहा कि राम तो राम बनाता है, राम से कम से नहीं, राम से अधिक नहीं। राम की वाणी को जीवन में उतार कर हम सभी राम बन जायें यही मेरी श्रद्धांजलि है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

सत्य का मार्ग

भद्र महिलाओं तथा सज्जनों के रूप में
विराजमान मेरे ही आत्मन् !

जैसा समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, आज रात्रि के संबोधन का विषय है- 'सत्य का मार्ग'। यह एक ऐसा शीर्षक है जिसका थोड़ा-बहुत अर्थ पश्चिमी देशवासियों के लिये हो सकता है। परन्तु वेदान्त के दृष्टिकोण से यह एक भ्रामक शीर्षक है। 'सत्य के लिये मार्ग' अथवा 'सत्य का मार्ग' वस्तुतः स्वयं में विरोधाभास है। सत्य कहीं दूर थोड़े ही है। तब फिर सत्य के लिए मार्ग कैसे हो सकता है? सत्य तो पहले से ही आपके साथ है। सत्य तो पहले से ही आपकी आत्मा है। आप स्वयं पहले से ही सत्य में प्रतिष्ठित हैं; नहीं, नहीं, आप तो स्वयं सत्य हैं। आप ही सत्य हैं। इसलिये 'सत्य का मार्ग' जैसे सम्बोधनों अथवा प्रयोजनों का प्रयोग गलत है। ईश-चेतना का साक्षात्कार या आत्म-साक्षात्कार आपके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आपको प्राप्त करना है, वह ऐसी चीज भी नहीं है जिसकी अनुभूति करनी है, सत्य तो ऐसा है जो आपको पहले से प्राप्त है। आप स्वयं सत्य-स्वरूप हैं।

बस, आपके लिये केवल इतना ही अपेक्षित है कि आपने अपने चारों ओर इच्छाओं का जो ताना-बाना बुन रखा है और जो इच्छायें

(स्वामी राम द्वारा अमेरीका में पहली मार्च, १९०३ को दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

आपको बंदीगृह में जकड़े हुए हैं, उसे तोड़ दें। आपको केवल इतना ही करना है कि आपने जो इच्छायें की हैं, उनका ही नाश कर दें। आपको 'ईश्वर- साक्षात्कार' प्राप्त करने के उद्देश्य से 'क्रिया' शब्द के सकारात्मक अर्थ में भी कुछ कार्य नहीं करना है। आपने अपने बंदीगृह-निर्माण की दिशा में जो कुछ भी किया है, केवल उसी को नष्ट करना है। और तब आप स्वमेव ईश्वर हैं, स्वमेव मूर्तमान सत्य हैं।

परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो कोई न कोई इच्छा करते हैं, और उस इच्छा-पूर्ति के लिये कार्य करते हैं, वे समझते हैं कि उनके लिये इच्छा के जंजाल को नष्ट करना अत्यन्त कठिन है। इसलिये 'सत्य के मार्ग' के संदर्भ में हम इस जंजाल या ताने-बाने को समाप्त करने की प्रक्रिया पर विचार- विचार विमर्श करेंगे। अपने बंधनों को तोड़ने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न तो करने ही होंगे। ये बंधन क्या है? ये बंधन, ये चक्कर, ये जंजीरें अथवा ये बेड़िया क्या हैं, जो आपको बांधे हुए हैं।

आपके कान सत्य की प्रशस्ति सुनें अथवा उसकी उपेक्षा करें या अमरीकावासी और यूरोपवासी सत्य के इस कथन की अलौकिकता पर ध्यान दें अथवा न दें, सत्य तो सभी काल, सभी देश में हमेशा सत्य ही रहता है। सत्य यह है कि आपकी सभी मोह-ममता, आपके सभी राग-द्वेष, आपकी अभी अभिलाषायें वास्तव में आपके बन्धन और आपकी बेड़ियां हैं। ये आपको ईश्वर-दर्शन करने में अवरोधक हैं; ईश-दर्शन आपको नहीं करने देते हैं। वास्तव में यही आपका बंदीगृह है। आपकी

इच्छायें आपको बेड़ियों में बांधे हैं। निश्चित रूप से आप दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकते हैं। आप एक ही समय में माया और ईश्वर,दोनों को प्रसन्न नहीं कर सकते हैं। ऐसा नहीं हो सकता है कि एक ही समय में आप शरीर और उसकी वासनाओं के दास हों और उसी समय आप ब्रह्माण्ड के स्वामी बनें। सत्य का साक्षात्कार करने के लिये आपको ब्रह्माण्ड का स्वामी बनना होगा, और इच्छायें करने, अभिलाषायें करने का अर्थ होता है, इस संसार की, और शारीरिक पदार्थों की गुलामी,उनकी पराधीनता तथा उनके बंधनों को स्वीकार करना। प्रत्येक व्यक्ति ईसा मसीह बनना चाहता है, प्रत्येक व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार करने के लिये लालायित है, और प्रत्येक व्यक्ति पैगम्बर बनना चाहता है; परन्तु पहले तो ईसा या पैगम्बर बनने वाले व्यक्ति होते ही नहीं और यदि होते भी हैं तो बहुत बिरले ही, जो इसका 'मूल्य' चुकाने के लिये तैयार हों।

एक समय भारत में एक महान पहलवान और प्रसिद्ध खिलाड़ी था। वह चाहता था कि कोई नाई उसकी बांह पर सिंह का चित्र गोद दें, उसका चित्र बना दे। उसने नाई से अपनी भुजा पर एक महान तथा तेजस्वी सिंह का चित्र गोदने के लिये कहा। उसने बताया कि उसका जन्म उस समय हुआ थ., जब सिंह राशि थी, वह सिंह राशि के सीधे प्रभाव के अधीन पैदा हुआ था। इतना ही नहीं, उसे अत्यन्त वीर पुरूष माना भी जाता है।

इस पर, पहलवान की बांह पर सिंह का चित्र गोदने के लिये नाई ने ज्यों ही सुई उठाई और उसकी बांह पर थोड़ी सी सुई चुभोई, यह

पहलवान गोदने के उस दर्द को बिल्कुल सहन नहीं कर सका। यहां तक कि उसे सांस लेने में पसीना आने लगा। उसने नाई से कहा- "रूको, रूको, यह तुम क्या करने जा रहे हो?" नाई ने उत्तर दिया- "मैं तो सिंह की पूंछ का चित्र खींचने वाला था।" वास्तव में यह पहलवान गोदने के कष्ट को सहन करने में असमर्थ था, फिर भी उसने विचित्र बहाना बनाया और कहा- "क्या तुम नहीं जानते हो कि शौकीन लोग अपने कुत्तों और घोड़ों की पूंछ कटवा देते हैं। इसलिये जिस सिंह की दुम कटी हो या दुम हो ही नहीं, उसे बहुत शक्तिशाली सिंह माना जाता है। तब तुम क्यों सिंह की दुम गोद रहे हो? दुम की कोई आवश्यकता नहीं है?"

नाई ने कहा- "बहुत अच्छा, मैं सिंह की दुम का चित्र नहीं बनाऊंगा। मैं सिंह के अन्य अंगों के चित्रों को गोदना शुरू करूंगा।" नाई ने फिर अपनी सुई उठाई और उसके शरीर की खाल में थोड़ी ही चुभोई। परन्तु यह पहलवान इस कष्ट को भी नहीं सहन कर सका। और वह क्रोधित होकर नाई से बोला- "अब तुम क्या करने जा रहे हो?" नाई ने उत्तर दिया- "मैं सिंह के कानों का चित्र गोदने वाला था।" पहलवान इस बार बोला- "अरे नाई ! तुम बहुत मूर्ख हो। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि लोग अपने कुत्तों के कान कटवा देते हैं? लोग लम्बे कानों वाले कुत्तों को पसन्द नहीं करते हैं। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि जिन सिंहों के कान नहीं होते हैं, वे ही सर्वोत्तम होते हैं।" इस पर नाई रूक गया। थोड़ी देर बाद नाई ने अपनी सुई फिर उठाई और उसे बांह पर चुभोया ही था कि इस दर्द को भी वह पहलवान सहन

नहीं कर सका। वह गुस्से में आकर बोला- "अरे नाई! अब तुम क्या करने वाले हो?" नाई ने कहा-"अब मैं सिंह की कमर गोदना चाहता हूं।" इस पर पहलवान बोला- "क्या तुमने अपने देश, भारत का काव्य-साहित्य नहीं पढ़ा है? क्या तुमने भारतीय कवियों द्वारा सिंह का वर्णन नहीं पढ़ा है जिसमें उन्होनें सिंह को सदैव इस प्रकार चित्रित किया है मानो उसकी बहुत ही छोटी, पतली और नाम मात्र कमर हो। तुमको सिंह की कमर गोदने की आवश्यकता नहीं है।" अब तो नाई ने अपने रंग तथा गोदने की सुई ही एक ओर फेंक दी और उस पहलवान से कहा कि वह उसकी आंखों के सामने से ओझल हो जाय।

अब जरा देखिये, यह वह पहलवान है जो दावा करता है कि उसका जन्म सिंह राशि के प्रभाव में हुआ। यह वह व्यक्ति है जो महान कसरती, एक महान खिलाड़ी होने का दम्भ भरता है, यह वह व्यक्ति है जो अपने को सिंह कहता है। वह अपने सम्पूर्ण शरीर पर सिंह के चित्रों को गुदवाना चाहता है, परन्तु सुई की तनिक सी चुभन सहन नहीं कर सकता है। मनुष्यों में अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो ईश्वर को देखना चाहते हैं, जो वेदान्त का साक्षात्कार करना चाहते हैं, जो तत्क्षण तुरन्त ही सम्पूर्ण सत्य को जानना चाहते हैं, जो आधे मिनट में ईसा मसीह बनना चाहते हैं। परन्तु जब समय आता है कि वे अपने अन्तःकरण में सत्य का चित्र बनवायें, रंग चढ़वायें या अपने शरीर पर सत्य रूपी सिंह का चित्र गुदवायें, उसी समय वे सुई की चुभन और चुभन के कष्ट को सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। वे इसी कष्ट को झेलने में हिचकते हैं। कितना विचित्र है-"जिस वस्तु को मैं चाहता हूं,उसका मूल्य तो मैं नहीं चुकाऊंगा, परन्तु वह वस्तु मुझे अवश्य ही प्राप्त होनी चाहिये।"

यदि आप चाहते हैं कि आप सत्य तक पहुंचे और दिव्यता का साक्षात्कार करें तो यह आवश्यक है कि आप अपनी प्रिय से प्रिय इच्छाओं और अभिलाषाओं पर पूरी-पूरी तरह गुदाई करायें, अपनी प्रियतम अभिलाषाओं तथा आसक्तियों को काट कर फेंकें, आपके सभी प्रिय अंधविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों पर पानी फेर डालें। आपको सभी अधःपतन करने वाली तथा तुच्छ बनाने वाली लालसाओं से अपने को उन्मुक्त करना होगा और अपने आपको पूर्णरूपेण शुद्ध बनाना होगा। शुद्धता! शुचिता! बिना मूल्य चुकाये आप ईश्वर तक नहीं पहुंच सकते हैं। "वे लोग वास्तव में धन्य हैं जिनका हृदय शुद्ध है, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन कर सकेगें।" और हृदय की पवित्रता क्या है? हृदय की शुचिता का तात्पर्य केवल यही नहीं है कि यौन-पापों से दूर रहा जाय। इस शुचिता में तो यह भाव तो सन्निहित है ही, पर इस शुचिता का और बहुत व्यापक अर्थ है। आपको ये वचन चाहे आज प्रिय लगें या न लगें पर एक न एक दिन आपको इस सत्य के उसी एकमात्र निष्कर्ष को आज नहीं तो कल अवश्य स्वीकार करना होगा।

निष्कर्ष यह है कि चाहे आपकी आसक्ति, मोह-ममता अपने घर से हो अथवा अपनी घड़ी या अपने कुत्ते से या किसी अन्य वस्तु से, अथवा अपने माता-पिता से या अपने आत्मजों से-ये सभी आसक्तियां उस व्यक्ति के लिये, जो सत्य का साक्षात्कार करने का इच्छुक है, उस व्यक्ति के लिये, जो तत्क्षण सत्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, उस व्यक्ति के लिये, जो श्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट बनना चाहता है,

अधोगामी हैं तथा ये आसक्तियां सभी को दुर्बल बनाती हैं। यहां तक कि इस प्रकार की मोह ममता उतनी ही नींच है जितना व्यभिचार करने की आसक्ति। हृदय की शुचिता का मन्तव्य है कि आप स्वयं को इस संसार के पदार्थों से, सभी प्रकार की आसक्ति तथा लगन से उन्मुक्त रखें। त्याग का अर्थ इस उन्मुक्ति से कम नहीं है। हृदय की शुचिता से त्याग का यह मन्तव्य तो है ही। वास्तव में वे व्यक्ति धन्य हैं जिनका हृदय विशुद्व है, क्योंकि ये लोग ईश्वर का दर्शन करेगें। कृपया आप इस शुचिता, विशुद्धता को प्राप्त कीजिये और तत्काल ईश्वर का दर्शन कीजिये, ईश्वर का साक्षात्कार कीजिये।

यूनानी पुराणों में एक महिला एटलाण्टा की एक अत्यन्त सुन्दर कहानी दी गयी है। ऐसा कहा जाता है कि जो भी व्यक्ति एटलाण्टा महिला से शादी करने का इच्छुक होता था, उसके लिये यह आवश्यक था कि वह एटलाण्टा के साथ एक दौड़ की बाजी लगाये और उसे हराये। पर इस दौड़ में कोई भी व्यक्ति एटलाण्टा से आगे नहीं दौड़ सका। एक व्यक्ति ने अपने इष्ट देवता-जुपीटर से प्रार्थना की और उसने दौड़ में एटलाण्टा से आगे निकलने तथा उसे जीतने के लिये तरकीब बताने के लिये अनुनय-विनय की। इस देवता ने अपने इस भक्त को विचित्र सलाह दी। देवता ने कहा कि जिस मार्ग पर उन दोनों को दौड़ना है उस पर वह पहले से ही सोने की ईंटें बिछा दे। वास्तविकता यह थी कि जुपिटर देवता अपने इस भक्त की अन्य किसी दूसरी विधि से दौड़ में एटलाण्टा को हराने में सहायता नहीं कर सकते थे। कारण यह था कि एटलाण्टा ने सबसे महान देवता से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि वह सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक शक्तिशाली और तेज धावक बन जाय। लेकिन जुपिटर देवता के इस भक्त ने अपने देवता के परामर्श के अनुसार दौड़ के मार्ग पर चारों ओर सोने की ईंटें बिछवा दीं और उसने एटलाण्टा से अपने साथ दौड़ने की चुनौती दी। फलस्वरूप दोनों ने दौड़ना प्रारम्भ किया। यह व्यक्ति स्वभावतः एटलाण्टा से काफी कमजोर था। एक ही सेकेंड़ में एटलाण्टा उस व्यक्ति से आगे निकल गयी। परन्तु जैसे ही उसने देखा कि वह व्यक्ति काफी पीछे रह गया है और दिखाई नहीं देता है और साथ ही यह देखा कि मार्ग मे चारों ओर सोने की ईंटें बिखरी पड़ी हैं तो वह रुक गयी और उन ईंटों को उठा लिया। जब एटलाण्टा सोने की ईंटें बटोर रही थी, इस बीच जुपिटर देवता का यह भक्त उससे आगे निकल गया। तदुपरान्त एक-दो मिनट बाद एटलाण्टा ने उस व्यक्ति को पीछे पछाड़ दिया, लेकिन एटलाण्टा ने फिर मार्ग में सोने की और ईंटें देखी। इन ईंटों को उठाने के लिये वह रुकी। इतने में ही यह भक्त फिर उससे आगे निकल गया। यह क्रम कुछ समय तक यों ही चलता रहा। दौड़ समाप्त होने तक एटलाण्टा के पास सोने की ईंटों का बहुत भारी बोझ हो गया। अब, इस बोझ के साथ दौड़ना और दौड़ में उस व्यक्ति को पछाड़ना एटलाण्टा को अत्यन्त दूभर लगने लगा। अन्त में जुपिटर के इस भक्त ने एटलाण्टा को दौड़ में पछाड़ ही दिया और एटलाण्टा पर विजय प्राप्त की। परिणाम यह हुआ कि स्वयं एटलाण्टा को इस व्यक्ति से विवाह करना पड़ा और दौड़ के बीच एटलाण्टा ने जो भी सोना एकत्र किया था, वह सब का सब अन्ततःइसी व्यक्ति के हाथ लगा। इस व्यक्ति ने सब कुछ प्राप्त कर लिया।

अधिकांश लोगों के साथ ऐसा ही होता है, जो ईमानदारी के रास्ते और सत्य के मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं। जब आप सत्य के मार्ग पर चलना प्रारम्भ करते हैं तो आप देखते हैं कि आपके चारों ओर सभी प्रकार के अधःपतन करने वाले, लुभावने पदार्थ तथा सांसारिक प्रलोभन बिखरे पड़े हैं। आप उनको उठाने के लिए झुकते हैं। पर जिस क्षण आप ऐसा करते हैं तथा इन सांसारिक प्रलोभनों तथा सुख-साधनों का उपभोग करने लगते हैं, उसी के बाद आप देखते हैं कि आप सत्य की दौड़ में पिछड़ रहे हैं। वस्तुस्थित यही है कि आप दौड़ में हार रहे हैं, आप अपना मार्ग कंटकाकीर्ण बना रहे हैं और अपना सर्वस्व खोते जा रहे हैं। कृपया सांसारिक आसक्तियों तथा भौतिक प्रलोभनों से सावधान रहें। ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि आप सत्य तक पहुंचें और साथ ही सांसारिक सुखों का उपभोग भी करें। कहावत यही है कि यदि आप सत्य का आनंद उठाते हैं तो आप सांसारिक सुखों का उपभोग करने के लिए बिल्कुल ही अक्षम बन जाते हैं। सांसारिक सुखों का उपभोग कीजिये और सत्य आपके हाथ से खिसक जायेगा और आपकी पकड़ से कहीं आगे फिसल जायेगा।

राम आज आपकों 'सत्य' बता रहा है। अनेकानेक व्यक्ति राम के पास आते हैं और राम से बारम्बार अनुरोध करते हैं कि वे आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं। निस्संदेह आप इसी क्षण आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं। बस, आप अपने को सभी आसक्तियों से उन्मुक्त कीजिये और साथ ही सभी प्रकार की ईर्षा तथा घृणा का परित्याग कर दीजिये। यह ईर्षा क्या है? यह घृणा क्या? यह विपरीत

मार्ग की विरोधाभासी आसक्ति है। जब हम किसी व्यक्ति से घृणा करते हैं तो इसका कारण यह है कि हम अन्य किसी चीज से आसक्त हैं, उससे बंधे हैं। आप यहां यह प्रश्न कर सकते हैं कि हम किस प्रकार अपने पुत्रों, भाइयों, पतियों आदि से छुटकारा पा सकते हैं? देखिये, आप ऐसा कैसे करें, यह आपका काम है। लेकिन सत्य तो यही है कि सत्य या ईश्वर ही आपके पिता हैं, ईश्वर या सत्य ही आपकी माता हैं, सत्य या ईश्वर ही आपकी पत्नी है, सत्य या ईश्वर ही आपके पितामह, आपके शिक्षक, आपके गृह, आपकी सम्पत्ति, आपके सभी कुछ हैं। प्रत्येक पदार्थ से अपनी सभी आसक्तियों का विच्छेदन कर दीजिये और एक ही वस्तु, एक ही तथ्य, एक ही सत्य पर अपने को केन्द्रित कीजिये और वह है-आपकी स्वमेव दिव्यता! बस, इसी क्षण, इसी स्थल पर आप आत्मानुभूति प्राप्त कर लेते हैं।

भारतीय भाषा-संस्कृत में एक सुन्दर गीत है। यहां उसे सुनाने की आवश्यकता नहीं है। इस गीत का तात्पर्य यह है कि यदि आपके पिता सत्य के साक्षात्कार के मार्ग में आपके बाधक बनें तो उसको भी उसी प्रकार रौंद डालिये और आगे बढ़ जाइये जिस प्रकार महान भक्त प्रह्लाद ने अपने पिता के साथ किया था, उनका परित्याग कर दिया था, क्योंकि उनके पिता, सत्य के साक्षात्कार के उनके मार्ग में अवरोधक बने हुए थे। यदि आपकी माता सत्य के साक्षात्कार के आपके मार्ग के बीच में खड़ी हों तो उनका भी परित्याग कर दें। यही शिक्षा -'न्यू टेस्टामैंट' (बाइबिल) में दी गयी है। हिन्दू शास्त्र भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। अपने मां-बाप की खातिर सत्य को

प्यार करो। जिस सीमा तक आपके माता-पिता सत्य के साक्षात्कार के मार्ग में आपकी प्रगति में बाधक नहीं बनते हैं उस सीमा तक आप अपने मां-बाप को प्यार कीजिये और उनका सम्मान कीजिये। यदि आपके भाई सत्य के साक्षात्कार के आपके मार्ग में रोड़ा बनते है तो उसी प्रकार उनको भी छोड़ दीजिये जिस प्रकार विभीषण ने अपने भाई को छोड़ा था। यदि सत्य के साक्षात्कार के मार्ग में आपकी पत्नी बाधक बनती है तो उसे भी उसी प्रकार एक किनारे कर दीजिये जिस प्रकार भर्तृहरि ने किया था। यदि सत्य के साक्षात्कार के आपके मार्ग में आपके पति बीच में खड़े हो जाते हैं तो उनको भी उसी प्रकार विलग कर दीजिये जिस प्रकार मीरा ने किया था। यदि आपके शिक्षक, आपके आध्यात्मिक गुरू सत्य की अनुभूति के मार्ग में बाधक बनते हैं तो उन्हें भी उसी प्रकार से फेंक दीजिये जिस प्रकार बाली ने किया था। कारण यह है कि आपका वास्तविक सम्बन्धी, आपका सर्वश्रेष्ठ वास्तविक मित्र सत्य है, केवल सत्य है। आपके अन्य सभी सगे-सम्बन्धी और साथी क्षण-भंगुर मात्र हैं। केवल एक-दो दिन के लिये हैं ,परन्तु सत्य तो सदैव आपके साथ है। सत्य आपकी वास्तविक आत्मा है, सत्य आपके माता-पिता की अपेक्षा आपके अधिक समीप है, सत्य आपकी पत्नी, आपके पुत्रों, आपके मित्रों आदि की अपेक्षा आपके अधिक निकटवर्ती है। कृपया आप राजा-महराजाओं, माता-पिता, अपनी सन्तानों,अपने भाई, अपनी बहिन अथवा कोई भी क्यों न हो, सभी की तुलना में सत्य का सर्वाधिक आदर कीजिये।

भारत के एक महान सम्राट युधिष्ठिर के जीवन से एक अत्यन्त

सुन्दर दृष्टान्त मिलता है। उन्होनें सत्य के मार्ग का अनुशीलन किया था। कहा जाता है कि वे बर्फ में अपने शरीर को गलाने के लिये हिमालय की ऊंचाइयों पर जा रहे थे। यह एक लम्बा कथानक है। राम को सम्पूर्ण वृतान्त कहने की आवश्यकता नहीं है। किसी विशेष कारण से, किसी अत्यधिक महान प्रयोजन से, वे अपनी पत्नी और अपने चारों भाइयों के साथ हिमालय की चोटियों का आरोहण कर रहे थे। कहा जाता है कि वे पवित्रता, शुचिता के मार्ग पर, अग्रसर हो रहे थे, सत्य की खोज में आगे बढ़ते जा रहे थे, उनके पग निरन्तर आगे-आगे ही चल रहे थे, वे बढ़ते ही जा रहे थे। उनका लघु भाई उनके पीछे और उस लघु भाई के बाद उससे छोटा भाई था तथा इसी क्रम मे अन्य भाई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रहे थे, उनका मुख लक्ष्य की ओर आमुख था और दृष्टि सत्य पर केन्द्रित थी। उन्होनें सुना कि उनकी पत्नी उनके पीछे चलते हुए विलाप कर रही थीं और वह डगमगा रहीं थीं, क्योंकि वह युधिष्ठिर का साथ नहीं दे पा रहीं थी, वह अत्यधिक थकी हुई थीं और मरणासन्न स्थिति में पहुंच गयी थीं। परन्तु युधिष्ठिर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उसने अपनी पत्नी से केवल कुछ पग और आगे तेजी से दौड़ने को कहा ताकि वह उसे पकड़ सके और फिर युधिष्ठिर उसे अपने साथ आगे ले जा सकें। युधिष्ठिर ने कहा-"मेरे पास आओ, मेरे पास आओ।" परन्तु वह पत्नी-द्रोपदी तीन पग भी आगे नहीं चल सकी और अपने पति के समीप नहीं पहुंच सकीं। वह पीछे बिछुड़ती जा रही थीं और युधिष्ठिर तक पहुंचने में अपने आपको असमर्थ पाती जा रही थीं। परन्तु युधिष्ठिर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। सत्य से एक पग भी पीछे मुड़कर देखना अपेक्षित नहीं है। इसलिये सम्राट

युधिष्ठिर कदापि भी एक पग पीछे नहीं देखेंगे। पत्नी लड़खड़ा कर गिर गयीं, लेकिन इतना होने पर भी युधिष्ठिर ने सत्य से मुड़कर पीछे नहीं देखा। हो सकता है, पूर्व जन्मों में आपकी हजारों पत्नियां रही हों और यदि आपके आगामी जन्म होनें हैं तो आप यह नहीं जानते हैं कि कितनी बार आपकी शादी होगी, कितने नाते-रिश्तेदार आपके होंगे और कितने सगे-सम्बन्धियों से आपका पाला पड़ेगा। इन सम्बन्धों, इन रिश्तों की खातिर आपको सत्य से मुंह नहीं मोड़ना है। आगे बढ़ते जाइये, निरन्तर आगे चलते रहिये। कोई भी वस्तु आपको पीछे न लौटाने पाये। अपनी पत्नी के आदर की अपेक्षा सत्य के लिये अधिक आदर रखिये, दिव्यता के प्रति अधिक सम्भाव सिद्ध कीजिये। सत्य सम्पूर्ण मानव जाति को समाहित किये हुये है। दिव्यता के प्रति अधिक सम्मान प्रदर्शित कीजिये। सत्य सम्पूर्ण मानव जाति को समाहित किये हुए है। दिव्यता अर्थात् सत्य सर्वदेशीय है, शाश्वत है। परन्तु आपके सांसारिक बंधन ऐसे नहीं हैं, वे क्षणिक हैं। कृपया इस नियम को सदैव याद रखें कि जो आपके लिये वास्तव में हितकारी है, वह अवश्यमेव आपकी पत्नी या आपके सम्बन्धियों के लिये भी वास्तविक रूप में सुखकारी होगा। यदि आप ऐसा अनुभव करें कि आपके लिये अपनी पत्नी से विलग रहना वास्तव में लाभप्रद है तो याद रखें कि आपकी पत्नी के लिये भी उसी प्रकार आपसे विलग रहना वास्तव में हितकारी है। यही एकमात्र दिव्यता या सत्य आपकी पत्नी के अस्तित्व या व्यक्तित्व का भी मूलाधार है। सम्राट युधिष्ठिर की पत्नी अन्ततः धराशायी हो गयीं। लेकिन युधिष्ठिर सीधे आगे बढ़ते गये और अपने भाइयों से अनुसरण करने के लिये कहा। युधिष्ठिर के ये अनुज भी कुछ समय तक उनके साथ तेजी से

चले, परन्तु सबसे छोटा भाई युधिष्ठिर का साथ देने में अब अपने आपको असमर्थ पा रहा था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, वह थकान से चूर-चूर हो रहा था और गिरने ही वाला था कि उसने चिल्लाकर अपने सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर से कहा- "प्यारे भ्राता! प्यारे भ्राता! मैं मरने वाला हूं, कृपया मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये।" परन्तु सम्राट युधिष्ठिर ने अपने लक्ष्य, सत्य से, अपनी दृष्टि किंचित भी विचलित नहीं होने दी। वे आगे बढ़ते ही गये, निरन्तर चलते रहे। उन्होंने अपने छोटे भाई से अत्यन्त सरल भाव से कहा कि वे कुछ साहस जुटायें, इतना साहस कि वे दो-तीन पग के फासले को दौड़कर तय करके उनके पास आ जायें। इसी शर्त पर वे अपने छोटे भाई को अपने साथ ले चलेंगे। इस शर्त के अतिरिक्त और कोई शर्त नहीं है और न ही कोई कारण है जिससे उनको अपने पास खींचने के लिये युधिष्ठिर एक पग भी पीछे मुड़े। ऐसा नहीं हो सकता है। इसलिये युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। अन्ततः सबसे छोटा भाई काल-ग्रसित हो गया। कुछ समय के अन्तराल पर दूसरा भाई ,जो अब सबसे अन्त में था, चिल्लाया क्योंकि वह भी लड़खड़ा रहा था। उसने भी युधिष्ठिर से सहायता की याचना की और कहा- "भाई! प्रिय भाई! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये, मैं अब धराशायी होने वाला हूं।" लेकिन युधिष्ठिर ने भाई को पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे तो निरन्तर, अबाध गति से आगे चलते ही रहे और सत्य के मार्ग पर उनकी गति निरन्तर बनी रही।

दृष्टान्त में आगे कहा गया है कि जब युधिष्ठिर सत्य के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे, जब उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति की तब स्वयं ईश्वर,

सकल सत्य उनके सम्मुख प्रकट हुए। जिस प्रकार हम बाइबिल में पढ़ते हैं कि ईश्वर कबूतर या कपोत के रूप मे प्रकट होते हैं, उसी प्रकार हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में ईश्वर के बारे में कहा गया है कि ईश्वर, व्यक्ति विशेष के सामने देवदूत के भेष में अथवा स्वर्ग के स्वामी के रूप में प्रकट होते हैं। सम्प्रति दृष्टान्त में कहा गया है कि जब सम्राट युधिष्ठिर सत्य के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हुए तो सत्य,मूर्तिमान सत्य युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और उनसे सशरीर स्वर्ग चलने, स्वर्गारोहण करने का अनुरोध किया। आपने बाइबिल में पढ़ा होगा कि कुछ लोगों को जीवित ही स्वर्ग ले जाया गया था। यहां भी युधिष्ठिर के दृष्टान्त में कहा गया है कि सत्य ने उनसे जीवित शरीर में स्वर्गारोहण का अनुरोध किया। लेकिन जब उन्होंने अपने दाहिनी ओर दृष्टि डाली तो देखा कि एक कुत्ता उनके पास खड़ा है। तब उन्होंने कहा- " हे ईश्वर! हे सत्य! यदि आप मुझे सर्वोच्च स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं तो आपको मेरे साथ इस कुत्ते को भी सर्वोच्च स्वर्ग में चलने दें। " दृष्टान्त में आगे बताया गया है कि इस पर ईश्वर या मूर्तिमान सत्य ने कहा- "हे सम्राट युधिष्ठिर! यह नहीं हो सकता हैं। यह कुत्ता सर्वोच्च स्वर्ग में ले जाने के योग्य नहीं है, क्योंकि इस कुत्ते को अभी कई योनियों में से गुजरना है, इस कुत्ते को मनुष्य योनि में से गुजरना है और सही ढंग से जीवन-यापन करना है, उसे विशुद्ध, निष्कलंक मनुष्य की भांति रहना है। तब उसे किस प्रकार सशरीर सर्वोच्च स्वर्गारोहण की अनुमति दी जा सकती है? आप सशरीर सर्वोच्च स्वर्ग में पदापर्ण करने के योग्य हैं, परन्तु यह कुत्ता नहीं।" इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया-"हे सत्य! हे ईश्वर! मैं यहां आपके लिये आया हूं, स्वर्ग या बैकुंठ प्राप्त

करने की लालसा से नहीं। यदि आप मुझे सर्वोच्च स्वर्ग ले जाना चाहते हैं और वहां मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं तब आपको मेरे साथ इस कुत्ते को अवश्यमेव ले जाना होगा। मेरी पत्नी मेरा साथ नहीं दे सकी, वह सत्य के पथ पर डगमगा गयी। मेरे सबसे छोटे भाई ने भी मेरा साथ नहीं दिया, वह भी सत्य के पथ पर लड़खड़ा गया। मेरे अन्य भाई भी मेरे साथ पग से पग मिलाकर नहीं चल सके; उन सभी ने मेरा साथ छोड़ दिया, उन सभी ने अपने आपको प्रलोभनों के वशीभूत बनाया, वे सभी मेरे साथ नहीं चल सके। परन्तु इस कुत्ते को देखिये। केवल यही है जो मेरे साथ यहां तक आ पाया है। ध्यान से इस कुत्ते पर विचार कीजिये। यह मेरे कष्टों में भागीदार बना, मेरे संघर्षों में मेरा सहयोगी था, मेरी लड़ाइयों में कंधे से कंधा मिलाकर यह खड़ा रहा, मेरे कष्टों में इसने मेरा सहयोग किया, इसने मेरे साथ परिश्रम किया। ऐसा है यह कुत्ता। यदि इस कुत्ते ने मेरी कठिनाइयों में, मेरे कठिन संघर्षों तथा युद्धों में मेरा हाथ बटाया तो उसे मेरे साथ स्वर्ग का उपभोग करने से वंचित करने से क्यों रोका जाय? यदि आप इस कुत्ते को स्वर्ग या बैकुण्ठ के उपभोग में मेरे बराबर का सहभोगी नहीं बनाते हैं तो मैं आपके उस स्वर्ग में कदापि भी पग नहीं रखूंगा। यदि आप इस कुत्ते को मेरे साथ जाने की अनुमति नहीं देते है तो मेरे लिये आपके स्वर्ग का कोई अर्थ नहीं है। वह निरर्थक है।" इस दृष्टान्त में आगे कहा गया कि मूर्तिमान सत्य ने - ईश्वर ने-एक बार पुनः सम्राट युधिष्ठिर से कहा- "कृपया मुझसे यह अनुरोध मानने का आग्रह न करें। मुझसे आप कुत्ते को अपने साथ ले जाने के लिये न कहें।" इस बार सम्राट युधिष्ठिर ने कहा- "हे ब्रह्म! मुझसे परे हो, आप न तो मूर्तिमान सत्य हैं और न ही ईश्वर। आप कोई दानव हो

सकते हैं, आप ईश्वर या सत्य नहीं हो सकते, क्योंकि यदि आप सत्य होते तब आप क्योंकर अपने सामने, अपनी उपस्थिति में अन्याय होने की अनुमति देते? क्या आपने इस बात पर विचार नहीं किया कि यदि आप केवल मात्र मुझे ही स्वर्ग के आनन्द का उपभोग करने देते हैं और इस कुत्ते को मेरे आनन्द में सहभोगी बनने की अनुमति नहीं देते हैं तब तो आप इस कुत्ते के प्रति अन्याय ही करते हैं जिसने मेरे साथ कष्टों को झेला है। यह मूर्तिमान ईश्वर या सत्य के लिये शोभा नहीं देता है।" इस दृष्टान्त में स्पष्ट किया गया है कि तदुपरान्त मूर्तिमान सत्य या ईश्वर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये और तत्काल ऐसा हुआ कि वह कुत्ता न रह गया, उसका रूप ही बदल गया। और कोई नहीं थे वे तो थे परम शक्तिशाली, सर्व प्रतिभा-सम्पन्न परमेश्वर। इस प्रकार युधिष्ठिर की परीक्षा ली गयी थी और उनको परखा गया था और अन्तिम परीक्षा के दौर में, अन्तिम परख में युधिष्ठिर पूर्णरूपेण सफल सिद्ध हुए।

यही तरीका है, यही विधि है, जिसके अनुसार आपको सत्य के मार्ग पर चलना है। यहां तक कि यदि आपके सर्वाधिक प्रियतम तथा निकटतम साथी और वे व्यक्ति भी, जो आपके सबसे नजदीकी रिश्तेदार हैं, सच्चाई के मार्ग में आपके साथ पग से पग मिलाकर नहीं चल सकें तो कृपया आप ऐसे लोगों को अपना मित्र न मानिये। पर यदि एक कुत्ता भी सच्चाई के मार्ग पर आपका साथ देता है तो यही कुत्ता ही आपके लिए सर्वाधिक निकटतम तथा प्रियतम होना चाहिये। इस प्रकार आपको चाहिये कि जो लोग सच्चाई के मार्ग पर आपका साथ दें उन्हें ही आप अपने मित्र बनायें और उन लोगों को अपना मित्र न

चुनें जो आपकी सुप्त दुष्ट प्रकृति से लाभान्वित होने के लिए लालायित हों। यदि आप इस सिद्धान्त के अनुसार अपने साथियों का चयन नहीं करते हैं और आप अपनी सम्भावित दुष्ट प्रकृति से दूसरों को लाभ उठाने देते हैं तो निश्चित मानिये कि आपके भाग्य में दुख-दारुण्य तथा भयंकर पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं लिखा है।

एक हिन्दू महात्मा के बारे में यह अनोखी कहानी प्रचलित है। वह भूखा रास्ते में चल रहा था। आप जानते है कि भारत में साधु -सन्यासियों को जब क्षुधा लगती है तो वे पहाड़ों से नीचे उतरते हैं और विभिन्न -मार्गों पर चलते हैं तथा अपने शरीर के लिए भोजन की याचना करते हैं। वैसे ऐसे बहुत कम अवसर आते हैं जब वे सड़कों पर निकलते हों। सामान्य रूप से वे शहरों के बाहर जंगलों में निवास करते हैं और अपना सम्पूर्ण समय ईश्वर-साधना तथा ईश-चेतना में निमग्न होकर व्यतीत करते हैं। जब इस भूखे सन्यासी को भोजन प्राप्त हो गया तो वह वापस जंगल लौट गया। यदि राम भी इसी दृष्टि से कुछ भोजन प्राप्त करता है तो यही पर्याप्त कारण है कि आप राम को क्षमा करें। एक बार इस भूखे सन्यासी के लिए एक महिला भोजन लेकर उसके सम्मुख उपस्थित हुई। इस सन्यासी ने अपने रूमाल में दी गयी रोटी बांध ली और उस घर से चल दिया तथा जंगल में लौट गया। भारत में साधु-सन्यासियों की यही प्रथा है। जंगल में जाकर इस सन्यासी ने वह रोटी पानी में भिगोई और उसे गीला करके खा लिया। अगले दिन भी यह सन्यासी पुनः इसी मार्ग पर अपने नियत समय पर निकला। इस बार भी यही महिला उसके सामने आई और इस बार उसने अत्यन्त

स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन उसको भेंट किया, भोजन लेकर यह सन्यासी वापस चला गया।

तीसरे दिन भी यही महिला इस सन्यासी के लिए बहुत ही अच्छा और स्वादिष्ट भोजन लेकर उसके सामने उपस्थित हुई। परन्तु जिस समय यह महिला इस सन्यासी को भोजन भेंट कर रही थी, वह यह कहे बिना न रह सकी- "महात्मन्! मै आपकी बाट जोह रही थी। आपकी प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़े-खड़े मेरी तो आंखें दुखने लगीं थी। आपके नेत्रों ने तो मुझे मोहित ही कर रखा है।" ये शब्द अनायास ही इस महिला के मुख से निकल गये। यह सन्यासी वापस चला गया। उसने दूसरे घर के दरवाजे खटखटाये और वहां से उसने भोजन प्राप्त किया। यह सन्यासी जंगल लौट आया और पहली महिला ने, जिसने अपना प्रेम व्यक्त किया था और भोजन दिया था, उसने उसे नदी में फेंक दिया और दूसरे दरवाजे पर महिला से जो भोजन उसे मिला था, उसको उसने खा लिया। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि अगले दिन उसने क्या किया होगा? उसने अत्यन्त गर्म लोहे के सूजे लिये और अपनी आंखों में उन्हें घुसेड़ दिया। उसने इन आंखों को निकालकर एक रूमाल में लपेट लिया। और छड़ी के सहारे अत्यन्त कठिनाई से सड़कों को टटोलते-टटोलते हए वह सन्यासी उस महिला के घर के दरवाजे के पास पहुंचा जिसने उसके प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति की थी। वहां उस सन्यासी ने अनुभव किया कि यह महिला बड़ी बेचैनी से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। इस सन्यासी की आंखें जमीन पर गड़ी थी। इस महिला ने यह दृश्य नहीं देखा था कि इस सन्यासी ने अपनी आंखें ही निकाल ली

हैं। जब यह महिला इस सन्यासी के लिए अत्यन्त मधुर तथा स्वादिष्ट भोजन लेकर आयी तब इस सन्यासी ने महिला को यह कहकर अपनी निकली हुई आंखें भेंट की कि "हे माता! हे माता! इन आंखों को स्वीकार कीजिये क्योंकि इन आंखों ने आपको मोहित कर लिया था। और इनसे आपको अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़े! आपको इन आंखों को अपने पास रखने का पूरा अधिकार है। माता जी! आप इन आंखों को चाहती थीं। अब इनको रखिए, इनको प्यार कीजिए और इनसे आनन्द उठाइए। जो भी आप चाहें आप इन आंखों से काम लें, उनका उपयोग करें, परन्तु भगवान के लिए, कृपा- करुणा की खातिर, मेरी प्रगति में अवरोधक नहीं बनिये, मेरी प्रगति को पीछे न ढकेलिये। कृपया मुझे सत्य के मार्ग पर लड़खड़ाने से बचाइये।"

प्रिय आत्मन्! अब आप आश्वस्त हो सकते हैं कि यदि आपके अभीष्ट मार्ग में आपके नेत्र बाधक बनें तो उन्हें भी निकाल बाहर कर दीजिये। इसकी अपेक्षा कि आपका सम्पूर्ण शरीर अन्धकार में घुट-घुटकर समाप्त हो, यह कहीं अधिक श्रेयस्कर है कि आपका शरीर नेत्रविहीन ही रहे। यही रास्ता है, यही उपाय हैं।

यदि आपके नेत्र सत्य के साक्षात्कार के मार्ग में रोड़ा बनते हैं तो उन्हें निकाल बाहर कर दीजिये। यदि आपके नेत्र आपको प्रलोभन-ग्रस्त करते हैं और आपको पीछे ढकेलते हैं तो उन्हें भी काटकर फेंक दीजिये। यदि आपकी पत्नी, धन, सम्पत्ति या अन्य कोई वस्तु आपके मार्ग में बाधक बनते हैं तो उन्हें भी परे फेंक दीजिये।

क्या आप प्रेम के उसी भाव से सत्य को प्यार कर सकते हैं जिस भाव से आप अपनी पत्नी और सम्बन्धियों से प्रेम करते हैं? क्या आप उसी उत्साह तथा लगन से दिव्यता, आत्मा अथवा आत्म-साक्षात्कार से प्यार कर सकते हैं जिस उत्साह तथा लगन से आप अपनी पत्नी को प्यार करते हैं? जिस प्यार को आप अपनी पत्नी के प्रति प्रदर्शित करते हैं, क्या उसका आधा भी प्यार आप ईश्वर को दे सकते हैं? यदि आप ऐसा कर सकते हैं तो इसी क्षण आप सत्य का साक्षात्कार कर लेंगे। आप ईश्वर की अनुभूति कर लेगें।

जब आप सच्चाई के मार्ग पर चलना प्रारम्भ करेंगे और उन कतिपय प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर लेगें जो आरम्भ में आपको मोहित करने के लिये उपस्थित होते हैं, यदि आप साधारण प्रलोभनों को जीत लेंगे तो आप उस समय क्या देखेंगे? आप यह अनुभव करेंगे कि सत्य का मार्ग पूर्णतः खुरदरा और सौन्दर्य विहीन नहीं है, यह मार्ग पूरी तरह बीहड़ नहीं है। लोग कहते हैं कि सत्य का मार्ग सुई की नोंक से भी तंग है। वेदों में उल्लेख है कि सत्य के मार्ग की धार उतनी ही तेज है जितनी तलवार की। पर यह धारणा पूर्ण सत्य नहीं है। प्रारम्भ में यह मार्ग-यह रास्ता-अत्यधिक तंग तथा तेज धारवाला प्रतीत होता है, परन्तु जब आप साधारण प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर लेंगे, तब आप देखेंगे कि यह मार्ग आशातीत रूप से अत्यन्त सुन्दर तथा अत्यधिक सरल है। आप यह भी अनुभव करेंगे कि सम्पूर्ण प्रकृति आपकी सहायता के लिये तत्पर है और हर वस्तु आपकी पक्षधर है। ये कठिनाइयां, ये प्रलोभन, ये बाधायें, ये संघर्ष तथा विरोध केवल आपको

डराते-धमकाते हैं। ये केवल आपको भयभीत तथा विचलित करते हैं, परन्तु वास्तव में ये आपको कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं। यदि आप इनसे भयभीत न हों तथा उनके डर को निकाल बाहर कर दें तब आप अनुभव करेंगे कि ये सभी कठिनाइयां नाममात्र दिखावे की थीं, ये कठिनाइयां और प्रलोभन दिखाने भर की थीं; ये तथाकथित कठिनाइयां और प्रलोभन लुभाने मात्र के थे। आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि कठिनाइयों और प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करने पर सम्पूर्ण प्रकृति आपका साथ देने, आपका पक्ष लेने के लिये व्याकुल है, सम्पूर्ण सृष्टि आपके पैर चूमने के लिये तत्पर है। आप यही अनुभव करेंगे।

एक महान हिन्दू धर्म ग्रन्थ-रामायण में, जिसकी ख्याति 'इलियड' जैसी है, राम की कथा का वर्णन किया गया है। राम भारत के ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के महानतम नायक थे। जब वे सत्य की खोज में, सत्य का अनुसंधान, सत्य का साक्षात्कार करने के लिये निकले तो सम्पूर्ण प्रकृति ने उनको अपनी सेवायें अर्पित कीं। रामायण में कहा गया है कि बन्दरों ने राम की सेना संगठित की और गिलहरियों ने समुद्र की खाड़ी पर पुल बनाने में उनकी सहायता की, पक्षी भी, जटायु भी उनके शत्रु पर विजय प्राप्त कराने में उनका पक्ष लेने, उनकी सहायता करने में आगे आये। कहा जाता है कि पाषाणों ने भी राम को अपनी सेवायें समर्पित की। पत्थर अपना स्वभाव ही भूल गये। जब पत्थरों को समुद्र में फेंका गया तब वे डूबने के बजाय बोले- "हम पानी में बहेंगे, ऊपर इतरायेंगे जिससे सत्य के पक्ष को आगे बढ़ाया जा सके।" कहा जाता है कि वायु, वातावरण राम का पक्ष ले रहे थे, अग्नि ने

उनकी सहायता की, हवाओं तथा झंझावातों ने राम का साथ दिया। अंग्रेजी भाषा में एक कहावत है कि हवा-पानी हमेशा वीर के लिए हैं। जब आप निरन्तर लक्ष्य प्राप्ति में संलग्न हों और जब आप प्रारम्भिक तथाकथित कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लें तब समग्र प्रकृति आपके पक्ष में खड़ी होती है। यदि आप आरम्भ में ही प्रलोभनों तथा संघर्षों को जीत लें तब तो सारी प्रकृति आपकी सेवा करने के लिये बाध्य है। आप सत्य पर निरन्तर डटे रहें और तब आप अनुभव करेंगे कि आप किसी साधारण संसार में नहीं रह रहे है। यह संसार आपके लिये चमत्कारों का संसार होगा, विचित्र चमत्कार आपके चारों ओर चक्कर लगायेंगे। यदि देवतागण आपकी आगामी प्रगति में अनुचरों की भांति आपके सामने उपस्थित नहीं होते हैं तो उन्हें धिक्कार है। क्योंकि प्रकृति तो ब्रह्माण्ड के स्वामी की सेवा के लिये अत्यधिक आतुर है। यदि आप सत्य पर डटे रहें, उस पर आरूढ़ रहें तो आप ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, सम्पूर्ण विश्व के पति हैं।

अब राम आपको एक ऐसे व्यक्तित्व के बारे में, जो राम की दृष्टि में संसार के एक महानतम व्यक्ति थे, जो एक महान सन्त थे, उनकी जीवनी का उल्लेख कर अपना यह व्याख्यान समाप्त करेगा। इस महान सन्त का नाम था शम्स तबरेज़। इनका जन्म अनोखी परिस्थितयों में हुआ था। उनकी यह कहानी सच्ची है या झूठी है,हमको इससे कोई लेना-देना नहीं,परन्तु निश्चय ही इसमें कुछ न कुछ सत्य निहित है। उनके पिता के बारे में कहा जाता है कि एक समय वे अपने देश के निर्धनतम व्यक्ति थे। सबसे अधिक गरीब इस व्यक्ति ने अपना जीवन पूर्णतः

ईश-चेतना में समर्पित किया था। वे भूले हुए थे कि उनके शरीर ने कभी जन्म लिया था। वे पूरी तरह विस्मृति की अवस्था में थे कि कभी उनका व्यक्तित्व इस संसार में था भी। उनके लिये यह संसार कभी भी कोई संसार नहीं था। वे ईश्वर थे, पूर्ण दिव्यात्मा थे।

आप देखेंगे कि जब किसी मनुष्य का शरीर ही सिर से लेकर पैर तक एक ही विचार में समाहित हो तब उसके शरीर के प्रत्येक रोम से यही विचार-ईश-चेतना का विचार,प्रकट होता है। कहा जाता है कि जब यह व्यक्ति सड़कों पर चलता था, लोग उसके शरीर के रोम-रोम से यही गीत निकलते सुनते थे- "हक़, अनलहक़"। इसका तात्पर्य यह है कि-"ईश्वर! मैं ईश्वर हूँ।" उसके होंठों पर सदैव यही गीत रहता था- "अनलहक़, अनलहक़"- अर्थात् "मैं दिव्यात्मा हूं, मैं दिव्यात्मा हूं।" साधारण लोग इस व्यक्ति के चारों ओर एकत्र हो जाया करते थे। वे इसको मौत के घाट उतारना चाहते थे। उन्होंने उस पर कुफ्र (ईश्वर के विरूद्ध विद्रोह) का आरोप लगाया। यह व्यक्ति अपने आपको ईश्वर क्यों कह रहा है? परन्तु वे तो स्वयं दिव्यात्मा थे, उनके लिये उनका शरीर कोई शरीर नहीं था, यह संसार भी संसार नहीं रह गया था। जब 'अनलहक़' शब्द उनके ओंठो से अपने आप निकलते थे तो इसके बारे में उन्हें कोई चेतना ही नहीं रहती थी । जब कोई मनुष्य सोया हुआ होता है तब वह अपने आप खर्राटे लेने लगता है, उसे इन खर्राटों का पता ही नहीं होता। इसी प्रकार वे शारीरिक चेतना से विलग दिव्यता में पूर्णतः तल्लीन थे। और यदि 'अनलहक़ ' जैसे शब्द उनके ओंठों से निकलते थे तो वे उस व्यक्ति के खर्राटे लेने के

समान होते थे जो नींद में सोया हुआ हो। लेकिन लोग तो उसकी हत्या करना ही चाहते थे। परन्तु इस व्यक्ति को इससे क्या लेना-देना, कौन उसको मार सकेगा? आप तो केवल शरीर की ही हत्या कर सकते हैं, परन्तु उसकी दृष्टि में उसका शरीर कभी अस्तित्व में था ही नहीं। उसके शरीर की हत्या कर दीजिये, पर इससे उसे कौन सा दर्द होगा?

कहा जाता है कि इस व्यक्ति के शरीर को सूली पर चढ़ा दिया गया था। कदाचित आपको मालूम न हो कि शरीर को सूली पर चढ़ाना एक आसान काम है, परन्तु यहां तो सूली से भी भयानक और कष्टप्रद तरकीब को अपनाया जाना था। इसके लिये लोहे की एक लम्बी छड़ का उपयोग गया, जिसका आखिरी सिरा सुई की भांति अत्यधिक नुकीला था। इस व्यक्ति का हृदय लोहे की इस छड़ की ऊंची नोंक पर रख दिया गया, क्योंकि सुई की भांति लोहे की छड़ के नुकीले छोर-'किनारे' से इसके हृदय का विच्छेदन करना था। उन दिनों किसी व्यक्ति को मौत के घाट उतारने का यही तरीका था। आप देखेंगें कि यह तरीका सूली से भी कहीं अधिक दर्दनाक और भयंकर है। इस व्यक्ति के शरीर को इसी प्रकार की अत्यन्त भयंकर सूली पर रख दिया गया। कहा जाता है कि जब इसके शरीर को इस प्रकार बनायी गयी सूली पर चढ़ाया गया तो इस व्यक्ति के मुख मंडल पर अनुपम तेज प्रकट हो रहा था और उसके शरीर के प्रत्येक रोम से वही मधुर संगीत हर समय निकल रहा था-'अनलहक़-अनलहक़'-अर्थात् 'मैं ईश्वर हूं, मै ईश्वर हूं, मैं दिव्यता हूं, दिव्यता ही मै हूं।' शरीर मर जाता है, पर उसके लिये इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आप यहां परिलक्षित

करेंगें कि यदि सत्य की खातिर आपको शरीर का परित्याग भी करना पड़े तो उसका त्याग कर दीजिये। यह आखिरी आसक्ति है जिसे तोड़ा जाना है।

सत्य के लिये सांसारिक आसक्तियों का क्या अर्थ है? क्योंकि सत्य की खातिर आपको न केवल सांसारिक आसक्तियों को छोड़ना है, अपितु यदि शरीर के परित्याग की आवश्यकता हुई तो उसका भी त्याग करना है। यही विधि है जिसके अनुसार आपको सत्य के मार्ग पर चलना है। यहां यह ध्यातव्य है कि जब यह महापुरूष लोहे की छड़ के नुकीले छोर पर लटक रहा था, उस समय उसके शरीर से खून की कुछ बूंदें एक नवयुवती ने एकत्र कर लीं। इस नवयुवती ने, जिसका विश्वास भी उसी प्रकार था जिस प्रकार का उस महात्मा का था, इस नवयुवती ने जिसकी विचारधारा भी उसी प्रकार की थी जिस प्रकार उसके गुरू की थी, उसने उस महात्मा के रक्त की उन किंचित बूंदों का पान कर लिया। लोग कहते हैं, इससे उसने गर्भ धारण कर लिया। यह घटना सत्य हो अथवा झूठी, इससे हमें कुछ भी लेना-देना नहीं है। वेदान्त के अनुसार यदि ईसा मसीह 'निष्कलंक गर्भ' से उत्पन्न हो सकते हैं तो यह इस गर्भ के बारे में भी सत्य हो सकता है। क्योंकि यह महामानव किसी भी अर्थ में ईसा मसीह से कम नहीं था, वास्तव में अनेक अर्थो में वह ईसा मसीह से भी अधिक महान था। इस नवयुवती ने एक बालक को जन्म दिया जो सन्त था और जिसके बारे में राम आप लोगों को कुछ बताना चाहता है। अपने जीवन के अध्यारम्भ से ही, अपने बाल्यकाल से ही वह पूर्ण दिव्यात्मा था, यहां तक कि वह अपने पिता

से कहीं आगे था। आप अवश्य विश्वास करें कि एक ऐसी महान पुस्तक भी है जो एक महान कृति है, जो इस नायक, इस सन्त के ओंठों से निकली है। इस महापुरूष ने कोई लेखनी नहीं उठाई और न ही लेखन-कार्य किया। परन्तु कहा यह जाता है कि उनके माध्यम से सदैव काव्य ही निर्गत और निर्झर होता था। जो कुछ भी वे बोलते थे वह सब कविता ही होती थी, उनका कथन बस काव्य ही था। परन्तु वह किस प्रकार की कविता थी? वह केवल तुकबन्दी, भौंडी, अनर्गल कविता नहीं होती थी, वरन् कविता के वास्तविक अर्थ में वह सच्चा काव्य ही था। वह काव्य केवल ईश्वर-चेतना का द्योतक था, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह काव्य दिव्य विचारों से ओत-प्रोत था। यदि शब्दों को सोने में तौलना सम्भव हो तो इस काव्य का प्रत्येक शब्द सोने में तौलने के योग्य है।

इस महामानव के बारे में एक बहुत ही विचित्र तथ्य का उल्लेख किया जाता है। एक बार इनके पास कुछ व्यक्ति आये जो किसी प्रकार के तमाशे से, आप कह सकते हैं सर्कस से या इसी प्रकार के अन्य प्रदर्शन से, सम्बन्धित थे। हुआ यह था कि इन लोगों ने वहां के बादशाह के सामने अपना प्रदर्शन प्रस्तुत किया। बादशाह इन लोगों से अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने इनाम में इन लोगों को दस हजार रूपये दे दिये। इसके बाद बादशाह को इस पर पश्चाताप हुआ। बादशाह ने यह उचित नहीं समझा कि वह उनके बनावटी प्रदर्शन मात्र के लिये दस हजार रूपये प्रत्येक रात्रि लुटाये। इसलिये उसने हजारों रूपयों को वापस लेने के उद्देश्य से एक बहाना ढूंढ निकाला। उसने

इन लोगों से कहा कि वे शेर के भेष में उसके सामने उपस्थित हों और यदि बादशाह को उनके द्वारा प्रस्तुत शेर का प्रदर्शन रूचिकर और आनन्ददायक लगा तो वह अभी तक दिये गये इनामों से भी बहुत अधिक बड़ा इनाम उन लोगों को देगा। पर यदि बादशाह को उनका प्रदर्शन पसन्द नहीं आया तो वह उन पर जुर्माना कर उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर लेगा। ये लोग ठीक ढंग से शेर का प्रदर्शन नहीं कर सके, वे शेर का भेष नहीं धारण कर सके अथवा शेर की शक्ल के रूप में अपने को नहीं ढाल सके और बादशाह को प्रसन्न नहीं कर सके। आप लोगों को मालूम ही होगा कि भारत में कुछ ऐसे भी आदमी हैं जो सभी प्रकार के भेष धारण कर सकते हैं और पशुओं के रूप में प्रकट हो सकते हैं। वे ऐसा बहुरूप बनाते हैं कि जिस पशु का भेष धारण करते हैं, हर प्रकार से वे उसी पशु के रूप मे दिखाई दें। परन्तु ये लोग शेर का भेष नहीं धारण कर सके और न ही उस प्रकार का प्रदर्शन कर सके।

ये दुखी लोग इस महान सन्त के पास आये और उनके सामने रोने-बिलखने लगे तथा आंसू बहाने लगे। इस कहानी में आगे बताया गया है कि चूंकि इस सन्त का, इस महात्मा का सारे ब्रह्माण्ड से तादात्म्य था, उसका सम्पूर्ण प्रकृति से सांमजस्य था, सभी के साथ उसकी एकता तथा अभेदता थी, इसलिये उसका हृदय स्वाभाविक सहानुभूति से ओत-प्रोत हो गया। इस सन्त ने यकायक इन लोगों से कहा कि वे पूरी तरह से प्रसन्न हों, क्योंकि वे स्वयं शेर के रूप में प्रकट होंगे और शेर का प्रदर्शन प्रस्तुत करेंगे।

कथा में आगे बताया गया कि अगले दिन जब बादशाह और उसके दरबारी सभी खड़े थे और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब यह व्यक्ति शेर का भेष और रूप धारण करके आयेगा, उसी समय यकायक, मानों जादू की छड़ी से, राज-दरबार में बनाये गये गढ़ढ़े में एक वास्तविक शेर कूद पड़ा। यह शेर तुरन्त ही दहाड़ने लगा और दहाड़ता ही गया। उसने बादशाह के पुत्र को उठाया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस शेर ने अन्य बच्चों को भी उठाया और उन्हें आसमान में उछाल दिया। आप यहां ध्यान दें कि यह वह महामानव था जो पूर्णतः अपनी वास्तविक दिव्यता में प्रतिष्ठित था और स्वमेव ही ईश्वर था। इस महापुरूष के लिये यह भाव कि मैं यह तुच्छ तथा नन्हा सा शरीर हूं, भूतकाल के गर्भ में कभी का समाहित हो चुका था। यह विचार उसके लिये बिल्कुल निरर्थक हो गया था। वह तो स्वमेव दिव्यात्मा था और वह ईश्वर ही था जो शेर के रूप में प्रकट हुआ था। ईश्वर ही वह था और एक क्षण के विचार में वह शेर बन गया।

जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही आप बन जाते हैं। यदि आपने अपने आपकी, स्वयं की, ईश्वर के रूप में अनुभूति की और साक्षात्कार किया तो इसमें सन्देह नहीं है कि आपके विचारों तथा अभिलाषाओं की तत्क्षण तथा तत्स्थली पर सम्पूर्ति न हो, उनको साकार न किया जा सके। इसलिये इस व्यक्ति का यह विचार कि उसे शेर के रूप में प्रकट होना है, तुरन्त ही सफलीभूत हो गया और वह शेर बन गया। यह प्रदर्शन समाप्त हो गया। वस्तुतः यह महामानव, व्यक्तियों का, चाहे वे कितने भी बड़े क्यों न हों-पुजारी नहीं था। परन्तु यहां

का दृश्य तो अजीब था-बादशाह-गुस्से से लाल था और स्वयं बादशाह तथा उसके दरबारी अत्यन्त क्रुद्ध थे। वे इस व्यक्ति से बदला लेने के लिये व्याकुल थे। ये लोग इस महामानव के पास गये और कहा- "हे महाशय! कृपा करके इस मृत बालक को पुनः जीवित कर दीजिये। यदि आप इसको मार डाल सकते हैं तो आप उसे जीवित भी कर सकते हैं। आप उसी प्रकार से बालक को जीवन प्रदान करें जिस प्रकार ईसा मसीह मृतकों को यह कहकर पुनः जीवित कर दिया करते थे "कुम बयज़न अल्लाह" अर्थात् ईश्वर के नाम पर उठो, ईश्वर की महिमा विचित्र है, उसके नाम पर चलो, जिन्दा बनो और पुनः जीवन प्राप्त करो। इन लोगों ने इस महामानव से ईश्वर के नाम पर उस मृत बालक को पुनः जीवन दान करने का अनुरोध किया। इस पर इस सन्त ने अट्ठहास लगाया और कहा- "कुम बयज़न अल्लाह" अर्थात् ईश्वर के नाम में पुनः जीवित उठो। लेकिन बालक जीवित न हो सका। सन्त ने कहा- "ईश्वर के नाम पर यह बालक जिन्दा नहीं हो रहा है।" उसने पुनः कहा "ईश्वर के नाम पर जीवित उठ खड़े हो, जिन्दा बनो और चलो।" लेकिन बालक जिन्दा न उठ सका। अब यह सन्त मुस्कराया और उसने कहा- "कुम बयाजनी" अर्थात् मेरे आदेश से जीवित हो जाओ, मेरे हुक्म से जिन्दा उठ खड़े हो। और फिर क्या था, बालक जीवित हो गया। यही सत्य है- "कुम बयाज़नी अर्थात् मेरे नाम पर जीवित हो जाओ "। यही सत्य है। और बालक बिल्कुल ठीक हो गया। बालक जीवित हो गया। परन्तु इस सन्त के चारों ओर खड़े लोग इसे सहन नहीं कर सके। उन्होंने चिल्लाकर कहा- "यह आदमी तो नास्तिक है, अल्लाह का विरोधी है, यह तो सारा का सारा श्रेय स्वयं ही ले लेता

है। यह अपने आपको ईश्वर के बराबर सिद्ध करना चाहता है। इसे तो फांसी पर लटका देना चाहिये, इसकी हत्या कर देनी चाहिये और जीवित ही कोड़े लगा-लगाकर मार डालना चाहिये।"

इस महासन्त के लिये ये आरोप निरर्थक थे, बेमानी थे। लोगों ने उसे ठीक ढंग से नहीं समझा। वह अपने शरीर को, तुच्छ व्यक्तित्व को ईश्वर नहीं बता रहा था। उसने तो पहले ही अपने शरीर को समाप्त कर लिया था, उसे सूली पर चढ़ा दिया था। लोग उसको कोड़े बरसा कर मार डालना चाहते थे। पर इससे होता क्या है? इस कथा में आगे बताया गया है कि इस महान सन्त ने तुरन्त ही अपने नाखूनों से अपने सिर को कुरेदना प्रारम्भ किया और जिस प्रकार जानवरों की खाल फाड़ी जाती है और शरीर से अलग की जाती है, उसी प्रकार, उसी ढंग से उस महान सन्त ने अपनी खाल उधेड़ दी, उसे निकाल बाहर कर दिया और खाल को परे दूर फेंक दिया। इस अवसर पर इस महासन्त ने एक अति सुन्दर, उत्कृष्ट एवं महान कविता की रचना की। इस कविता को उसने स्वयं को ही सम्बोधित किया था। इस महान कविता का सार तत्व था- "हे आत्मा! हे निज स्वरूप! तेरे लिये तो इस संसार का विष अमृत है! हे आत्मा! तेरे लिये इस संसार का अमृत (अर्थात् इन्द्रिय सुख) विष है। ये लोग नहीं समझते हैं, इनमें कहीं न कहीं कमी है। यह संसार तो मरे हुए प्राणी की खाल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।" (अर्थात् यह संसार इन्द्रिय सुख-भोग के अलावा और कुछ भी नहीं है।) संसारी सुख भी मुर्दा खाल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो लोग इन सांसारिक सुखों के पीछे दौड़ते हैं, वे कुत्तों से

अधिक और कुछ भी नहीं हैं। उनको खाने के लिये इस शरीर का गोश्त दे दो।" यह कथा सत्य हो या न हो, राम को इससे कोई लेना-देना नहीं है। पर आपको इस कथा के भाव, इस कथा की नैतिकता को ध्यान में रखना होगा।

सत्य का साक्षात्कार करने के लिये, सच्चाई के मार्ग पर आरूढ़ होने के लिये, कृपया सभी आसक्तियों का परित्याग कर दीजिये, सांसारिक इच्छाओं और स्वार्थमय मोह-ममता से ऊपर उठिये। यदि आप अपने आपको सांसारिक मोह-ममता और स्वार्थपरक इच्छाओं से उन्मुक्त कर लेते हैं तो 'सत्य' के बारे में बचा ही क्या? आप तो उसी क्षण स्वयं सत्य बन गये। मूर्ख लोग प्रार्थना करते हैं- "कृपया मुझे अधिक प्रकाश दीजिये। हे भगवन्! मैं और अधिक प्रकाश चाहता हूं।" आपको इस तरह की प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है। आपको प्रकाश मांगने के लिये किसी प्रकार की प्रार्थना को निरर्थक गंवाने की, बरबाद करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप अपने आपको इसी क्षण सभी अभिलाषाओं से विलग कर देते हैं, उनसे स्वयं को शून्य कर देते हैं, यदि आप सभी सांसारिक मोह-ममता से स्वयं को उन्मुक्त कर लेते हैं, तो आप स्वयं प्रकाश बन जाते हैं। क्या आप जानते हैं कि आपकी प्रत्येक इच्छा, आपके पूर्ण सम्भाग, आपके पूर्ण शरीर से एक टुकड़ा कतर देता है और आपको, अपनी पूर्णता का अवशेष छोटा अंश बनाकर छोड़ देता है। यह तो कभी-कभी ही, बहुत कम ऐसा होता हैं कि हम किसी पूर्ण मानव का दर्शन कर सकें। पूर्ण मनुष्य तो अनुप्रेरित मानव है, पूर्ण मनुष्य 'सत्य' है। ऐसा मालूम पड़ता है कि आपकी प्रत्येक इच्छा

या मोह-ममता आपको आनुपातिक भिन्न बनाती है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह इच्छा आपको अनुचित भाग में, तुच्छ भाग में या भिन्न में परिणत कर देती हैं। जिस क्षण आप ये इच्छायें, मोह-ममता, प्यार, घृणा और आसक्तियां एक तरफ उतार फेंक देते हैं और यहां तक कि प्रकाश की इच्छा का परित्याग कर देते हैं तथा अपने आपको घृणा और आसक्तियों से उन्मुक्त कर देते हैं, साम्य भाव में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, अपने व्यक्तित्व के साथ, अपने शरीर के साथ या किसी भी पदार्थ के साथ अपनापन छोड़ देते हैं तथा आप उन सभी समीकरणों को त्याग कर देते हैं जो आपको इस पदार्थ अथवा इस इच्छा से जोड़े रखे हैं, उस क्षण आप 'ॐ' का उच्चारण कीजिये, शान्त होकर बैठ जाइये, 'ॐ' ध्वनि में निमग्न हो जाइये और तब आप सोचिये कि वह कौन है जो आपके अन्तर में विराजमान है।

क्या वह स्वयं आपकी आत्मा नहीं हैं जो आपके बालों को बढ़ाती है और आपकी नस-नाड़ियों में रक्त का संचार करती है? क्या वह आपकी स्वयं की आत्मा नहीं है जिसने आपका यह शरीर बनाया? यह विचित्रतम संसार भी आपके स्वयं की कलाकृति है। अत्यन्त निश्चयात्मक रूप से यह सब आपके स्वयं की रचना है। कृपया ध्यानपूर्वक विचार कीजिये। वह कौन है जो आपके माध्यम से सुनता है? क्या वह आपकी स्वयं आत्मा नहीं है? वह कौन है जो आपके माध्यम से देखता है, क्या वह स्वयं आपकी आत्मा नहीं है। और यदि आपकी स्वयं की आत्मा इतने अद्भुत, अनुपम कार्य सम्पन्न कर सकती है तो निश्चय ही यह विश्व आपकी संरचना है। इसकी अनुभूति कीजिये

और अपनी स्वयं की दिव्यता में आनन्द-विभोर होइये और अपने अन्तर में, अपने अन्तस्थल के भीतर सुखानुभूति कीजिये तथा अपने स्वयं की आत्मा के आनन्दातिरेक का सुख भोगिये। आप सभी असमान्य अभिलाषाओं तथा असाधारण इच्छाओं को एक ओर परे फेंक दीजिये। 'ॐ' 'ॐ' का जाप कीजिये। यदि आप यह कुछ क्षणों के लिये भी करते हैं तो आपका सम्पूर्ण शरीर सिर से पैर तक 'प्रकाश' ही हो जायेगा। 'प्रकाश' के लिये क्यों प्रार्थना करें, जब प्रकाश ही आपकी स्वयं की आत्मा है। आप तुरन्त प्रकाश बन जाते हैं। अपने आपको 'पूर्ण' बनाइये, अभिलाषाओं तथा आसक्तियों का परित्याग कर दीजिये, इस विकर्षण या उस विकर्षण से उन्मुक्त होइये। वस्तुतः यह आसक्ति है जो आपको अन्ततः निरासक्त करती है। जब आप घर पहुंचे तो देखें कि आप किससे आसक्त हैं। यदि नाम से आसक्त हैं तो उसे भी छोड़िये। यदि आप लोकप्रियता की इच्छा से आसक्त हैं तो उससे भी आप अपने को निरासक्त कीजिये; यदि आप संसार की सहायता करने की इच्छा या अभिलाषा के स्वरूप से आसक्त हैं तो उसका परित्याग कर दीजिये। यह उद्घोष कुछ असामान्य प्रतीत होगा। यह विश्व इतना दयनीय क्यों होगा जो हर समय आपसे सहायता की भीख मांगता रहे?

राम आपसे अनुरोध करता है कि आप अपना कर्तव्य या कार्य करें, पर अपने तईं, अपनी ओर से (उसे भार-स्वरूप मानकर) न तो ध्यान ही दें और न ही उसके बारे में कोई आशा या इच्छा करें। आप अपना कार्य काजिये और अपने कार्य से आनन्द उठाइये, क्योंकि आत्म-साक्षात्कार का पर्याय ही है कर्म। अपने कार्य में आप संलग्न

हो जाइये, क्योंकि कर्म तो आपको करना ही है। कर्म आपको आत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर करता है। अन्य किसी कारणवश काम को स्वीकार मत कीजिये। बिल्कुल स्वतंत्र-भाव से अपना कार्य करते जाइये। जिस प्रकार एक राजकुमार अपने मनोरंजन, अपने आनन्द की खातिर, फुटबाल या अन्य खेल खेलता है, उसी भावना से ओत-प्रोत होकर आप अपने काम में लग जाइये, क्योंकि सुख या आनन्द कार्य के रूप में रहता है। हम अनुभव करें कि हम स्वतंत्र है, किसी भी चीज या पदार्थ से बंधे नहीं हैं।

लोग कहते हैं- "कर्तव्य, कर्तव्य, कर्तव्य।" परन्तु कर्तव्य, आपके ऊपर शासन क्यों करने लगे? आप किसी के प्रति किंचित उत्तरदायी नहीं हैं - ऐसा ही अनुभव कीजिये। आप तो स्वयं अपने स्वामी हैं। बिल्कुल भी मत डरिये। राम कहता है कि आपको काम करना होगा। कार्य ही आपको पवित्र एवं पुनीत बनाता है और जब आप ऐसे कार्य में संलग्न होते हैं तो यह आपके लिये बहुत ही अच्छा तथा श्रेयस्कर होता है। परन्तु जब आपके हाथ में कोई काम न हो और जब आपके हाथ स्वतंत्र हों तथा आप अपने कमरे में अकेले बैठे हों तो उस समय आप अपने ईश्वरत्व का आनन्द उठाइये और अपनी दिव्यात्मा में मौज कीजिये। यही सर्वोत्तम कार्य है। ऐसे समय आपकी जितनी भी आसक्तियां हो, उन सभी को आप परे फेंक दीजिये। लोग कहते हैं कि हमें कार्य में प्रेरित करने, हमसे कार्य कराने के लिये आसक्ति का होना आवश्यक है, उद्देश्य का होना आवश्यक है। यह भ्रामक मान्यता है। आप सभी आसक्तियों का परित्याग कर दीजिये, सभी इच्छाओं से

अपने आपको उन्मुक्त कर दीजिये, आप कदापि भी यह अनुभव न कीजिये कि आपके कंधों पर कोई उत्तरदायित्व है या बोझ है। आपके कंधों पर जितने भी बोझ हैं, वे सभी आपने स्वयं ही अपने ऊपर लादे हैं। आपके बोझों को आपके कंधो से उतारने के लिये किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं है। बोझ अपने आप उतर जायेगा। बस, आप ऐसी अनुभूति करें कि आपके कंधों पर कोई बोझ नहीं है। जब आप देखें कि प्रेम के सभी पदार्थ आपके साथ हैं, जब आप वेदान्त का अनुशीलन करें तो आपका सम्पूर्ण अस्तित्व ही तत्क्षण स्वयं प्रकाश बन जाता है। जब आप स्वयं ही प्रकाशों के प्रकाश हैं तो प्रकाश के लिए किससे प्रार्थना करना? यही रहस्य है। और आप स्वाधीन हो गये। आपको बंधनों में कौन जकड़ता है? वह कौन है जो आपको पराधीन बनाता है? वे तो केवल आपकी इच्छायें ही हैं। इनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। विश्व की समस्त चुम्बकीय शक्तियां, विश्व की सम्पूर्ण प्रभुता एवं बल आपसे ही निर्गत होते हैं, संसार के सभी चमत्कार आपके निम्नतम गुलाम हैं, इससे अधिक नहीं। इन इच्छाओं से दूर हटिये और आप तत्क्षण स्वतंत्र बन गये। और जब आप सभी अभिलाषाओं से उन्मुक्त हो गये तो क्या आप जानते हैं कि आपके आनन्द का वारापार ही नहीं रहेगा? आपका कोई उत्तरदायित्व नहीं, आपको कोई भय भी नहीं। आप क्यों कर भयभीत हों? आप इसी आशंक से भयभीत होते हैं कि कहीं आप यह या वह चीज न खो दें। आप इस मनुष्य से डरते हैं, आप उस मनुष्य से भयभीत होते हैं, आप उपहास से भी आशंकित रहते हैं, कारण यह है कि आप यश- कीर्ति के लिये लालायित हैं, आप अच्छा नाम कमाने के प्रति आसक्त हैं। ये सभी भय और चिन्तायें इच्छाओं का

परिणाम हैं, सभी सिरदर्द और हृदय की आशंकायें केवल अभिलाषाओं का परिणाम हैं। आप सम्राटों या राष्ट्रपतियों के सामने चापलूसी करते हैं,और उनके सामने झुकते हैं और क्षुद्रातिक्षुद्र व्यवहार करते हैं, केवल इसी कारण से आपकी इच्छा उनकी दया और अनुकम्पा के पात्र बनने की है। जब आप इच्छाओं से उन्मुक्त हो जाते हैं, जब आप एक-एक करके इन इच्छाओं को दूर फेंक देते है, तभी उसी क्षण आप अधिपतियों के अधिपति और बादशाहों के बादशाह बन जाते हैं। उस समय आप कितने स्वाधीन एवं आनन्दित होते हैं। इसलिये राम आपसे दावा करता है कि सत्य का मार्ग प्राप्त अथवा अधिग्रहीत करने की वस्तु नहीं है, इसे ढूढ़कर बाहर से लाना नहीं है। बस, आपको एक ही काम करना है, वह यह कि आपने अपनी अभिलाषाओं के माध्यम से अपने चारों ओर बन्धनों तथा दासता का जो जाल बुन रखा है उसे अपने परिश्रम तथा प्रयत्नों से उधेड़ दें, उस जाल को समाप्त कर दें।

सुख तो हैं छुई-मुई फूल की तरह,
या तो पोस्ते के फूलों की तरह,
उनको बस छुइये तो भला,
बिखर जायेगें,छटक जायेंगे,
दूर हो जायेगी उनकी आभा।

सुख होते हैं ऐसे,
मानों हो हिमपात नदी पर,
गिरता है जो एक क्षण के लिये,

सफेद,लम्बी चादर का आवरण बनाकर,
पर जो हो जाता है विलुप्त,
क्षण भर के बाद,दूसरे क्षण ही।

सुख होते हैं इस प्रकार,
मानों हो उत्तरी ध्रुव का प्रकाश- पुंज
जो भागता है इतनी तेजी से,
पता चलता नहीं आया कहां से
और गया कहां को,
जो पकड़ में आया कभी भी नहीं।

सुख होते हैं मानों हों,
आसमान में इन्द्रधनुष की मोहिनी छटा
बस आया तूफान
और खो गयी वह छटा
जो देखने में थी कभी मनमोहक।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

धर्म का लक्ष्य

मेरे प्रतिध्वनित आत्मन् !

मेरे निजात्मा के अनेकानेक आकार !

ऐसा विचार व्यक्त किया गया है कि नियमित तथा क्रमबद्ध तरीके से व्याख्यानों का आयोजन हो। इसी क्रम में आज रात्रि के उद्बोधन को वर्तमान व्याख्यान- माला की प्रस्तावना के रूप में देखा जा सकता है। आज का विषय है- ''धर्म का लक्ष्य क्या है और किस प्रकार हिन्दू इसका साक्षात्कार करने का प्रयत्न करते हैं?''

हिन्दुओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में ही ईश्वर है, सर्वाधिक अमूल्य हीरा है, सम्पूर्ण कोष है, सर्वोत्कृष्ट आनन्द है और सभी सुखों का स्रोत है। हर व्यक्ति ईश्वर है और स्वयं में परिपूर्ण है। पर यदि ऐसा है तो लोग क्यों दुखों से पीड़ित रहते हैं? ऐसा क्यों होता है? इन लोगों को पीड़ा, दुख इसलिये नहीं उठाने पड़ते हैं कि इनके पास इन दुखों से छुटकारा पाने का इलाज नहीं है, इसलिये भी नहीं कि इनके स्वयं के पास अनमोल हीरा नहीं है। इनको दुख इसलिये सहन करने पड़ते हैं कि ये लोग यह नहीं जानते हैं कि जिस गांठ में उन्होंनें इस अनमोल हीरे को बांध रखा है या जिस पेटी में इसे रख छोड़ा है, उसे किस प्रकार खोला जाय। दूसरे शब्दों में, लोग यह नहीं जानते हैं कि अपनी आत्मा के अन्तस्थल में किस प्रकार प्रवेश किया

(स्वांमी राम द्वारा 'हरमैटिक ब्रादरहुड हाल'सनफ्रांसिको में ६ दिसम्बर, १९०२ को दिये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

जाय और किस प्रकार आत्म साक्षात्कार प्राप्त किया जाय। वस्तुतः सभी धर्म स्वयं को निर्वस्त्र करने या आवरण विहीन बनाने की प्रक्रिया मात्र है, स्वयं को खोलने और स्वयं की व्याख्या करने की विधा मात्र हैं। हमने अपने हाथों से और अपने ही प्रयत्नों द्वारा अपने अन्तस्थल में प्रतिष्ठित अमूल्य हीरे के सामने एक पर्दा रख दिया है और इस प्रकार अपने को दयनीय, दुखी, हीन, तुच्छ प्राणी बना रखा है। इसी बात को प्रख्यात विद्वान इमरसन ने इस प्रकार कहा है- "प्रत्येक मनुष्य ईश्वर है जो मूर्खों जैसा अभिनय कर रहा है।"

सभी मत केवल उस आवरण को ध्वस्त करने या समूल नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं जो हमारी आंखों को ढके है। कुछ ऐसे मत हैं जिन्होनें अन्य मतों की अपेक्षा इस आवरण या पर्दे को अत्यधिक पतला बनाने में सफलता प्राप्त की है। परन्तु सभी मतों, सभी धर्मो में ऐसे लोग पैदा हुए हैं, जिनके अन्तस्थल में, स्वयं में वास्तविक आत्मा परिपूर्ण थी। और जहां कहीं भी सच्ची आत्मा का प्रादुर्भाव हो गया वहां तो यह पर्दा, चाहे कितना मोटा या पतला हो, कुछ समय के लिये एक तरफ फेंक दिया जाता है और उस समय वास्तविकता, सत्य की झलक दिखाई देती है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट किया जायेगा।

आप देखें, यह एक रूमाल है। (राम अपनी आंखों के सामने उस रूमाल को रखते हैं।) आप इसी तरह के किसी और भी रूमाल को अपनी आंखों के सामने रख सकते हैं। इस रूमाल या पर्दे को एक तरफ हटा दें, फिर आप साफ साफ देखेंगे। पर होता यह है कि

यह पर्दा बार- बार आंखों के सामने आ जाता है। हम यह भी कर सकते है कि इस रूमाल या पर्दे को और पतला कर दें। (इसे प्रदर्शित्त करने के लिए राम रूमाल की कुछ परतें खोल देते हैं।) फिर तो यह पर्दा या रूमाल बहुत पतला बन जाता है, परन्तु इसे पूरी तरह दूर नहीं हटाया जा सकता है। विडम्बना यह है कि वह पर्दा पुनः पुनः आंखों के सामने आ जाता है। यह स्थाई रूप से, हमेशा के लिये ओझल नहीं होता। आइये, हम इस रूमाल या पर्दे को अभी और पतला करें। इस पर्दे को कुछ समय के लिये अवश्य खिसकाया जा सकता है, लेकिन बाद में वह फिर आंखों के सामने आ जाता है। जब यह पर्दा अत्यधिक पतला बना दिया जाता है, तो होता यह है कि यद्यपि आंखों से यह नहीं हटाया गया फिर भी अत्यधिक पतले होने के कारण यह पर्दा हमारे देखने में बाधक नहीं बनता है। हम इस पर्दे के भीतर से भी नहीं देख सकते हैं। अभी भी हम पहले की भांति इस पर्दे को समय- समय पर हटा सकते हैं। पर जब यह पर्दा अत्यधिक न्यूनातिन्यून बना दिया जाता है तब तो वस्तुतः यह कोई पर्दा नहीं रह जाता है और अत्यधिक पतला होने के कारण हम सर्वोच्च आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं। तब हम ईश्वर के आमने-सामने होते हैं, इतना ही नहीं, हम तो स्वमेव ईश्वर हो जाते हैं। इस संसार में अब कोई भी वस्तु हमारे लिये व्यवधान नहीं बन सकती है या हमारे आनन्द को कम नहीं कर सकती है या बाधक नहीं बन सकती है। हमारे मार्ग में किसी व्यवधान को बीच मे खड़े होने की हिम्मत नहीं हो सकती है। अन्य मतों की तुलना में वेदान्त की यह विशेषता है कि यह अज्ञान अथवा माया के पर्दे को न्यूनातिन्यून पतला कर देता है और ज्ञानी को इतना सक्षम बना देता

है कि वह सामान्य सांसारिक जीवन- यापन करते हुए भी अनुपम आनन्ददायक दृश्य का आनन्द उठाता रहे।

सभी धर्मों के उपासक और भक्त समय- समय पर ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करते रहे हैं। जब तक ये महापुरूष सर्वोच्च सत्ता- ईश्वर के सम्पर्क में रहते हैं, उस समय तक ये अपनी आंखों के आगे से, चाहे पर्दा मोटा हो या पतला हो, सभी को हटा सकते हैं। एक वेदान्ती भी ऐसा कर सकता है और अपने आपको सुखमय आनन्दातिरेक की अवस्था में स्थापित कर सकता है, परन्तु होता ऐसा है कि वह सामान्य स्थिति में भी दिव्यतम दृष्टि का उपभोग करता है। यह ऐसी दिव्यतम दृष्टि है जिसका आनन्द मोटे आवरण वाले मतों के अनुयायी नहीं उठा सकते हैं।

भारत के सभी मतों को सम्मिलित कर विश्व के जितने भी मत या धर्म हैं, उनको तीन मुख्य शीर्षकों या भागों में विभाजित किया जा सकता है। संस्कृत भाषा में इन विभाजनों को हम 'तस्यैवाहम्', 'तवैवाहम्' और 'त्वमेवाहम्' की संज्ञा देते हैं। 'तस्यैवाहम्' का अर्थ है 'मैं उसका हूं'। इस प्रकार के मतों का आवरण या पर्दा सबसे अधिक मोटा होता है। दूसरे चरण के धार्मिक मत 'तवैवाहम्' की श्रेणी में आते हैं। इसका अर्थ है 'मैं तेरा हूं'। आप यहां प्रथम चरण तथा द्वितीय चरण के मतों या सिद्धान्तों के अन्तर को परिलक्षित कर सकते हैं। धार्मिक जिज्ञासा के प्रथम सोपान में भक्त और उपासक ईश्वर को ऐसा मानता है, मानों ईश्वर उससे दूर है, अदृश्य है और वह ईश्वर को सर्वनाम

के 'अन्य पुरूष' में सम्बोधित करता है, और कहता है- 'मैं उसका हूं', मानों ईश्वर उसके पास से कहीं दूर है, जहां वह है वहां से ईश्वर अनुपस्थित है। वस्तुतः यह स्थिति धर्म का अध्यारम्भ है। यह दशा धर्म के जिज्ञासु प्रत्येक बालक के लिये मां के दूध के समान है। मां के दूध से पोषित हुए बिना कोई व्यक्ति धर्म के प्रथम चरण- 'मैं उसका हूं,' के मार्ग में आगे प्रगति करने में असमर्थ ही रहता है। जब एक व्यक्ति केवल इसी भावना और इसी विचार का पूर्ण साक्षात्कार कर लेता है तो क्या यह स्थिति मधुर एवं सुखद नहीं होती है? जब व्यक्ति की ऐसी स्थिति हो जाती है और ऐसी स्थिति में जब वह प्रातः जगता है तो वह यही सोचता है कि मेरा स्वामी ही मुझे जगाता है, जब वह अपने राजकीय कर्तव्यों को करने जाता है तो वह यही अनुभव करता है कि ये कर्तव्य उसके अपने मधुर एवं प्रिय मालिक-ईश्वर ने उसे सौपे हैं। वह सम्पूर्ण संसार को ईश्वर की देन समझता है और अपने घर, अपने सम्बन्धियों, अपने मित्रों को इसी दृष्टि से देखता है कि ये सब ईश्वर ने ही उसे सौंपे हैं। कितनी सुखद स्थिति है यह! ऐसी स्थिति में क्या संसार यथार्थ में स्वर्ग में परिणत नहीं हो जाता? क्या संसार बैकुण्ठ का रूप नहीं ग्रहण कर लेता? यदि ऐसा व्यक्ति इसी लक्ष्य के लिये पूर्णतः, सच्चाई से, समर्पित हो तो वह अपने सम्पूर्ण हृदय और पूरी ईमानदारी से यह अनुभव करता है और साक्षात्कार करता है कि उसके चारों ओर उसकी हर वस्तु उसके स्वामी की है, उसके ईश्वर की है और उसका शरीर ही भगवान का है और जब वह इस भावना, इस विचार की पूर्ण अनुभूति कर ले तब यही दशा उसे उत्कृष्ट हर्ष,अकथनीय आनन्द, सर्वोच्च परमानन्द प्रदान करती है। यह उन्नत स्थिति है। जब इसी भावना

को व्यवहार में परिणत कर लिया जाता है, जब इसका साक्षात्कार कर लिया जाता है तो यह अनुभूति पर्याप्त मधुर होती हैं। परन्तु यह स्थिति, यह भावना तो धर्म का केवल अध्यारम्भ है।

धर्मों अथवा मतों के पहले चरण-अर्थात् 'मैं उसका हूं-तस्यैवाहम्' की तुलना दूसरे चरण अर्थात् 'मैं तेरा हूं- तवैवाहम्' से कीजिये। 'तवैवाहम' का मन्तव्य है- 'मैं तेरा हूं, मुझे तेरी आवश्यकता प्रतिक्षण है, मैं तेरा, केवल तेरा हूं'। पहला चरण निस्संदेह मधुर था, पर यह दूसरा चरण तो उससे भी अधिक मधुर है। पहली स्थिति अत्यन्त प्रिय और प्रेममय थी, पर यह दूसरी स्थिति तो और भी अधिक प्रिय तथा प्रेममय है। कृपया यहां दोनों स्थितियों के अन्तर पर ध्यान दें। यह अन्तर आंखों के सामने पड़े उस आवरण से स्पष्ट हो जाता है जो अब और भी अधिक पतला तथा क्षीण बन गया है। आप जानते है कि "मै तेरा हूं", इस अंश में ईश्वर को सर्वनाम के 'अन्य पुरूष' की श्रेणी में संबोधित नहीं किया गया है। अब ईश्वर को बिल्कुल अनुपस्थित नहीं माना जाता है और न ही उसे पर्दे के पीछे छिपा हुआ स्वीकार किया जाता है। अब तो ईश्वर आमने-सामने आ जाता है। वह हमारे समीप है, अत्यन्त निकट आ जाता है, वह हमारा प्रिय है। वह हमारे और अधिक पास है और हम उससे और अधिक परिचित हो जाते हैं। हर एक मत या धर्म के अनुसार 'तवैवाहम्' की यह 'मध्यमा' की स्थिति और ऊँची है। परन्तु बहुधा ऐसा देखा जाता है कि लोग 'तवैवाहम' मत या धर्म में विश्वास तो करते हैं और ईश्वर को अपने अत्यधिक परिचित, निकटस्थ के रूप में संबोधित भी करते

हैं, लेकिन इन लोगों में सच्चे जिज्ञासापूर्ण भाव और सजीव विश्वास तथा श्रद्धा की कमी बहुधा होती है। सच्ची जिज्ञासा द्वितीय सोपान में आवश्यक होती है। इसके बिना द्वितीय सोपान अपूर्ण और अधूरा रहता है।

यदि धार्मिक विकास के प्रथम सोपान में, जिसमें आवरण बहुत मोटा होता है, जीवित विश्वास समाहित हो जाय तो कुछ समय के लिये यह आवरण हट जाता है। जब मनुष्य अपने सम्पूर्ण रक्त की प्रत्येक बूंद से इस भाव में ओत-प्रोत हो जाय कि 'वह ईश्वर का है', 'मैं उसका हूं' और जैसे ही यह भाव परिपूर्ण रूप से उसके शरीर के प्रत्येक रोम-रोम से निकले, तो उसी क्षण कुछ समय के लिये उसकी सच्चाई, उसका संकल्प, उसकी उत्कंठा, उसका उत्साह उसकी आंखों के आगे पड़े पर्दे को विलग कर देता है, और वह उस अन्तराल में वस्तुतः ईश्वर में खो जाता है, ईश्वर में समाहित हो जाता है, सर्व में मिल जाता है, ईश्वरमय हो जाता है, वह तो स्वमेव ईश्वर हो जाता है। कभी- कभी देखा गया है कि यदि मनुष्य 'मैं उसका हूं' के स्तर से ऊंचे सिद्धान्त - 'मै तेरा हूं' में विश्वास करते हैं पर उनमें 'जीवित विश्वास' या 'जीवित आस्था' का अभाव रहता है, तो वे फलतः ईश्वर की उपस्थित के माधुर्य का पूरा-पूरा आनन्द नहीं उठा पाते हैं। इसलिये 'जीवित विश्वास'अथवा 'जीवित संकल्प' को धार्मिक मत के द्वितीय चरण में भी समाहित करना ही होगा, इसके बिना द्वितीय चरण की सार्थकता नहीं है।

धर्म या मत का तीसरा चरण है- 'त्वमेवाहम्' जिसका

मन्तव्य है कि 'मैं तू ही हूं।' आप यहां परिलक्षित कर सकते हैं कि यह स्थिति हमें ईश्वर के कितने समीप ला देती है। 'मैं तेरा हूं' के प्रथम चरण में ईश्वर अनुपस्थित रहता है, वह दूर रहता है। 'मैं तेरा हूं' के दूसरे चरण में ईश्वर हमारे आमने-सामने रहता है। वह हमारे और अधिक समीप आ जाता है। परन्तु धार्मिक विकास के अन्तिम चरण में दोनों चरण एक हो जाते हैं तथा प्रिय एवं प्रियतमा दोनों ही प्रेम में निमग्न होकर एकाकार हो जाते हैं। इस प्रकार ही वेदान्त का साक्षात्कार किया जाता है।

उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार पतिंगा प्रकाश के निकट से निकटतर होता जाता है, यहां तक कि वह इतना निकटस्थ बन जाता है कि वह अपना शरीर ही भस्म कर देता है और अन्ततः स्वयं प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार वेदान्त की अनुभूति होती है। उपनिषद वेदान्त है। इसके शाब्दिक अर्थ पर ध्यान दें। 'उप' का अर्थ है- प्रकाशों के प्रकाश से इतना अत्यधिक 'निकट' होना कि 'नि' अर्थात् निश्चयात्मक रूप से भेद- अभेद वाली चेतना का पतिंगा 'षद्' अर्थात नष्ट हो जाय। ईश्वर के सच्चे प्रेमी का ईश्वर से पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, वे एक हो जाते हैं और स्वतः, अनायास, अचेतन अवस्था में लीन होने के फलस्वरूप इस प्रकार के उद्घोष उसके ओंठों से निर्गत होने लगते हैं -'मैं वह हूं' 'मैं वह हूं' 'मैं तू हूं' 'तू और मैं एक हूं' 'मैं ईश्वर हूं' 'मैं ईश्वर हूं', 'ईश्वर से कम मैं नहीं हो सकता हूं'। यह धार्मिक विकास का अन्तिम चरण है। यही सर्वोत्कृष्ट उपासना है। इसे वेदान्त कहते हैं जिसका मन्तव्य है- ज्ञान का अन्त। यहां सभी ज्ञान

की परिसमाप्ति है, यहीं लक्ष्य की प्राप्ति है। इस मत में भी, जहां आवरण या पर्दा इतना पतला तथा क्षीण है कि उसके भीतर से भी हम सम्पूर्ण सत्य का अवलोकन कर सकते हैं, कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनमें संकल्प, जिज्ञासा अथवा एकाग्रता की कमी रहती है, फलस्वरूप वे आत्म- साक्षात्कार का परिपूर्ण आनन्द उठाने के लिये पूरा आवरण नहीं हटा पाते हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो इस आस्था, इस सत्य पर बौद्धिक रूप से आश्वस्त होने के उपरान्त, इसी सत्य का इस सीमा तक निरन्तर अनुभव करते हैं और इस सत्य, इस आस्था का बराबर साक्षात्कार करते हैं कि वे सम्पूर्ण आवरण ही हटा देते हैं, फलस्वरूप वे अकथनीय, स्वर्गिक परमानन्द का सुखाभोग करते हैं- वे स्वमेव मूर्तिमान स्वर्ग बन जाते हैं। ऐसे महामानव अपने सांसारिक जीवन में ही जीवनमुक्त हो जाते हैं।

धर्म या मत का विशुद्धीकरण या आवरण को क्षीण से क्षीणतर रूप बनाने की प्रक्रिया तभी पूरी होती है, जब हम पहिले बौद्धिक रूप से सत्य के प्रति आश्वस्त हो जांय और फिर हम समस्त आवरण को अनवरत रुप से समूल हटा दें और हम सत्य की निरन्तर अनुभूति करते रहें। धर्म या मत के तीनों चरणों की व्याख्या की जा चुकी है। आइये, अब हम यह देखें कि विभिन्न मतों या धर्मों के अनुयायी इस आवरण के पर्तो को किस प्रकार पतला करते हैं और हटाते हैं। हिन्दू शास्त्र की कतिपय कथाओं और दृष्टान्तों से इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

एक नायिका अत्यधिक प्रेमासक्त थी, प्रेम में बिल्कुल डूबी थी,

उसका रोम-रोम मूर्तिमान प्रेम बन गया था। एक समय की बात है कि यह बालिका गम्भीर रूप से बीमार पड़ गयी। इलाज के लिये वैद्यों को बुलाया गया। उन्होने कहा कि इस बालिका को स्वस्थ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इसके शरीर से कुछ रक्त निकाल लिया जाय। इन वैद्यों ने उसकी बांहों के मांस में नश्तर लगाया, परन्तु उसके शरीर से खून की एक बूंद भी नहीं निकली। इसी समय, जब उसके शरीर में नश्तर लगाया जा रहा था, एक विचित्र घटना यह देखी गयी कि उसके प्रेमी के मांस में से खून बहने लगा। कितना अद्‌भुत मिलन था यह! आप कहेंगे कि यह किंवदन्ती हो सकती है या झूठी कहानी। पर यह घटना सत्य भी हो सकती है। जो लोग प्रेम-विह्वल होते हैं, प्रेमासक्त होते हैं, भले ही उनका प्रेम कुछ निम्न कोटि का हो, वे क्या इसको प्रमाणित नहीं करेगें कि उनके जीवन में भी प्रेममय होने की अवस्था में इसी प्रकार की कुछ घटनायें घटित हुई थीं? इस बालिका ने अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व विस्मृत कर दिया था और वह अपने प्रेमी से एकाकार हो गयी थी, साथ ही उसका प्रेमी भी अपनी प्रेमिका के प्रेम में उससे तदाकार हो गया था।

ईश्वर के साथ इस प्रकार का तादात्म्य 'धर्म' है। 'हमारा शरीर ईश्वर का शरीर हो और ईश्वर की आत्मा हमारी आत्मा हो।' हिन्दुओं के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ-योगवाशिष्ट में एक महिला के बारे में एक कथा दी गयी है। इस महिला को अग्नि में फेंका गया। पर लोगों ने देखा कि अग्नि ने इस महिला को नहीं जलाया। उसका प्रेमी भी अग्नि में फेंका गया, परन्तु उसे भी अग्नि ने नहीं जलाया। यह कैसे

हुआ? इन दोनों को नदी में फेंका गया, पर नदी ने इन्हें प्रवाहित नहीं किया। इन दोनों को पर्वतों के उच्च्व शिखरों से नीचे गिराया गया, पर इनकी एक भी हड्डी में चोट नहीं लगी। यह सब क्या था? उस समय लोग इसका कारण नहीं बता सके, इसकी व्याख्या नहीं कर सके। वस्तुस्थित यह थी कि वे दोनों अपने स्वयं से परे थे, विलग थे। उनकी उस समय वह दशा थी जिसमें किसी प्रकार की शंका उन तक नहीं पहुंच सकती थी। बहुत समय के बाद इनसे इस घटना का कारण पूछा गया। उन्होंने बताया कि उन दोनों प्रेमी- प्रेमिका में से हर एक को, अपना प्रियतम ही सर्वस्व था, उनके लिये अग्नि किसी प्रकार की अग्नि नहीं थी, वह अग्नि तो उस प्रेमिका को अपने प्रेमी के रूप में दिखायी देती थी और प्रेमी के लिये वह अग्नि प्रेमिका के रूप में प्रकट होती थी। उनके लिये जल का कोई महत्व नहीं था, उस स्थिति में जल तो जल रह ही नहीं सकता था। पत्थरों ने भी अपना स्वभाव छोड़ दिया था, वे पत्थर ही नहीं रह गये थे। दोनों के लिये उस स्थिति में शरीर निरर्थक था, शरीर वस्तुतः शरीर नहीं रह गया था। वह स्थिति वास्तव मे प्रियतम मय थी। तो फिर किस प्रकार कोई प्रियतम दूसरे को हानि पहुंचा सकता था?

हिन्दू पुराणों में प्रह्लाद की कथा दी गयी है। इस छोटे बालक का पिता सम्राट हिरण्यकश्यप- अपने पुत्र, प्रह्लाद को धार्मिक जीवन से हटाना चाहता था। वह चाहता था कि उसका पुत्र उसी की तरह सांसारिक बने, परन्तु उसके पिता की प्रताड़नाओं, उसकी क्रोधाग्नि का इस बालक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस बालक के लिये पिता का यह व्यवहार निरर्थक था। इस बालक को अपने उद्देश्य से रोकने के

लिये उसके पिता ने प्रह्लाद को अग्नि में फेंका, परन्तु अग्नि ने उसे नहीं जलाया। राजा ने उसे पानी मे डुबाने के लिये बहती धारा में फेंका, परन्तु उस जल ने उसे उठा लिया। इस बालक के लिये अग्नि, जल और अन्य तत्वों ने उसे हानि पहुंचाने का स्वभाव ही छोड़ दिया था- बालक ने इन तत्वों का उनकी वास्तविक स्थिति में, साक्षात्कार कर लिया था। इस बालक ने देहाध्यास से ऊपर उठकर अपने को वास्तविक सत्ता में प्रतिष्ठापित कर लिया था। उसके लिये प्रत्येक वस्तु ईश्वर थी, प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण प्रेम था। सभी प्रताड़नायें, धमकियां, भय, क्रोध, अस्त्र- शस्त्र और प्रज्जवलित अग्नि की लपटें - सभी कुछ उसके लिये मधुर स्वर्ग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। तब फिर इस बालक को किस प्रकार हानि पहुंचाई जा सकती थी?

कुछ समय पूर्व, एक हिन्दू सन्त ऋषीकेश के पास हिमालय के अत्यधिक घने जंगलों में गंगा के तट पर बैठे हुए थे। जब वे 'शिवोहम्' 'शिवोहम्' (अर्थात् मैं ही ईश्वर हूं) के मंत्र से अवभूत थे, और जब वे उसका उच्चारण कर रहे थे, उस समय गंगा- तट के दूसरी ओर अन्य सन्त उनकी ओर निहोर रहे थे। इसी समय एक चीता वहां सहसा आ पहुंचा। चीते ने सन्त को देखा और उसने सन्त को अपने पंजों में जकड़ लिया। यद्यपि ये सन्त चीते के जबड़ों में फंसे थे, फिर भी सन्त के मुख से निरन्तर अनुपम स्वर-लहरी से, निर्द्वन्द तथा भावातिरेक रूप से 'शिवोहम्' 'शिवोहम्' 'शिवोहम्' का मंत्र बिना किसी दुविधा के निर्झर हो रहा था, निर्गत हो रहा था। इस चीते ने सन्त के हाथ और पैर चीड़ डाले, परन्तु सन्त तो बिना किसी व्यवधान के अपने गहनतम

अन्तस्थल से, अपने मुखश्री से, वही एकमात्र मंत्र 'शिवोहम्' ही निरन्तर निकाल रहे थे।

आप इस घटना के बारे में क्या सोचते हैं? 'शिवोहम्' 'शिवोहम्' के सकल सत्य के बारे में आपकी क्या धारणा है? क्या आप इसे स्यातवाद (एगनोस्टिमिज्म) की संज्ञा देंगें? यह स्यातवाद नहीं है, जो सत्य से दूर हो। वास्तव में 'शिवोहम्'अन्तिम साक्षात्कार है। क्या प्रेम के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच कर प्रेमी अपनी प्रेमिका से अभिन्न एकता का अनुभव नहीं करता है? क्या माँ अपने शिशु को अपने हाड़-मांस का पुतला, अपने खून का अंग और अपनी ही हड्डियों का सांचा नहीं मानती है? और क्या मां अपने शिशु को अपना ही प्रतिध्वनित अहं और अपनी ही अस्ति का दूसरा स्वरूप नहीं मानती है? क्या शिशु के हित उसकी मां के हित से अनन्यतम और एकाकार नहीं हैं? वास्तव में दोनों में अभिन्न एकता है।

इतनी अधिक प्रगाढ़ता से इस सर्वोच्च सीमा तक आप ईश्वर का आलिंगन करें, ईश्वर को स्वीकार करें और ईश्वर के साथ तदाकार हो जांय तो फिर आप में और ईश्वर में भिन्नता का लेशमात्र अंश कहीं भी अवशेष नहीं रहेगा। उस स्थिति में आप यह प्रार्थना नहीं करेंगे कि "हे ईश्वर! आपकी इच्छा ही पूरी हो!" वरन् आपके आनन्द का यह स्वरूप हो जायेगा- "मेरी इच्छा ही परिपूर्ण हो रही है।"

भारत में बहुत पहले जो रीति- रिवाज प्रचलित थे, वे अमरीका

के वर्तमान युग के रीति रिवाजों से बहुत भिन्न थे। आज आप लोग अमरीकावासी रात्रि में अपने घरों में रोशनी करने के लिये बिजली का उपयोग करते हैं। जिस काल की बात राम आपसे कर रहा है, उस समय हिन्दू मिट्टी के दियों (दीपकों) का प्रयोग करते थे और जब एक परिवार अपने यहां दीपक जला लेता था तो समीपवर्ती घरों के लोग अपने घरों का दीपक जलाने के लिये उस घर में जाया करते थे जहां दीपक जल चुका होता था।

एक सायंकाल एक गोपिका, जो कृष्ण- प्रेम में परम आसक्त थी, अपने घर के दीपक को जलाने के बहाने वह कृष्ण के पिता नन्द बाबा के घर गयी। यहां यह कहना निरर्थक है कि यह गोपिका अन्य किसी घर में, जहां दिये पहले से जल चुके थे, वहां न जाकर कृष्ण के ही घर गयी, क्योंकि यह उसकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि जिस प्रकार पतिंगा अपने आपको प्रज्जवलित दीपक में भस्मीभूत करने की लालसा से ओत-प्रोत होता है, उसी प्रकार मैं भी अपने लल्ला 'कृष्ण' के मुख-मंडल के तेज में स्वयं को समाहित करने के लिये पूर्णतः उन्मत्त हो सकूं। वास्तव में यह गोपिका कृष्ण के दर्शन करने गयी थी, दीपक जलाने का तो बहाना उसने अपनी मां से यों ही किया था। उसे तो केवल जलते हुए दिये की बत्ती से अपने दीपक को प्रज्जवलित करना ही था। परन्तु उसके नेत्र तो जलते हुए दीपकों पर नहीं थे, उसके नेत्र तो अनिमेष अपने प्यारे छोटे लल्ला, कृष्ण के मुख पर टिके हुए थे, वह तो कृष्ण के मनोहर, चित्ताकर्षक मुखड़े को निहार रही थी, वह गोपिका तो इतनी अधिक तन्मयता, संलग्नता से कृष्ण के मुख- मंडल को देखने में अभिभूत

थी कि जलते हुए दीपक की बत्ती से अपने दिये की बत्ती को प्रज्जवलित करने के बजाय वह तो जले हुए दीपक से अपनी उंगलियां ही जला रही थी। दीपक की लौ लगातार उसकी उंगलियों को जला रही थी, परन्तु वह तो उससे बिलकुल बेखबर थी, उससे अनभिज्ञ थी। समय बीतता गया और वह गोपिका अपने घर नहीं लौटी। उसकी मां बेचैन हो गयी और अब वह और अधिक विलम्ब सहन नहीं कर सकती थी। वह दौड़ी-दौड़ी कृष्ण के घर पहुंची और वहां उसने क्या देखा? वहां तो उसकी पुत्री का हाथ ही जल रहा था और वह पुत्री इससे अनभिज्ञ थी। उसकी उंगलियां पूरी तरह झुलस गयीं थीं, वे मुरझा गयीं थीं और उसकी हड्डियां जलकर राख हो रही थीं। उसकी मां का दम फूल गया, मुंह से जल्दी- जल्दी सांस लेकर हांफने लगी, वह रोने लगी और जोर- जोर से दहाड़ने लगी- 'मेरी बेटी! मेरी प्रिय बेटी! यह तूने क्या किया? भगवान के लिये यह बता कि यह तू क्या कर रही थी? तब कहीं जाकर यह गोपिका अपने होश में आयी। आप इसे यों भी कह सकते हैं कि उसे "अपने होश में लाया गया।"

दिव्य प्रेम की ऐसी स्थिति में, परिपूर्ण प्रेम की इस अनुपम दशा में प्रेमिका और प्रेमी अभिन्न रूप से एक हो जाते है- "मैं वह हूं", "मैं तू हूं।"

यह तीसरी अवस्था है, अर्थात् 'त्वमेवाहम्' की दशा है। इसके आगे जो स्थिति आनी है उसमें 'त्वमेवाहम्' की तरह के उद्गार या उद्घोषणा भी नहीं होती है। उपर्युक्त दृष्टान्तों में तीसरी स्थिति के प्रेम की व्याख्या की गयी है।

अब जो दृष्टान्त बताया जा रहा है, उससे धार्मिक विकास- 'तवैवाहम्' (मैं तेरा हूं, मैं तेरा हूं) की दूसरी स्थिति स्पष्ट होगी। एक बार दो बालक एक गुरू के पास गये और उनसे धर्म में दीक्षित होने की अनुनय- विनय की। गुरू ने कहा कि जब तक वे उनकी परीक्षा नहीं ले लेंगे कि वे धर्म में दीक्षित होने के योग्य हैं अथवा नहीं, तब तक वे उन्हें शिक्षा नहीं देंगे। परीक्षा लेने के लिये गुरू ने उन दोनों को एक- एक कबूतर दिया और उनसे कहा कि वे अपने- अपने कबूतर ले जांये और ऐसे स्थान में, ऐसे निर्जन एकान्त स्थान में, इनकी हत्या करें जहां कोई भी उन्हें न देख सके। उनमें से एक तो भीड़ भरे मार्ग से होकर सीधे आगे बढ़ा; उसने अपनी पीठ उन लोगों की ओर कर ली जो उस मार्ग पर आ- जा रहे थे, फिर उसने अपने सिर को कपड़े के टुकड़े से ढक लिया और कबूतर को उठाया, उसकी गर्दन मरोड़ दी तथा अपने गुरू के पास सीधे वापस पहुंच गया। उसने कहा- "गुरूजी! स्वामी जी! मैंने आपके आदेश का पालन कर दिया है।" स्वामीजी ने, गुरूजी ने पूंछा- "जब कोई भी तुम्हें नहीं देख रहा था, क्या ऐसे समय में ही तुमने इस कबूतर का गला घोंटा था?" उसने उत्तर दिया-"जी हां!" तब गुरूजी ने कहा- "ठीक है, अब हमें यह देखना है कि तुम्हारे दूसरे साथी ने क्या किया।"

दूसरा बालक घने जंगल में काफी दूर तक गया। ज्यों ही यह बालक निर्जन स्थान में कबूतर का गला घोंटने वाला ही था, त्यों ही उसे विचित्र स्थिति देखने को मिली- इस कबूतर की निर्दोष, कोमल तथा चमकती आंखें बालक के चेहरे को निहार रही थीं। बालक और कबूतर,

दोनों की आंखें एक- दूसरे से मिलीं। फलस्वरूप कबूतर की गर्दन घोंटने के अपने प्रयास में यह बालक सहम गया, डर गया। उसके मन में यह विचार आया कि गुरू महाराज ने उसके ऊपर जो शर्त लगायी थी, वह बहुत कठोर तथा कष्टसाध्य थी। यहां तो इसी कबूतर में दृष्टा और निरीक्षक दोनों ही उपस्थित हैं। बालक ने सोचा- "ओह! मैं अकेला नहीं हूं; मैं ऐसे निर्जन स्थान में नहीं हूं जहां कोई भी मुझे नहीं देख सके। मुझे तो देखा जा रहा है। अब मैं क्या करूंगा? अब मैं कहां जाऊंगा?" वह आगे बढ़ते ही गया, आगे चलता ही गया और दूसरे जंगल में जा पहुंचा। वहां भी, जब वह कबूतर की गर्दन काटने वाला ही था कि उसकी आंखें कबूतर की आंखों से जा मिली और कबूतर ने उसे देख ही लिया। दृष्टा तो स्वयं कबूतर में विराजमान था।

बार- बार इस बालक ने कबूतर को मार डालने का प्रयत्न किया, बारम्बार उसने यही कोशिश की, परन्तु जो शर्त उसके गुरू ने उस बालक पर लगायी थी, उसको पूरा करने में वह समर्थ नहीं हो पा रहा था। टूटे हृदय से, निराश होकर वह गुरूजी के पास वापस आया और गुरू महाराज- स्वामीजी- के चरणों पर कबूतर को जीवित रख दिया। वह रोया, चिल्लाया और कहने लगा- "स्वामी जी, गुरूजी! मैं उस शर्त को पूरा नहीं कर सका जो आपने लगायी थी। कृपया मेरे ऊपर दया कीजिये, कृपालु बनिये और मुझे ईश्वर के बारे में शिक्षा दीजिये। आप की परीक्षा मेरे लिये अत्यन्त दुरूह है। मैं इस परीक्षा को नहीं दे सकता हूं। कृपया मेरे ऊपर दया कीजिये और दिव्य ज्ञान देने की अनुकम्पा कीजिये। मैं इस ज्ञान का जिज्ञासु हूं, निश्चयात्मक रूप से

मुझे दिव्यज्ञान की आवश्यकता है।" स्वामी जी ने इस बालक को उठा लिया और अपनी बाहों में भर लिया, उसे दुलराया, प्यार किया, उसकी पीठ थपथपाई। स्वामी जी ने समझाया- "मेरे प्यारे बालक ! जिस प्रकार तुमने उस कबूतर की आंखों में दृष्टा को देखा था जिसका बध तुम करने वाले थे, उसी प्रकार तुम जहां कहीं भी हो और जब कभी भी तुम किसी प्रलोभन से आकृष्ट होकर कोई अपराध करने वाले हो, उसी समय तुम ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति करो। यहां तक कि जिस महिला के प्रेम में तुम व्याकुल हो, उसकी आंखों में उसके अस्थि- पंजर में इसी दृष्टा, इसी साक्षी के दर्शन करो। इस बात का साक्षात्कार करो कि तुम्हारा स्वामी ही तुम्हारी प्रेमिका की आंखों में तुम्हारा निरीक्षण कर रहा है। 'मेरा स्वामी सभी जगह मुझे देखता रहता है।' तुम इस प्रकार कार्यरत हो, मानों तुम अपने परमप्रभु - ईश्वर- की उपस्थिति में सदैव रहते हो, यहां तक कि अपने प्रियतम की दृष्टि में हर समय दिव्यता के आमने-सामने बने रहते हो।"

कहा जाता है कि नैपल्स के महान संग्रहालय में छत पर एक अत्यन्त सुन्दर देवदूत की मुखाकृति अंकित है। इसकी विचित्रता यह है कि आप संग्रहालय के किसी भी भाग में क्यों न हों, आप छत पर चले जांय, आप तहखाने में जांय या अन्यत्र कहीं भी विचरण करें, हर जगह आपको देखने को मिलेगा कि इस देवदूत की तेजस्वी चमकीली एवं विशुद्व आंखें सीधे आपकी आंखों में घूर-घूर कर देख रही हैं। आध्यात्मिक विकास के दूसरे चरण के इस प्रकार के व्यक्ति यदि वास्तव में अपने प्रति सच्चे तथा निष्ठावान हैं तो वे अपने स्वामी- ईश्वर की

आंखों के सामने हमेशा बने रहेंगे। ऐसे व्यक्ति यह अनुभूति करते हैं और साक्षात्कार करते हैं कि वे जहां कहीं भी, यहां तक कि अपने घर की सीमा के भीतर से भीतर की कोठरी में या जंगल की सबसे अधिक निर्जन एवं एकान्त गुफा में क्यों न हों, वहां वे हमेशा यही महसूस करेंगे कि वे ईश्वर की आंखों के सामने हैं, ईश्वर उन्हें देख रहा है, वे ईश्वरीय प्रकाश से अभिसिंचित हैं और ईश्वर की कृपा से ही पल-पुस रहे है।

अब राम आध्यात्मिक विकास के प्रथम चरण की चर्चा करेगा। यह प्रथम चरण है- "तस्यैवाहम्" अर्थात् 'मैं उसका हूं,' 'मैं उसका हूं,' 'मैं ईश्वर का हूं'। यह भावना प्रथम चरण की प्रतीत होगी। पर ओह! लोगों के लिये यहां तक कि आध्यात्मिक विकास के प्रथम चरण का भी साक्षात्कार करना कितना दूरूह है। परन्तु यदि कोई वास्तव में सच्चा है, यदि उसकी वास्तविक एकाग्र तथा एकनिष्ट दृष्टि है, यदि वास्तव में वह सच्चा उपासक है और जिस बात में उसका विश्वास है, उसको वह व्यवहार में लाता है और अपने इसी विश्वास, इसी विचार का अपनी नस-नाड़ियों के रक्त के साथ तादात्म्य स्थापित करता है तथा यही धारणा उसके रक्त के प्रत्येक बूंद में समाहित हो जाती है और इसी भावना, इसी विश्वास से वह परिपूर्ण तथा ओत- प्रोत हो जाता है तो वह आध्यात्मिक विकास के इसी प्रथम चरण में ही इस संसार में स्वयं देवदूत बन जायगा।

भारत में एक अत्यन्त पूज्यनीय, आदरणीय सन्त हुए हैं।

इनका नाम गुरू नानक था। अपने प्रारम्भिक युवा- काल में वे ऐसी जगह काम करते थे कि जहां उनका दायित्व लोगों को दान वितरित करना, भोजन बांटना तथा रूपया- पैसा देना आदि था। एक बार उनके सामने कुछ निर्धन व्यक्ति उनके स्वामी का यह आदेश लेकर आये कि वे उनको तेरह किलोग्राम आटा दें। नानक देव ने तौलना शुरू किया, उन्होनें एक किलो आटा दिया, फिर दो किलो, फिर तीन, चार, पांच, छः जब तक कि वे तेरह की संख्या की गिनती तक नहीं पहुचे। वे आटे की तौल के किलोग्राम को जोर से कह रहे थे। भारतीय भाषा में 'तेरह' या 'तेरा' संख्या बड़ी विचित्र है, जिसको नानकदेव जोर से कह रहे थे। इस 'तेरा' शब्द के दो अर्थ होते हैं- एक तो यह कि यह संख्या दस धन तीन (१०+३) अर्थात् तेरह है और दूसरा अर्थ यह है कि "मैं तेरा हूं" "मैं ईश्वर का हूं", "मैं ईश्वर का अंश हूं", "मैं उसका हूं।"

नानक देव १२ तक की गिनती तक ठीक-ठीक आटा तौलते रहे। पर उसके बाद 'तेरा' संख्या का नम्बर आया। उस समय उनकी विचित्र स्थिति हो गयी। जब वे तेरवां किलोग्राम आटा तौल रहे थे और 'तेरा' 'तेरा' का उच्चारण कर रहे थे, उनके हृदय में, उनके अन्तःकरण में ईश- चेतना, ईश- सानिद्ध की भावना इतनी जोर की जागृत हुई मानों उन्होनें अपने शरीर का ही परित्याग कर दिया हो और सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर दिया हो। वे संसार के बारे में सब कुछ भूल गये, वे तो अपने से भी परे, अपने से भी दूर हो गये; नहीं, नहीं, वे तो स्वयं में ही समाहित हो गये थे। इस आनन्दातिरेक की

स्थिति में वे 'तेरा', 'तेरा', 'तेरा', 'तेरा', का ही उच्चारण करते गये

और 'तेरा' 'तेरा' कहते हुए अचेतन होकर लोगों को किलो के बाद किलो, आटा के ऊपर आटा उस समय तक बराबर देते रहे जब तक कि वे स्वयं चेतनातीत अवस्था में, भावातीत आनन्द की स्थिति में मूर्छित नहीं हो गये।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि यदि लोग उतने ही सच्चे हैं, जितने उनके वचन, यदि लोग सतसंकल्पी और जिज्ञासु हैं, यदि लोग ईश्वर की आंखों में धूल नहीं झोंकना चाहते हैं, यदि लोग पहले से ईश्वर से कोई वायदा न करें और वायदा करके फिर उसे न तोड़े, तो ऐसे लोग भी "तस्यैवाहम्" के प्राथमिक चरण में ही आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो जाते हैं। जब लोग मंदिर, मस्जिद या गिरिजाघर में जाकर कहते हैं कि "मैं तेरा हूं" तो वे इस भाव की अन्तःकरण में अनुभूति करें। वे इस अनूभूति का जीवन में व्यवहार करें। वे उसी भाव का साक्षात्कार करें। यही सच्चा धर्म है।

सम्पूर्ण संसार के विभिन्न मत- मतान्तरों को इन्हीं तीन शीर्षकों के अधीन विभाजित किया सकता है- "मैं उसका हूं (तस्यैवाहम्) 'मैं तेरा हूं' (तवैवाहम्) 'मैं ही तू हूं' (त्वमेवाहम्)।" जहां तक इन विभाजनों के स्वरूपों का सम्बन्ध है, दूसरा विभाजन "मै तेरा हूं (तवैवाहम्)" प्रथम विभाजन "मैं उसका हूं" (तस्यैवाहम्) से ऊँचा है और तीसरा विभाजन- "मैं ही तू हूं (त्वमेवाहम्)" सर्वोत्कृष्ट है। इन तीनों विभाजनों की किसी एक स्थिति में भी हम वास्तविक धार्मिक भावना से ओत-प्रोत हो सकते हैं।

हिन्दू मत के अनुसार जो लोग धर्म के प्रारम्भिक चरण (तस्यैवाहम्) की भावना का अनुशीलन करते हुए वास्तविक आध्यात्मिक जीवन में लीन रहते हैं, वे निश्चित रूप से इसी जन्म में या आगामी जन्म में धर्म के द्वितीय सोपान (तवैवाहम्) तक पहुंचेंगे। जब वे दूसरे सोपान (तवैवाहम्) का साक्षात्कार कर लेंगे और इसी जन्म में या आगामी जन्म में अपने आपको दूसरे सोपान की धार्मिक धारणा से पूर्णतः सम्बद्ध कर लेंगे तो वे धार्मिक स्वरूप के सर्वोच्च शिखर (तवैवाहम्) "मैं ही वह हूं", "मैं ही तू हूं" पर पहुंच जायंगें। जब वे इस स्थिति का साक्षात्कार कर लेंगें तो जन्म के बन्धनों से मुक्त हो जांयगे। ऐसे व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र हैं, पूर्णतः स्वतंत्र हैं। हे ईश्वर! मानव तू ही है! ऐसे व्यक्ति धर्म के अन्त अर्थात् वेदान्त "शिवोहम्, "ब्रह्मोस्मि!"में आत्मसात हो जाते हैं।

ॐ! ॐ! ॐ!

ओह! आनन्द का मेरा प्याला
है भरपूर और छलक रहा है,
और हैं सभी आशायें, इच्छायें
पूरी तरह परिपूर्ण;

कैसा हूं मैं, जानता है कोई !
मधुर प्रात की बेला में,
मैं ही तो हूं
जो बहाता हूं सुहानी मन्द-मन्द वायु;

मैं ही हूं
जो कलियों को देता हूं
मधुर- मधुर मुस्कान और आकर्षण;
कैसा हूं मैं, जानता है कोई !

इन्द्रधनुष का पहिनता हूं परिधान मैं,
आदेश देता हूं मैं जब
तभी बिखरता है प्रकाश,
और कड़कती है बादलों में बिजली की चमक;

मैं ही विद्यमान हूं सभी प्रेमियों में
और रहता हूं सभी प्रेमिकाओं में;
मै ही हूं अभिलाषायें
और हूं उत्कट भावनायें;

कैसा हूं मैं, जानता है कोई !
मैं ही हूं गुलाब की मुस्कान,
और हूं ओस- कणों का हीरक सौन्दर्य,
निकलते हैं जो सुनहले धागे
सूर्य के प्रकाश की चमकीली किरणों से
होते हैं वे कितने तरो- ताजे, कितने नवीन;

रजतमयी चन्द्र की ज्योत्सना
होती है कितनी रोचक और कितनी स्वच्छ;

वृक्ष भी होते हैं ऐसे
जो हिलते- डोलते हैं मौज मस्ती में;

और देखो तो सही,
उन लिपटती, घुमावदार लताओं को भी,
और उन मधुमक्खियों को भी,
जो बिखेरती हैं संगीत भुनभुनाकर,
ये सभी हैं मेरी अभिव्यक्तियां
और हैं मेरी ही सुगंधभरी स्वांस,
ये सभी हैं समाहित, जीवन और मृत्यु के चक्कर में,
जो है मेरा ही उच्छ्वास।

कैसा हूं मैं, जानता है कोई !
होती हैं कितनी भी अच्छाइयां और बुराइयां,
या हो कितनी भी कटुता और मधुरता,
उन सभी में धड़कती हैं
मेरी नस- नाड़ी ही
जो चलती रहती है निरन्तर।

करूं क्या मै?
और कहां हटाऊं अपने आपको?
देखो तो सही, कितना विचित्र है!
मैं ही तो फैला हूं सारे व्योम में, सभी स्थलों में,
तो फिर कहां रह जाता है वह स्थान,
जहां से मैं हटाऊं अपने आपको।

क्यों करूं मैं किसी प्रकार का संदेह?
या क्यों करूं मैं किसी प्रकार की अभिलाषा?
तथ्य तो है यही
करता हूं समाहित मैं सभी काल को,
और है जितनी भी शक्ति
वह सब है मेरी ही ज्वाला।

क्या हो सकता हूं मैं कभी भी संदेहास्पद?
या क्या घिर सकता हूं कभी भी दुःख दारूण्य से?
कदापि नहीं, कदापि नहीं,
तथ्य तो है यही,
सभी कार्य-कारण तो हूं मैं ही।

सभी काल है सीमित 'अभी' में,
सभी देश है सिमटा 'यहीं ही',
नहीं रह सकती है कोई समस्या
जो रही हो बिना हल के,
समस्याओं के ये हल हैं
बिल्कुल स्पष्ट,बिल्कुल संशयहीन।

कैसा हूं मैं, जानता है कोई।
नहीं है मेरा कोई स्वार्थमय प्रयोजन,

और न ही है कोई बंधन
नहीं है कोई आसक्ति।

मैं तो हूं ऐसा,
जिसकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं सभी तो।
मैं तो हूं,
जो है सभी मित्रों तथा शत्रुओं का
अमूर्त स्वामी !
मैं तो हूं ऐसा ही
जिसे नमन करते हैं सभी तो
और होते हैं नतमस्तक !

ॐ! ॐ! ॐ!

ॐ

मूल आध्यात्मिकता तथा मानस शक्तियां

स्वामी राम से १५ दिसम्बर १९०२ में हरमैटिक ब्रादरहुड हाल, सनफ्रान्सिसको, अमेरिका में आयोजित एक सभा में एक जिज्ञासु ने मूल आध्यामिकता तथा मानस शक्तियों के बारे में अपनी शंका समाधान के लिये निम्नलिखित प्रश्न पूछा गया था, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:-

प्रश्न- क्या यह उचित है कि मानस- शक्तियों का विकास किया जाय और मृतात्माओं से संवाद- सम्प्रेषण किया जाय? यदि ऐसा है तो इस प्रयोजन हेतु किन- किन निश्चयात्मक उपायों का अनुशीलन करना होगा?

राम ने इस प्रश्न के समाधान के लिये जो उत्तर दिया उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:-

भद्र महिलाओं तथा पुरूषों के रूप में
विराजमान मेरे ही निज आत्मन् !

इस प्रश्न का सर्वांगीण उत्तर देने के लिये यह आवश्यक है कि राम उस दृष्टिकोण की विशद व्याख्या करे जो वेदान्त इस प्रकार के प्रश्नों के बारे में देता है।

(स्वामी राम द्वारा 'हरमैटिक ब्रादरहुड हाल', सनफ्रान्सिसको में १५ दिसम्बर, १९०२ को दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

वेदान्त के अनुसार दो ही मार्ग है:- एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा है निवृत्ति मार्ग। एक है कर्म- पथ, दूसरा है ज्ञान या त्याग का पथ। कर्म- पथ ईसाई चर्च के उस मत के समतुल्य है जिसे वे "कर्मों द्वारा मुक्ति" की संज्ञा देते हैं। ज्ञान-पथ ईसाई धर्म के उस मत के अनुरूप है जिसे वे "विश्वास द्वारा मुक्ति" की संज्ञा देते हैं। भला देखें, इन दोनों मतों मे अन्तर क्या है?

हिन्दू लोग जिस ढंग से कर्म- पथ की व्याख्या करते हैं उसके अनुसार कर्म-पथ का लक्ष्य है स्वार्थपरक, व्यक्तिगत अधिकारों का संग्रह; विश्व में अपने प्रभुत्व का प्रसार; अपनी सम्पत्ति तथा उपलब्धियों का विस्तार, उनकी अभिबृद्धि और उनका संगृह। यही कर्म-पथ का लक्ष्य है। प्रत्येक व्यक्ति के विकास के क्रम के एक विशेष स्तर पर यह स्थिति आना स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह अपने व्यक्तिगत प्रभुत्व का विस्तार करे, उसमें अभिबृद्धि करे। परन्तु इससे वास्तविक अमरत्व या वास्तविक जीवन नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इस दिशा में आपको प्रयोग अवश्य करने होंगे, पर एक समय ऐसा आना भी निश्चित है जब आप संग्रह-प्रवृत्ति से पीछे हटेंगे और लालसापूर्ण, अभिलाषायुक्त और कामनामय अज्ञान को छोड़ देंगे तथा 'त्याग' का मार्ग ग्रहण करेंगे। यह मार्ग हमारे सर्वोच्च आनन्द के लिये अत्यावश्यक है।

कर्म-पथ तीन प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से यह सांसारिकता है। ये संसार भी तीन प्रकार के हैं। इन विभाजनों के उपविभाजनों पर फिलहाल विचार न किया जाय, तो भी मूल विभाजन

पर अवश्य ध्यान दें। मूल विभाजन इस प्रकार है:-

प्रथम- प्रत्यक्ष संसार- जो स्थूल तथा भौतिक जगत है।

दूसरा- मानसिक संसार- जो स्थूलातीत या मानस जगत है।

तीसरा- अविज्ञात संसार- जिस जगत के बारे में हमें कोई ज्ञान नहीं है।

ये मुख्य संसार हैं और कुछ सीमा तक ये एक दूसरे से स्वतंत्र हैं।

जिस समय हम स्वप्नलोक या इसी तरह के अन्य लोकों में अथवा स्थूलातीत या मानस संसार में रहते हैं उस समय यह स्थूल, भौतिक संसार, जैसा हम उसे देखते हैं, पूर्णतः अनुपस्थित रहता है। इसी प्रकार, जब हम अविज्ञात संसार में होते हैं, तब भी वहां यह भौतिक संसार नहीं होता। इस तीसरे अविज्ञात लोक के स्वरूप की किंचित झलक सुषुप्ति (गहन निद्रा) की स्थिति से मिल सकती है। इस सुषुप्ति स्थिति में आप ऐसे लोक में रहते हैं जहां मेरे-तेरे के संबंध नहीं होते हैं और केवल भाव शून्य स्थिति होती है,आप उस दशा में अज्ञात लोक में रहते हैं।

ईसाई मतावलम्बियों का स्वर्ग और नरक, मुसलमानों का बहिश्त और दोज़ख तथा हिन्दुओं का बैकुण्ठ और नरक, सारी कल्पनायें दूसरे संसार अर्थात् मानस संसार या स्थूलातीत लोक की हैं।

इस दूसरे संसार के अनेक उपविभाजन हो सकते हैं। इस दूसरे संसार के कतिपय विभाजनों के अधीन यह मान्यता है कि वहां मृतात्मायें उपस्थित रहती हैं। इस विषय के विशद विवरणों के बारे में इस समय विचार करना उचित नहीं है।

वास्तव में कर्म का पथ तो सांसारिकता मात्र है। अपने व्यक्तिगत अधिकार के क्षेत्र का विस्तार करने के सभी विचार तथा प्रयत्न वास्तव में सांसारिकता है।

एक महान वैज्ञानिक वाष्प या बिजली अथवा अन्य तत्वों के बारे में विचित्र से विचित्र आविष्कार कर सकता है। उन आविष्कारों से वह अपनी व्यक्तिगत शक्ति का प्रसार करता है। अपने इन आविष्कारों से वह अनेकानेक व्यक्तियों, यहां तक कि पूरे समाज के लाभ के लिये, प्राकृतिक तत्वों पर अर्जित अपनी विजय का प्रसारण कर लेता है। हम ऐसे वैज्ञानिकों के प्रति कृतज्ञ हैं, हम उनका सम्मान करते हैं, हम उनका आदर तथा उनकी प्रशस्ति भी करते हैं। परन्तु हम इन वैज्ञानिकों के पास 'मुक्ति' के लिये नहीं जाते हैं। हम उनके आविष्कारों की ओर आशा से देखते हैं तथा उनके आविष्कारों का जो मूल्यांकन होता है, उसके अनुसार उन शोधों को स्वीकार करते हैं तथा उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु हम इन वैज्ञानिकों के पास परिपूर्ण आनन्द और सर्वदेशीय तथा सर्वकालिक ज्ञान के लिये नहीं जाते हैं। क्योंकि इस क्षेत्र के बारे में उनका ज्ञान नगण्य है।

इसी प्रकार, ऐसे तात्विक शोधकर्ता, दार्शनिक हैं और ऐसे महापुरूष भी हैं, जो मस्तिष्क की कार्य-प्रणालियों के बारे में हमारे ज्ञान में अभिबृद्धि करते हैं। हम इस ज्ञान के लिये इन महान व्यक्तियों के पास जाते हैं: हम मस्तिष्क, बुद्धि, भावनाओं तथा विचारों की क्रिया-प्रणालियों के बारे में जानकारी के लिये इन सभी लोगों के प्रति

आभारी हैं। हम इनके कृतज्ञ हैं। लेकिन कोई भी व्यक्ति हृदय की वास्तविक शान्ति के लिये 'मिल' या 'स्पेंसर' जैसे महान दार्शनिक और तात्विक शोधकर्ता के पास नहीं जायेगा। ये सभी महापुरूष अपने-अपने क्षेत्र में महान हैं। परन्तु वे हमको वह एक वस्तु नहीं दे सकते जिसकी हमें अत्यावश्यकता है।

भारत में ऐसे अनेक महापुरूष हैं जो तथाकथित फलित आध्यात्मिकता से सम्बन्धित ज्ञान के विशारद हैं, ऐसे अनेक लोग है जो मृतात्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हैं। जिसे दूसरा संसार कहा जाता है, उसके बारे में इन लोगों को काफी ज्ञान होता है। भौतिकता का न सही, पर दूसरे अन्य लोकों के बारे में इन्हें काफी जानकारी होती है। लेकिन तथ्य तो यह है कि सांसारिकता तो सांसारिकता ही होती है, चाहे वह इस संसार की हो या उस संसार की, चाहे इस प्रत्यक्ष स्थूल भौतिक संसार की हो अथवा दूसरे या मानस लोक की। जो वास्तविकता है, जो इस सत्य का ज्ञान है,वह अभीप्सित वस्तु है जिसकी हमें आवश्यकता है। हम मृतात्माओं से सम्बन्ध जोड़ने वाले ज्ञानी लोगों का उसी प्रकार स्वागत करते हैं जिस प्रकार किसी वैज्ञानिक या दार्शनिक का। पर हम वास्तविक शान्ति एवं परमानन्द के लिये ऐसे व्यक्तियों के सामने नत-मस्तक नहीं होते हैं। यह शान्ति,यह आनन्द हमें इस प्रकार के लोगों से प्राप्त नहीं हो सकता है।

कभी-कभी यह हो सकता है कि किसी विशेष वैज्ञानिक या तत्व-प्रयोगकर्ता के पास वास्तविक दिव्य ज्ञान हो, फलतः उस आध्यात्मिक

ज्ञान विशारद को सही ज्ञान प्राप्त हो। परन्तु इससे क्या? उसकी आध्यात्मिक शक्ति और मृतात्माओं से संवाद-संचार की उसकी क्षमता तथा शक्ति, उसी प्रकार उसकी दिव्य विद्वता से सम्बन्धित है, जिस प्रकार राम का गणितीय ज्ञान से है या राम का वेदान्त से है। राम गणित का प्राध्यापक था, लेकिन उस गणित का या उस गणितीय ज्ञान का उस वेदान्त से कोई सरोकार नहीं जिसका राम अब उपदेश दे रहा है। ये दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियां हैं और हमें उनको एक में मिलाकर गड़बड़ी और व्यतिक्रम पैदा नहीं करनी चाहिये।

भारत में एक सज्जन थे, जो राम के अभिन्न मित्र थे। वे उपर्युक्त अर्थ में फलित आध्यात्मिक ज्ञान के विशारद थे। एक बार उनकी आंखों पर पट्टी बांधी गयी और उनको निर्दिष्ट स्थान में ले जाया गया, जहां उनके सामने, उनकी बंधी आंखों के सामने, गणित की एक पुस्तक रख दी गयी। इस पुस्तक को उन्होंने कभी नहीं देखा था। परन्तु इस स्थिति में भी वे उस पुस्तक को पढ़ते गये। गणित के अपने विशेष चिह्न होते हैं, जो इस पुस्तक में दिये गये थे। इस पुस्तक में उन लोगों के नामों का भी विवरण था जिनके बारे में इन सज्जन को कोई जानकारी नहीं थी। उन्होंने एक कोरा कागज मंगाया। फिर उस गणित की पुस्तक में जो लिखा था उस सबकी वे नकल करते गये। वे गणित के चिह्नों को उनके विशेष नामों से तो नहीं बता सके। परन्तु उन्होंने उन सभी की नकल कर दी। यह शक्ति उनके पास थी। वे किसी के विचारों को पढ़ सकते थे; उन्हे जान सकते थे। यदि कोई व्यक्ति उनसे दूर

रहकर अपनी लेखनी से कुछ भी लिख रहा हो तो वे तुरन्त ही उसकी

नकल कर सकते थे। यह सब ठीक है, वे फलित आध्यात्मिक ज्ञान के विशारद थे। पर वे पवित्र होने से कोसों दूर थे, वे बिल्कुल भी पवित्र व्यक्ति नहीं थे। वे तो सांसारिक, केवल सांसारिक व्यक्ति थे। वे पवित्र या सुखी व्यक्ति नहीं थे।

फलित आध्यात्मिकता या विभिन्न योनियों के ज्ञान को कभी-कभी विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। हम इस फलित आध्यात्मिक ज्ञान का एक विज्ञान होने के नाते आदर कर सकते हैं। लेकिन हमें सतर्क रहना चाहिये कि इस प्रकार के फलित आध्यात्मिक ज्ञान को हम उस ज्ञान से न मिला दें जो हमें वास्तविक हर्ष, परिपूर्ण आनन्द की अनुभूति करा देता है और हमें सभी प्रकार के प्रलोभनों से ऊपर उठा देता है।

राम भारत में एक ऐसे व्यक्ति को जानता है जो प्रत्यक्ष रूप से छः महीनों तक मृतप्राय रह सकता था। जीवन-क्रिया को निलम्बित करने की इस प्रक्रिया को 'खेचरी-मुद्रा' कहा जाता है। इसके बारे में पूरी जानकारी 'हठ योग' के ग्रन्थों से मिल सकती है। एक बार इस व्यक्ति ने अपने आपको मृतप्राय स्थिति में स्थापित किया। उसमें जीवन के कोई भी लक्षण नहीं रहे, उसकी नस-नाड़ियों में रक्त भी प्रवाहित नहीं हो रहा था। छः महीनों के उपरान्त वह पुनः जीवित उठ खड़ा हुआ। आप कह सकते हैं कि यह ऐसा व्यक्ति था जिसे आश्चर्यों का आश्चर्य कहा जा सकता है, जिसे दूसरे प्रकार के ईसा मसीह की तरह बताया जा सकता है। क्योंकि यह व्यक्ति ईसा के तीन दिनों तक मृतप्राय

रहने की तुलना में छः महीनों तक मृतप्राय रहा और उसके बाद पुनःजीवित

हुआ। पर इस व्यक्ति की दशा सुखी या स्वतंत्र होने के बजाय अधिक खराब थी। राम को उन अपराधों को बतलाने की आवश्यकता नहीं है जो इसने किये थे। इन अपराधों के कारण जिस राजदरबार में वह व्यक्ति अपने करतब दिखाया करता था, वहां के राजकुमार ने उसे अपने राज्य से निष्काषित कर दिया।

इसी प्रकार का दूसरा व्यक्ति था,जो पानी पर चल सकता था। इस पर एक सच्चे सन्त ने अट्‌ठहास किया और उससे पूछा- "इस शक्ति को प्राप्त करने में आपने कितना समय लगाया।" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया- "इस शक्ति के उपार्जन में उसने सत्रह वर्ष व्यतीत किये।" सन्त ने इस पर उस व्यक्ति से कहा- "इन सत्रह वर्षो के लम्बे समय में आपने वह शक्ति अर्जित की जिसका मूल्य केवल पचास पैसे है।" (हम नाविक को पचास पैसे देकर नदी के उस पार उतर सकते हैं।) वास्तव में ये सारी व्यक्तिगत शक्तियां सीमित हैं। ये आपको ठीक उसी प्रकार बंधन में डालती हैं जिस प्रकार अन्य कोई सम्पत्ति या धन-दौलत। बन्धन तो बन्धन ही होता है, चाहे यह बंधन या जंजीरें लोहें की हों या सोने की। इससे क्या अन्तर आता है, बंधन तो आपको केवल दास ही बनाते हैं।

यदि कहीं ऐसी तथाकथित अनोखी शक्तियां मनुष्य को पवित्र बना सकती तो निश्चित रूप से कुत्ते को 'पवित्र' ही होना चाहिये था। क्योंकि कुत्ता सूंघकर बता देता है कि बारहसिंहा कहां है। पर मनुष्य

ऐसा नहीं कर सकता है। कारण यह है कि इस प्रकार की घ्राणशक्ति

केवल कुत्तों में होती है, मनुष्यों में नहीं। इसलिये क्या इस अद्भुत घ्राणशक्ति के कारण कुत्तों को 'पवित्र' माना जाना चाहिये?

एक ऐसा फकीर था जिसमें वह शक्ति थी कि वह किसी व्यक्ति को बादशाह बना दे। उसने यह शक्ति कैसे प्राप्त की? इस प्रश्न के उत्तर में उसने बताया कि उसने उपवास किया और उसके बाद उसने गायों का गोबर खाया। उसने एक विशेष प्रकार की साधना की और इस प्रकार उसने यह शक्ति अर्जित की। एक भद्र पुरूष ने उससे कहा- "आप किसी को बादशाह बना सकते हैं जिससे वह राजभोग कर सके । यह शक्ति आपमें है। पर इस शक्ति के बदले में आपके भाग्य में गायों का गोबर ही खाना बदा है।" इसी तुच्छ दृष्टिकोण से भारतीय इस प्रकार की शक्ति रखने वाले लोगों का थोड़ा-बहुत आदर सम्मान करते हैं। इससे अधिक उनका और कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि भारतवासी भलीभांति जानते हैं कि वह आत्म-ज्ञान ही है जो हमको सभी इच्छाओं, सभी अभिलाषाओं से ऊपर उठाता है।

एक बार एक हठयोगी एक भारतीय राजकुमार के सामने आया। फिर उसने लम्बे समय के लिये समाधि लगायी। उसमें जीवन का कोई चिह्न नहीं था। लोगों ने वर्षा, तूफानों से उसकी रक्षा करने के लिये उसके शरीर के ऊपर एक कुटिया बना दी। एक रात्रि, बहुत जोर का तूफान आया। फलस्वरूप कुटिया की कुछ ईंटें योगी के सिर पर गिर गयीं। वह योगी पुनः जीवित उठ खड़ा हुआ। उसने अपने मुख से जो पहले शब्द निकाले, वे थे- "हे राजन्! मुझे इनाम में एक घोड़ा दीजिये!

हे राजन्! घोड़ा ही मेरा पुरस्कार है, आप घोड़ा ही दें।" इस प्रकार की घटनाओं से भारतीय भलीभांति परिचित हैं। वे जानते हैं, इस प्रकार के व्यक्ति जब तक एकाग्रता और समाधि की स्थित में रहते हैं, तब तक उनकी अवस्था उत्कृष्ट होती है, पर ज्यों ही वे पुनः भौतिक धरातल पर उतरते हैं, वे उतने ही दुःखी और दीन-हीन हो जाते हैं जितना कोई अन्य व्यक्ति।

भारत में मुंह से कटार, तलवार या बड़ा चाकू खाना, शरीर की त्वचा में सुइयां चुभो लेना और इसी प्रकार के अचम्भित करने वाले करतब दिखाना साधारण बात है। इसी प्रकार तीन-चार घंटो के लिये अपने मन को भावातीत स्थिति में रखा जा सकता है परन्तु यह अनिवार्य रूप से समाधि की वह स्थिति नहीं है जिसकी अनुभूति दिव्य ज्ञान से प्राप्त की जाती है। भारत में हजारों लोग विभिन्न प्रकार के करतब दिखाने का अभ्यास करते हैं, लेकिन इनकी नगण्य महत्ता है। इसका उदाहरण यूनानी पुराण की एक कथा में मिलता है जब व्यर्थ में ही 'प्रामोथियस' ने स्वर्ग से अग्नि की चोरी की और उसके हाथ कुछ भी नहीं आया। कुछ अल्प समय के लिये अपने आपको भावातीत स्थित में प्रतिष्ठित करना बस ऐसा ही है, मानों आंखों के सामने पड़ा पर्दा केवल कुछ समय के लिये हटा लिया गया हो। आवश्यकता तो यह है कि यह पर्दा हमेशा के लिये हट जाय।

किसी ऐसे जलाशय या झील का उदाहरण लीजिये जिसके जल के ऊपर काई की हरी चादर बिछी हो। इस हरी काई को हाथ से

जरा सा हटाइये और फिर उसके नीचे सुन्दर, निर्मल, चमचमाता जल निकल आता है। यदि आपने अपना हाथ काई हटाने से अलग किया, फिर तो उस साफ-सुथरे पानी को हरी काई की परत फिर ढक लेगी और स्वच्छ पानी नहीं देखा जा सकता है, जिसे काई को दूर करके पहले देखा गया था। वस्तुस्थिति यह है कि अपने मन की झील को स्वच्छ करना,अत्यन्त सरल, संगत, व्यावहारिक और सुगम है। यदि आप मन रूपी झील से कुछ क्षणों के लिये काई को हटा दें तो आप देखेंगे कि उन क्षणों में आपका मन एकाग्र-निष्ठ हो गया है। परन्तु मन के चलायमान तथा अस्थिर रहने के रोग का यह स्थाई उपचार नहीं है। आपको चाहिये कि मन रूपी झील से बार-बार काई की परत को थोड़ी-थोड़ी करके निकालें और उस काई को बहुत दूर फेंक दे। इससे झील के ऊपर पड़ी परत पतली, और फिर और पतली होती जायेगी और इस प्रक्रिया से अन्ततः ऐसी सुखद स्थिति उत्पन्न होगी कि पूरी की पूरी मानस-झील काई से विरत हो जायेगी और उसमें पूरा का पूरा, सारे का सारा निर्मल जल झलकने लगेगा। बस, वेदान्त का यही लक्ष्य है, यही लक्ष्य वेदान्त ने अपने लिये निर्धारित किया है।

क्षणिक मानसिक एकाग्रता का एक दूसरा उदाहरण लीजिये। एक सर्प है जो आपको काट सकता है। परन्तु इस समय यह सर्प ठंड़ से ग्रसित है, उसकी ठिठुरन इतनी अधिक है कि उसने कुंडली पर कुंडली मारकर एक छोटी सी गेंद का अपना रूप बना लिया है। इस गेंद रूपी सर्प से आप किसी प्रकार का व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु यदि आप इसे घर लायें और अग्नि के सामने इस सर्प को रख दें तो फिर क्या

होगा? यह सर्प गर्मी पाकर अपने आपको फैलायेगा और आपको काट लेगा, क्योंकि जो विष उसमें पहले था, वह पुनः लौट आया, वह पुनर्जीवित हो गया। ठंड से पीड़ित होने के कारण उसका विष समाप्त नहीं हुआ था। क्षणिक रूप से मन को एकाग्र करने की यह विधा कुछ लोग अपनाते हैं। अधिकांश लोग एकाग्रता की जो यह प्रक्रिया अपनाते हैं, वह ऐसी है, मानों मन रूपी सर्प ठंड से ग्रसित होने के कारण कुंडली मारकर कुछ समय के लिये निष्क्रिय पड़ गया हो। इस मनरूपी सर्प के विषैले फन 'इच्छायें' हैं जो कुछ समय के लिये प्रत्यक्षतः मृत प्रतीत होती हैं। उस समय मन सो जाता है, या यों कह सकते हैं कि उन कतिपय क्षणों के लिये समाधि की स्थिति में मन हो जाता है। यह मनरूपी सर्प उन विशेष क्षणों में व्यावहारिक रूप से मरा हुआ मालूम होता है, पर वास्तव में वह मरा नहीं होता है। इस सर्प से, इस मनरूपी सर्प से हम एक दूसरे तरीके से व्यवहार कर सकते हैं।

आप हाथ में वीणा ले लें और वीणा से उस समय तक मंत्रों को मुख से फूंकते रहे जब तक कि वह सर्प वशीभूत और मोहित नहीं हो जाता है। तब आप अपनी होशियारी से, अपनी समझ-बूझ से, इस सांप को पकड़ सकते हैं और उसके मुख से दांत और विष की थैलियां निकाल सकते हैं। तब यही सर्प विष रहित तथा दंतविहीन हो जाता है, क्योंकि अब उसमें विष है ही नहीं। मन को बस में करने, मन को नियन्त्रित करने की यही वेदान्तिक विधा है।

प्रतीतात्मक आध्यात्मवेत्ता बहुधा ठंड से ग्रसित क्रियाहीन सर्प

की जैसी स्थिति अपने मन की बना लेते हैं और आनन्द की स्थिति में पहुंच जाते हैं। परन्तु दिन-प्रतिदिन के जीवन में उन्हें उन लोगों की चिन्ता करनी पड़ती है जो उनके सम्बन्धी हैं, भाई-बहिन और दोस्त-दुश्मन हैं आदि-आदि। ये सब उनके पास आते हैं, उनके अन्दर विराजमान आसक्तियों तथा अभिलाषाओं के सर्प को उष्मा देते हैं। उष्मा मिलने पर इन आसक्तियों और अभिलाषाओं का सर्प पुनर्जीवित हो उठता है और आन्तरिक मन पुनः कमीनापन और दुष्टता करने लगता है। चूंकि इस मानसिक सर्प के विषैले दन्त बाहर नहीं निकाले गये हैं, इसलिये गर्मी पाकर उसका विष पहले की तरह जहरीला हो जाता है। इस प्रकार के व्यवहार से वास्तविक चरित्र का निर्माण नहीं होता है और न ही सच्ची आध्यात्मिकता की प्राप्ति होती है।

ऐसे अधिकांश लोग हैं जो धनोपार्जन हेतु अपनी मानस शक्तियों का उपयोग करना चाहते हैं। जिस सीमा तक इन शक्तियों द्वारा मन की एकाग्रता होती है उस सीमा तक सब कुछ ठीक-ठाक रहता है। परन्तु आवश्यकता है, सर्प को विष-विहीन बनाने की। आप इस सर्प के विषैले दांतों को बाहर निकाल दीजिये, सभी प्रलोभनों से ऊपर उठिये और अपने चरित्र का निर्माण कीजिये। इन्ही लक्ष्यों की प्राप्ति पर विशेष ध्यान देना है और इन्ही की प्राप्ति करने की बात को सदैव स्मरण रखना है।

जब आप अपनी सभी कमियों तथा कमजोरियों का पूरा उपचार कर लेंगे तो उसी समय मन रूपी सर्प, विष-विहीन, दन्त-विहीन हो जायेगा। हो सकता है कि आपकी मानसिक स्थिति ठंड-ग्रसित निष्क्रिय

सर्प की भांति हो, पर वह स्थिति तो क्षणिक होती है, उसमें आपको रहने की आवश्यकता नहीं है। एक बार आपका उच्च-चरित्र बन गया और वह स्थाई हो गया, फिर तो आप दिन-प्रतिदिन के व्यस्त जीवन में निर्द्वंद रह सकते हैं; कोई आपको हानि नहीं पहुंचा सकता है, आपका कोई नुकसान नहीं कर सकता है, क्योंकि आप इन सब बातों से परे हैं, दूर हैं।

एक शराबी व्यक्ति था जो उस समय तक मद्य पान करता था जब तक कि वह बेहोश न हो जाय। एक बार बेहोशी की हालत में उसने अपना घर ५,००० रूपयों मे बेच डाला और इसी हालत में उसने ५,००० रूपयों में अपने घर की बिक्री करने के अभिलेखों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। यह जानकर उसकी पत्नी ने पति का नशा उतारने के लिये उसे सिरके जैसी तेज चीज पीने को दी। थोड़ी देर में वह होश में आ गया। तब उसने बेहोशी की हालत में जो कुछ किया, उसके लिये वह दुःखी हुआ, उसे पश्चाताप हुआ, क्योंकि उसने अपना बहुत बड़ा मकान कौड़ियों के मोल बेच दिया था। उसने निश्चय किया कि नशे की हालत में उससे जिस व्यक्ति ने मकान खरीदा था उसके विरूद्ध न्यायालय में वह एक मुकदमा चलायेगा, क्योंकि उसको आशा थी कि बेहोशी में उसने जो कार्य किया है, उसकी गुरुता तथा औचित्य के बारे में उसे पूरी-पूरी जानकारी नहीं थी, इसलिये वह अपना मुकदमा जीत जायेगा।

ठीक इसी प्रकार की स्थिति कुछ लोगों की होती है। वे एक प्रकार की मदहोशी की स्थिति में होते हैं और ऐसी दशा में ही वे ईश्वर

को अपना सब कुछ बेच डालते हैं, वे ईश्वर को अपनी सारी धन-दौलत दे डालते हैं, अपनी सारी सम्पत्ति का परित्याग कर देते हैं, अपने माँ-बाप, भाई-बहिन, मित्र सभी को छोड़ देते हैं, और अपना सर्वस्व ईश्वर को दे डालते हैं। उस स्थिति में उन्होंने ईश्वर के लिये अपना सब कुछ खो दिया। एक प्रकार से यह अच्छा है, क्योंकि उस समय उनकी स्थिति एकाग्रता की होती है। परन्तु थोड़े समय के उपरान्त ही सांसारिक इच्छायें इन लोगों पर हावी होने लगती हैं और उन्हें छोटी-बड़ी चिन्तायें घेरने लगती हैं। ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि नशा उतारने के लिये उनको सिरका जैसी कड़वी चीज पीने को दी गयी और फिर तो उनका नशा हिरन हो गया। फलस्वरूप कुछ समय पूर्व जो चीजें उन्होंने ईश्वर को दी थीं, वे सब की सब उन्होंने वापस ले लीं। अब तो उनका शरीर उनका अपना हो गया। इतना ही नहीं, उनकी इच्छायें इतनी बलवती हो जाती हैं कि जो घर उनके पड़ोसी का होता है, उसे भी वे हड़पना चाहते हैं। इस प्रकार उन्होंने ईश्वर को जो चीजें पहले दी थीं, उन सभी चीजों को वे वासस ले लेते हैं। परन्तु जहां तक ईश्वर को समपर्ण का प्रश्न है, वह कुछ क्षणों के लिये ही सही, अच्छा ही है।

परन्तु इससे काम चलने वाला नहीं हैं। वास्तविक शान्ति और सच्चा सुख आप उसी दशा में प्राप्त कर सकते हैं जब आप अपने आपको पूर्णता की स्थिति में प्रतिष्ठित कर लें, जब आप ईश्वर को सदैव के लिये अपनी प्रत्येक वस्तु समर्पित कर दें और आप अपना ऐसा चरित्र का निर्माण करें जो सभी प्रकार के प्रलोभनों के लिये रक्षा-कवच बन जाय। तब आपको संसार की न तो कोई चिन्ता रहेगी, न भय

और न कोई आशा, प्रत्याशा या अभिलाषा। क्योंकि आप इन सबसे परे हो जाते हैं। इन सबसे ऊपर उठ जाते हैं।

वेदान्त के अनुसार यदि आप क्षण भर के लिये ईश्वर के संसर्ग और सम्पर्क में एकाकार हो जाते हैं तो इतने से ही आप कुछ न कुछ मानस शक्तियों को प्राप्त कर लेते हैं। क्या आप चाहेंगे कि सारे का सारा विश्व आपका ही हो? यदि आप नियमित रूप से त्याग की उच्चातिउच्च शिखरों पर आरूढ़ होने में सफल हो जांय तो सभी कुछ आपका ही हो जायेगा।

यदि आपको राजा के किसी पदाधिकारी की सहायता की अपेक्षा है तब आप केवल उसी को अपना मित्र बनायेंगे। हो सकता है, इस पदाधिकारी के माध्यम से आप राजा और अन्य पदाधिकारियों से मित्रता कर लें अथवा उनसे मित्रता न कर सकें। परन्तु इसके विपरीत यदि आप सबसे पहले राजा से ही मित्रता कर लें फिर आपको क्या? आपको तो सभी अधीनस्थ पदाधिकारी अपने आप खोजेंगे और आपसे मित्रता करने के लिये लालायित होंगे।

भारत में कुछ ऐसे लोग हैं जो विशेष प्रकार की मानस शक्तियां प्राप्त करना चाहते हैं और वे इस लक्ष्य-प्राप्ति में सफल भी होते हैं। इनके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो इस प्रकार की शक्तियों से दूर रहना पसन्द करते हैं। वे तो त्याग के मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं। उनकी तो केवल एक ही जिज्ञासा है, और वह जिज्ञासा है उस

वस्तु को पाने की, जो आधार स्तम्भ है, सर्वाधिक आवश्यक है। निश्चित रूप से संसार में बिना त्याग के कोई भी शक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती है। यदि आप कोई विशेष शक्ति उपार्जित करना चाहते हैं तो उसके लिये आपको कुछ न कुछ त्याग तो करना होगा। पर यदि त्याग अपूर्ण है फिर तो उससे उपार्जित शक्तियां भी अपूर्ण होंगी। अतः'त्याग' को पूर्ण बनाइये और तभी 'सर्व' पर आपका आधिपत्य पूर्ण होगा, तभी सम्पूर्ण विश्व आपका होगा। जो लोग त्याग के मार्ग पर चलते हैं वे राजा के किसी पदाधिकारी से मित्रता करने के बजाय स्वयं राजा से ही मित्रता करते हैं। जब आपने अपने अन्तर में विराजमान राजा का साक्षात्कार कर लिया तो सभी पदाधिकारी एवं कर्मचारी आपके सेवक बन जाते हैं। यही प्राकृतिक व्यवस्था है। तभी अन्य शक्तियाँ आपको ढूंढ़ने के लिये, आपके पीछे-पीछे दौड़ेंगी। आपको शक्तियों के पीछे भागने की किंचित आवश्यकता नहीं है।

क्या मानस शक्तियों को विकसित करना उचित है? प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार की शक्तियां केवल सांसारिकता मात्र हैं। वेदान्त कहता है कि आप मृतात्माओं से संवाद और सम्प्रेषण कर सकते हैं, यह निश्चित रूप से सम्भव है। पर प्रश्न यह है कि क्या मृतात्माओं से संवाद करने की अपेक्षा जीवित व्यक्तियों से सम्पर्क तथा सम्प्रेषण करना अधिक श्रेयस्कर नहीं है?

यह एक विवादास्पद प्रश्न हो सकता है कि क्या मृतात्मायें हमारे पास आती हैं अथवा क्या यह हमारी अपनी स्वयं की आत्मा है, जो

मृतात्माओं के विविध आकार गृहण करती है? वेदान्त का निष्कर्ष है कि यदि आप स्थूल एवं भौतिक दृष्टिकोण से मानस-संसार को देखें तो आप कह सकते हैं कि मृतात्मायें आपके पास आती हैं। इस तथाकथित स्थूल एवं भौतिक संसार में लोगों के इस प्रकार के वक्तव्य या कथन भ्रामक हैं कि 'अमुक-अमुक' व्यक्ति मुझसे मिलने आया था। वास्तविकता इससे भिन्न है और सच्चा दृष्टिकोण तो यह है कि जो आपसे मिलने आते हैं, वे तो केवलमात्र आपकी स्वयं की आत्मा हैं। और वही आत्मा आपके सम्मुख खड़ी होती है, उस आत्मा के अतिरिक्त किसी का कोई अस्तित्व नहीं है। आप स्वयं सभी दृश्यमान, सभी प्रत्यक्ष विविधताओं और विभिन्नताओं में अपनी ही अभिव्यंजना करते हैं। वेदान्त के अनुसार आप स्वयं ही बंधु-वांधव, मित्र-शत्रु सभी हैं। वास्तविकता यह है कि यह कहना गलत है कि मृतात्मायें प्रकट होती हैं, इनके विभिन्न आकारों और अनेकानेक आकृतियों में वस्तुतः आप ही परिलक्षित होते हैं, यह सब परिवेश आपका स्वयं का है।

क्या मानस-शक्तियों को प्राप्त करने के लिये विशेष विधा का अनुसरण करना आवश्यक है? हां, आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति इंजीनियर बनना चाहता हैं, तो उसे तत्संबधी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति डाक्टर बनना चाहता है, तो उसे 'मेडिकल कालेज' में शिक्षा प्राप्त करनी होती है। इसी तरह मानस परिदृश्यों को देखने के लिये यह आवश्यक है कि तत्संबधी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया जाय। परन्तु इस समय इस प्रकार के प्रशिक्षण की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। राम आप लोगों से अनुरोध करता है कि भूत-प्रेतों

या परिछाइयों के पीछे मत दौड़िये। जहां पवित्र पुरूष या महात्मा रहते हैं वहां भूत-प्रेतों या मृतात्माओं को पहुंचने का साहस हो ही नहीं सकता।

एक समय राम ने हिमालय की गुफा में निवास किया। इस गुफा के बारे में कहा जाता था कि यहां भूत-प्रेत रहते हैं और तांडव करते हैं। समीपवर्ती गांवों के रहने वाले लोगों ने बताया कि उस गुफा में एक रात भर रहने पर एक नहीं, अनेक साधु मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। यह भी कहा जाता था कि कुछ पर्यटक गुफा में गये और डर के मारे मूर्छित होकर मर गये। जब राम ने उस गुफा में निवास करने की अपनी इच्छा व्यक्त की तो वहां का हर व्यक्ति आश्चर्य-चकित रह गया। राम ने इस गुफा में अनेक महीनों तक निवास किया, पर कोई भूत-प्रेत प्रकट नहीं हुआ। ऐसा मालूम होता था मानों सभी प्रेतात्मायें भाग गयी हों। उस गुफा के अन्दर और समीपवर्ती क्षेत्रों में सांप-बिच्छू थे, पर किसी ने राम के शरीर को हानि नहीं पहुंचायी।

वेदान्त ने यह सिद्ध कर दिया है कि निर्द्वन्द आत्मा या जीवनमुक्त पुरूष शरीर-त्याग के बाद कभी भी भूत-प्रेत नहीं बनते हैं। वस्तुतः जो लोग अपने भ्रमों के गुलाम होते हैं, केवल उन्हें ही भूत-प्रेतों या मृतात्माओं की छाया बनना पड़ता है। जो लोग, आसक्तियों या इच्छाओं से ग्रसित रहते हैं, केवल उन्हीं को ही छायात्मक आकारों की जंजीरों में जकड़ा जाता है।

डा.जानसन की वार्ताकारों में विशिष्ट राजकुमार के रूप में

प्रतिष्ठा थी। उनके बारे में कहा जाता था कि तर्क में उनका कोई सानी नहीं था। क्योंकि यदि किसी कारणवश वे अपने तर्कों से दूसरों को हरा नहीं पाते तो वे 'वितर्क' से उन्हें चित कर देते थे। यदि उनकी पिस्तौल का निशाना चूक जाय तो वे उसकी मूंठ मारकर दुश्मन को गिरा देते थे। डा. जानसन को गर्व था कि तर्क में वे अद्वितीय हैं, उनका तर्क ही अन्तिम है। एक बार ऐसा हुआ कि उन्होनें स्वप्न में देखा कि वे तर्क में बर्क' से हार गये हैं। जैसा डा.जानसन का स्वभाव था, यह हार उनके लिये असह्य हो गयी। यह हार जानसन के लिये इतनी बुरी हार थी कि उनके भय की भयंकरता की कल्पना नहीं की जा सकती थी। अतः वे जागकर उठ बैठे और अपना मानसिक संतुलन खो बैठे। फलतः वे सो नहीं सके। परन्तु मन तो अपने स्वयं की प्रकृति से, अपने दिव्य स्वभाव के कारण अधिक समय तक बेचैन नहीं रह सकता है। डा.जानसन को अन्ततः अपने आप को नियन्त्रित करना पड़ा। किसी न किसी प्रकार उन्हें अपने आपको संतुष्ट करना पड़ा। उन्होंने गम्भीर रूप से चिन्तन किया और इस निष्कर्ष से उन्होने अपने को संतुष्ट किया कि जो तर्क 'बर्क' ने स्वप्न में प्रस्तुत किये थे और जिनके सामने वे हारे थे, वस्तुतः वे सभी तर्क उन्हीं के मस्तिष्क की उपज थे, वास्तविक 'बर्क' को तो उन तर्कों की कोई खबर ही नहीं, 'बर्क़' को उनका कोई ज्ञान ही नहीं। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध किया कि वे स्वयं ही थे जो अपने सामने 'बर्क' के रूप में प्रकट हुये थे और तथाकथित 'बर्क' से तर्क में पराजित हुये थे।

इस प्रकार वस्तुस्थित यही है कि आप ही हैं, जो भूत-प्रेतों, मृतात्माओं, मित्र-शत्रु, पडोसियों, तालाबों, जलाशयों, नदियों, पर्वतों आदि

विभिन्न आकारों में अपने आपको प्रकट करते हैं। स्वप्न में आप नदी और पर्वत देखते हैं। यदि ये पदार्थ आपकी आत्मा से बाहर होते तो स्वप्न में दिखायी पड़ने वाली नदी के पानी से सोते समय आपका बिस्तर गीला हो गया होता और स्वप्न में दिखायी पड़ने वाले पर्वत के बोझ से आपका बिस्तर तथा कमरा सभी दब गये होते। पर ऐसा नहीं होता है। स्वप्न में दिखायी पड़ने वाली उफनती नदियां तथा विशालकाय पर्वत- सभी तो आपके अन्तस्थल में हैं। वाह्य जगत के दृश्यों में आप अपने आपको विभिन्न आकारों में विभाजित कर देते हैं। आप ही स्वयं एक ओर दृश्य हैं और विवेक बुद्घि से सोचने पर आप स्वयं ही दूसरी ओर दृष्टा हैं।

वास्तव में आप स्वयं ही दृष्टा और दृश्य, दोनों हैं। आप ही वास्तविक आत्मा हैं, साथ ही तथाकथित परिछिन्न अनात्मा भी। आप ही गुलाब के सुन्दरतम फूल हैं और उसका रसपान करने वाली प्रेमिका कोयल भी। आप ही फूल हैं और उसकी मधुमक्खी भी। आप सभी कुछ हैं, आप सर्वस्व हैं। भूत-प्रेत और मृतात्मा, देवी-देवता या देव-दानव, पापी और पुण्यात्मा-सभी कुछ आप ही हैं। इसका ज्ञान प्राप्त कीजिये, इसकी अनुभूति कीजिये, इसका साक्षात्कार कीजिये, और फिर तो आप स्वतंत्र हैं! बस, यही त्याग का मार्ग है। कभी भी आप अपने आपको, अपने केन्द्र-बिन्दु से विलग न होने दें। अन्यथा आपका पतन हो जाएगा। आप अपने आप में अपना विश्वास प्रतिष्ठित करें, आप अपने केन्द्र-बिन्दु में ही विराजें। तभी कोई भी आपको विचलित नहीं कर सकेगा। 'तत्वमसि'।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

चरित्र- निर्माण का आध्यात्मिक विधान

उपस्थित भद्र महिलाओं तथा सज्जनों के
रूप में विराजमान मेरे निज आत्मन् !!

जिस व्यक्ति ने एक बार भी स्वयं की अनुभूति कर ली, स्वयं का साक्षात्कार कर लिया, उसके लिये संसार में क्या ऐसी कोई वस्तु है जिसकी वह इच्छा कर सकता है? समस्त साम्राज्यों के सभी कोषागारों में, ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण परिवेश में क्या कहीं ऐसी चीज है जो उस व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हो सके? इस विश्व के सभी सौन्दर्य और प्रलोभनों में कुछ भी तो ऐसा नहीं है जो उसका ध्यान आकर्षित कर सके। ज्ञान के सभी प्रकार के भंडार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी ओर वह आंख उठाकर देखे। ओह! कितना अनुपम आनन्द,कितना सर्वोत्कृष्ट हर्ष, कितना परिपूर्ण आल्हाद! कितना अवर्णनीय है यह सब! इस आनन्दातिरेक को अभिव्यक्त करने में सभी भाषायें असमर्थ हैं, यह हर्ष वर्णनातीत है, वाणी मौन है।

आप ही स्वयं वह अनन्त हर्ष हैं, आप ही स्वयं वह सर्वोच्च आनन्द हैं, वह असीम सुख हैं। यही आपका सच्चा स्वरूप है, यही आपकी आत्मा है, यही आपकी 'अस्ति' है।

इस तत्व की अनुभूति कीजिये और आप तत्क्षण सभी

(स्वामी राम द्वारा १७ दिसम्वर, १९०२ को 'हरमैटिक ब्रादरहुड हाल', सनफ्रांसिसको, अमेरिका में दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

आवश्यकताओं, सभी आकांक्षाओं से ऊपर उठ गये। इसी सत्य पर अधिकार कीजिये और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपका है।

आह! पर लोग कितनी भयंकर भूल करते हैं, कितनी बड़ी विडम्बना के शिकार बन जाते हैं। कैसे? वे सांसारिक मायाजाल, परिछिन्नताओं, परछाइयों तथा मृगतृष्णाओं की खोज में अपने अन्तस्थ के इस अनन्त हर्ष, सर्वोत्कृष्ट आनन्द का परित्याग कर बैठते हैं। तथ्य यही है कि सारा का सारा आनन्द आपका है और मूर्तिमान आनन्द आप स्वयं हैं। तब आप इस आनन्द की खोज क्यों न करें? आप अपने जन्म-सिद्ध अधिकार को प्राप्त करें। पर कितना विचित्र है, लोग 'इसो' की भांति गोश्त की छोटी सी बोटी खाने के लिये अर्थात् पेट भरने के लिये आनन्द के अपने जन्म-सिद्ध अधिकार को बेंच डालते हैं। कैसी विडम्बना है।

इसी प्रकार अन्तिम समय में ईसा मसीह को धोखा देने वाले 'जुडास इसकैरियट' ने ईसा मसीह को चांदी के केवल तीस सिक्कों के लिये पकड़वा दिया। आप कृपया इस संसार के लुभावने तथा भ्रामक सुखों के लिये प्रभुओं के प्रभु, अपनी वास्तविक आत्मा के 'ईसा मसीह' को कदापि मत बेचें। अधिक बुद्धिमान बनिये, अधिक विवेकपूर्ण बनिये।

वास्तव में सच्चा आनन्द आपके भीतर है, दिव्यता का, अमृत का अनन्त महासागर आपके अन्तस्थ में हिलोरें मार रहा है। इस सत्य

की आप अपने अन्दर खोज कीजिये। इस सत्य की अनुभूति कीजिये,

इसकी निरन्तर अनुभूति करते जाइये। और बस, यहीं तो आपकी अद्वितीय आत्मा विराजमान है। यह आत्मा न तो आपका शरीर है और न ही मन या बुद्धि। यह न तो कोई अभिलाषा है या वांछितवस्तु को पाने की आशा। यह कोई इच्छित पदार्थ भी नहीं। यह आत्मा अर्थात् आप स्वयं इन सब बातों से परे हैं। ये सब दृश्य तो आपकी अभिव्यंजनायें हैं। कभी आप खिले हुये फूल के रूप में प्रकट होते हैं तो कभी टिमटिमाते लुभावने तारों के रूप में। इस संसार में ऐसा क्या है जिसको प्राप्त करने के लिये आपको इच्छा करनी पड़े?

बस आप 'ॐ' का उच्चारण करें, 'ॐ' का उद्घोष करें। और ऐसा करते समय आप इसी 'ॐ' ध्वनि में अपना सम्पूर्ण हृदय समाहित कर दें, इसी 'ॐ' ध्वनि में अपनी सारी शक्ति लगा दें, अपना पूरा अन्तःकरण इसी 'ॐ'ध्वनि में समर्पित कर दें। इस 'ॐ' मंत्र का अर्थ है- 'तत्वमसि' अर्थात् 'मैं वहीं हूं' 'मैं और ईश्वर एक हैं'। 'ॐ' का जाप करते समय आप अपनी सभी कमजोरियों और अपने सभी प्रलोभनों को अपने मन के सामने आने का आग्रह करें और फिर उन्हें अपने पैरों तलें रौंद डालें, उनको कुचल दें। उनसे ऊपर उठें और उन सभी को पराभूत कर विजयी होकर निकलें।

भारतीय पुराणों में एक सुन्दर उपाख्यान- 'कालि-दहन' का दिया गया है। जब कृष्ण के माता-पिता, सगे-सम्बन्धी, मित्रादि सभी यमुना के तट पर खड़े थे तभी उनके सामने कृष्ण यमुना नदी में कूद पड़े। इस कथानक के अनुसार, कृष्ण के उफनती यमुना नदी में कूदने

पर सभी लोग अवाक रह गये, स्तब्ध रह गये, और मुंह से कुछ भी नहीं कह सके। लोगों ने समझा अब तो कृष्ण चल बसे और वे दुबारा नदी में कभी ऊपर नहीं आ सकेंगे। कथानक में आगे बताया गया है कि कृष्ण यमुना की तलहटी तक चले गये, और वहां पर हजारों फन वाला काली नाग बैठा था। कृष्ण अपनी बांसुरी बजाने लगे और बांसुरी से 'ॐ' का मंत्र गाने लगे और एक-एक करके काली-नाग के विषैले फनों पर नाचने लगे। वे एक-एक कर उसके विषैले फनों को कुचलने लगे। पर ज्यों ही वे एक-एक करके काली नाग के जितने फन कुचलते थे, उतने ही फन उसमें पुनः फूट निकल आते थे। इस प्रकार इन फनों को समाप्त करना अत्यन्त दुष्कर हो गया। परन्तु काली-नाग के फनों पर कृष्ण तो कूदते रहे, तथा नाचते रहे और अपनी बांसुरी से 'ॐ' मंत्र गाते रहे। वे 'ॐ' मंत्र निरंतर बजाते रहे, काली नाग के फनों पर नाचते रहे और उसके फनों को कुचलते रहे। लगभग आधे घंटे में काली नाग की लीला समाप्त हो गयी। कैसी थी कृष्ण की बांसुरी की मोहनी ध्वनि और कैसा हुआ कृष्ण के चरणों के नृत्य का प्रभाव! काली नाग मर गया। यमुना का जल रक्त-रंजित हो गया, काली-नाग के रक्त से यमुना का पानी लाल हो गया। काली-नाग की सभी पत्नियां आभार प्रकट करने के लिये कृष्ण के सामने आयीं, वे कृष्ण के अमूल्य और मधुरतम दर्शन के अमृत का पान करके कृतकृत्य होना चाहती थीं। अन्ततः कृष्ण यमुना नदी के ऊपर आये। सभी अचंभित थे, सगे- सम्बन्धी तथा मित्रगण, जो वहां खड़े थे, वस्तुतः कृष्ण के दर्शन कर उनके हर्ष का पारावार ही नहीं रहा क्योंकि उनका अनन्य प्रेमी, कृष्ण फिर से उनके बीच आ गया। इस कथानक के दोहरे अर्थ हैं। वस्तुतः

यह उन लोगों के लिये एक सार्थक तथा प्रत्यक्ष पाठ है जो वास्तविकता का दर्शन करना चाहते हैं,जो अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करना चाहते हैं।

इस उपाख्यान में यमुना नदी की तुलना मन के जलाशय या झील से की जा सकती है। और जो कोई भी कृष्ण बनना चाहता है, जो कोई अपने खोये हुये स्वर्ग को पुनः प्राप्त करना चाहता है, उसे अपने मन के जलाशय में गहरी डुबकी लगानी होगी और पानी के तल तक पहुंचना होगा। उसे अपने मन, अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति के जलाशय में गहरी पैठ लगानी होगी जिससे वह धरातल पर पहुंचकर विषैले नाग, इच्छाओं तथा वासनाओं के विषैले भुजंग, सांसारिक मन के विषयुक्त नाग से युद्ध कर सके। उसे इस नाग को कुचलना होगा, इसके फनों को नष्ट करना होगा, इस नाग के अनेकानेक सिरों को पैरों तले रौंदना होगा और उसे वशीभूत कर उसका अन्त करना होगा। उसे अपने मन के जलाशय को स्वच्छ बनाना होगा। वह अपने मन में गहरी पैठ कर मन को निर्मल बना सकता है। विधि वही है जो कृष्ण ने अपनायी थी। उसे अपनी बांसुरी उठानी होगी और बांसुरी से 'ॐ' मंत्र की ध्वनि का गायन करना होगा। उसे अपनी बांसुरी से 'ॐ' का दिव्य तथा स्वधन्य गान का गायन करना होगा।

यह बांसुरी क्या है? आपके लिये यह एक प्रतीक हो सकता है। बांसुरी को ध्यान से देखिये। भारतीय कवि बांसुरी को अत्यधिक महत्ता देते हैं। वह कौन सा महत कार्य है जो बांसुरी सम्पन्न करती है और जिसके कारण इसकी इतनी अधिक महत्ता और महापदवी है?

वह कौन सा बड़ा कर्म है जिसके कारण बांसुरी को इतनी अधिक मान्यता तथा स्थान प्राप्त हुआ है? वह कौन सी अद्भुत बात है कि कृष्ण, जिनकी पूजा-अर्चना होती है, जिसे महान से महानतम सम्राट प्यार करते हैं, जिसकी विशाल भारत की हजारों- लाखों गोपिकायें प्रेम से आराधना- पूजा करती हैं, उस कृष्ण, मूर्तिमान प्रेम का प्रतीक उस कृष्ण ने क्योंकर राजा- महराजों- सम्राटों पर एक बार भी दृष्टिपात करना उचित नहीं समझा, अपितु क्योंकर उस कृष्ण ने बांसुरी को बारम्बार अपने मधुर चुम्बन से अनुगृहीत किया? किस गुण ने बांसुरी को यह अतुलनीय प्रतिष्ठा प्रदान की? बांसुरी का उत्तर था- "मेरा एक ही सद्गुण है, मुझमें एक ही अच्छाई है। वह यह है कि मैंने अपने आपको सभी बातों से रिक्त कर दिया है, मैं समस्त इच्छाओं से च्युत हूं।"

आप जानते हैं कि बांसुरी आदि से अन्त तक खाली है। वह कहती है- "मैंने अपने आप को अनात्म से विहीन कर लिया है।" इसी प्रकार ओठों (अधरों) पर बांसुरी रखने का तात्पर्य है- हृदय को शुद्ध करना, मन को ईश्वर से परिपूर्ण करना, प्रत्येक वस्तु ईश्वर के,अपने प्यारे कृष्ण के चरणों में समर्पित कर देना। बस, आप अपने शरीर पर सभी प्रकार के अपने अधिकारों से अपने अन्तःस्थल को विरत कर लें, सभी स्वार्थपरता, सभी स्वार्थमय सम्बन्धों, मेरे-तेरे के, द्वैत के सभी विचारों का परित्याग कर दें और आप इन सब के ऊपर उठें। बांसुरी को अधरों पर लगाने का तात्विक अर्थ है- ईश्वर की आराधना करना, ईश्वर से इस प्रकार प्रेम करना, जिस प्रकार का प्रेम किसी भी सांसारिक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के साथ न किया हो। अपनी वास्तविक आत्मा

का साक्षात्कार करने के लिये यह आवश्यक है कि आप ईश्वर के प्रति उसी प्रकार की क्षुधा, पिपासा से व्याकुल हों, जिस प्रकार की क्षुधा या पिपासा से सांसारिक व्यक्ति अपनी अभीप्सित वस्तु को प्राप्त करने के लिये तड़पता है जो उसे बहुत समय से नहीं मिली हो। दिव्यता को प्राप्त करने के लिये भूखा रहना और प्यासे रहना, सत्य को पाने के लिये उत्कृष्ट आकांक्षा का अभिलाषी होना, आत्मा की सर्वोच्च वास्तविकता के आनन्द के लिये व्याकुल होना और अपने मन को इसी प्रकार की अलौकिक समतुल्य स्थिति में अपने को प्रतिष्ठित करना आपके लिये वांछनीय है। इसके लिये आप अपनी मानसिक अवस्था को संतुलित बनाकर हृदय को शान्त कर, विशुद्ध अन्तःकरण से 'ॐ' की पवित्र ध्वनि का उच्चारण करें, 'ॐ' का गायन शुरू करें। सत्य यह है कि बांसुरी में आदि संगीत ही समाहित है। आप अपना सम्पूर्ण जीवन एक बांसुरी की भांति बनायें। बस, आप अपने पूरे जीवन को बांसुरी की भांति रिक्तता में परिवर्तित कर दें। उसे स्वार्थपरता से बिल्कुल खाली कर दें और उसे दिव्य- स्वांस से परिपूर्ण कर दें।

'ॐ' का उच्चारण कीजिये और 'ॐ' का उच्चारण करते हुये अपने मन की झील या जलाशय में अभीष्ट खोज करना शुरू कर दीजिये। अनेक जिह्ना वाले विषैले नाग को ढूंढ निकालिये। इस विषैले नाग के अनेकानेक सिर, जिह्ना और फन वास्तव में आपकी अगणित सांसारिक प्रवृत्तियां, स्वार्थमय आवश्यकतायें और कामनायें हैं। 'ॐ' की अनादि ध्वनि को गाते हुये इन सभी दुष्कामनाओं को एक-एक करके कुचल डालिये, अपने पैरों तले इनको रौंद डालिये, एक-एक करके इनका पता लगाइये, उन पर विजय प्राप्त कीजिये और उनको समाप्त कर दीजिये।

आप अपने चरित्र का निर्माण करें, दृढ़ निश्चय करें, कठोर संकल्प लें और पवित्र प्रतिज्ञायें करें, जिससे जब आप अपने मन की झील या मन के जलाशय से बाहर आयें तब उसका जल विष से मुक्त हो। इससे यह होगा कि जो लोग इस जलाशय का पानी अपनी प्यास बुझाने के लिये पियेंगे, वे उस पानी से जिसमें विष पहले व्याप्त था, उससे पीड़ित नहीं होंगे। मन की झील से आप अपने मन को पूर्णरूपेण विशुद्ध करके निकलें। हो सकता है, इस पर लोगों का आपसे मतभेद हो, लोग आपको सभी प्रकार की कठिनाइयों से परेशान करें, लोग आपकी निन्दा करें, पर आप चिन्ता न करें, उन्हें ऐसा करने दें।

लोगों के प्रलोभनों और उनके भय,उनकी धमकियों और उनके वायदों के बावजूद आपको ऐसा बना रहना है जिससे आपके मन की झील से केवल दिव्य,अनन्त,विशुद्ध एवं निर्मल जल के अतिरिक्त और कुछ भी प्रवाहित न हो। आप से तो केवल अमृत ही अमृत प्रस्फुटित होना चाहिये जिससे आपके लिये किसी प्रकार की बुराई के बारे में किंचित सोचना उसी प्रकार असम्भव हो जाये जिस प्रकार विशुद्ध जल- स्रोत को किसी ऐसे व्यक्ति को विष- ग्रसित करना, जो उसके जल का सेवन करे। हृदय को शुद्ध कीजिये, 'ॐ' की अनादि ध्वनि को तन्मयता से गाइये,अपनी कमजोरियों के सभी बिन्दुओं का पता लगाइये और उन सब बिन्दुओं का विनाश कर डालिये। एक सुन्दर चरित्र का निर्माण करके, आप विजय- श्री का वरण करें। जब वासनाओं के नाग का अन्त हो गया तब आप देखेंगे कि आपकी अभीप्सित वस्तुयें आपकी ठीक उसी प्रकार पूजा करेंगीं जिस प्रकार यमुना नदी के काली नाग की

पत्नियों ने कृष्ण की उस समय पूजा- अर्चना की थी, जब कृष्ण ने काली नाग की लीला समाप्त कर दी थी।

एतदर्थ आप अपने प्रयोग के लिये एक मान- चित्र बनायें और इस मानचित्र में साधारण पापों,कमजोरियों तथा कमियों की सूची अंकित कर दें। इस सूची के तैयार हो जाने के बाद आप सप्ताह का कोई एक दिन चुनें। इस दिन आप कदाचित लोभ या शोक से पीड़ित हों। तब आप इस दिन के विवरण में लोभ- शोक के शीर्षक के अन्तर्गत इसको व्यक्त करने के लिये एक चिह्न बना लें और विभिन्न वासनाओं तथा त्रुटियों के बारे में भी ऐसा करें। इस प्रकार निजी दैनन्दिनी रखने से आप अपने मन के सामने अपनी बुराइयों तथा कमियों को सूची-बद्ध कर सकेंगे और आप सीधे-सीधे इन कमजोरियों का आमना-सामना कर पायेंगे।

राम आपसे यह अनुरोध नहीं करता है कि मान- चित्र में आप अपनी कमजोरियों के चिह्न हमेशा बनाये रखें। हो सकता है कि आज आप कुछ कमजोरियों के शिकार बने हों। आप कृपया स्वयं के प्रति सच्चे बनें और उनके चिह्नों को आज ही मान-चित्र में अंकित कर दें। अगले दिन प्रातः काल या सुविधाजनक किसी भी समय आप अपना दरवाजा बन्द कर लें, एकान्त में अकेले बैठें और मानचित्र अपने सामने खोलें। यहां आप इस बात पर ध्यान दें कि आप क्योंकर लोभ-शोक या इसी प्रकार के अन्य प्रलोभनों के शिकार बने थे? इनको दूर करने के लिये आप अपने आपको संबोधित कर स्वगत भाषण करें।

इस देश में हम बहुत विद्वानों से अनेकानेक व्याख्यान सुनते हैं। यदि इस युग के सभी लब्धप्रतिष्ठ वक्ता,यहां तक कि ईसा मसीह या स्वयं ईश्वर ही आयें और आपको व्याख्यान देकर समझायें, तब भी इन व्याख्यानों से आपको कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है। जब तक आप अपने आपको स्वगत भाषण द्वारा सम्बोधित करने के लिये तैयार नहीं होंगे तब तक आपको लाभ नहीं होगा। केवल वही व्यक्ति अपने आपको समुन्नत कर सकता है और अपने आपको ऊंचा उठा सकता है जो स्वयं को संबोधित कर अपने को व्याख्यान दे। आपको मालूम है कि आप शोक- ग्रस्त हुये थे। अब आप इन शोक- भावनाओं का निदान तथा उपचार करने की कोशिश करें। आप शोक-भावनाओं से क्योंकर वशीभूत और पराभूत हुये थे? इसके कारणों का पता लगायें और फिर इनके निराकरण की विधा ढूंढे। इस समय आप कोई उपदेशात्मक पुस्तक जैसे भगवद्‌गीता या बाइबिल या कुरान या इमरसन की कोई किताब या अन्य कोई उत्कृष्ट पुस्तक उठायें और उसको पढ़ें। यह ऐसी पुस्तक होनी चाहिये जो आपको शोकाकुल स्तर से ऊपर उठने के लिये अभिप्रेरित करे। फिर इस पुस्तक की सहायता से और स्वयं को दिये गये स्वगत-भाषणों, सद्विचारों के मनन, निद्‌ध्यासन, चिन्तन से शोकाकुल जैसी कुत्सित भावनाओं को हमेशा के लिये दूर भगाने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा प्रयत्न करते समय आप आश्वस्त हो गये कि आपने अपनी बुराई या कुत्सित भावना पर विजय प्राप्त कर ली है और अब आप बुरी भावना का कभी भी पुनः शिकार नहीं बनेंगे तो आप इस बात की बिल्कुल चिन्ता न करें कि इस निमित्त आप पर कौन सी भयानक मुसीबत टूट पड़ेगी। जब आप आश्वस्त हो गये कि आपने

उस प्रलोभन को अपने पैरों तले रौद दिया है और उस कमजोरी पर विजय प्राप्त कर ली है तो आपने जो मानचित्र बना रखा है,उसमें से उस कमजोरी या प्रलोभन के चिह्न को काट दें। अब आप इस प्रलोभन से स्वतंत्र हैं। भूतकाल के कृत्यों या कर्मो के लिये आप अपने आपकी क्यों निन्दा करें? भूतकाल को भूत ही बना दें, उससे क्या लेना देना?

आप जो मान-चित्र बनायें,उसमें अंकित दोषों को एक-एक कर लें,और प्रत्येक दोष के कारण तथा उपचार का पता लगायें, प्रत्येक दोष का निदान करें और उसका निवारण करें; स्वयं को सम्बोधित कर अपने आपको भाषण करें। इस व्याख्यान के दौरान उपस्थित लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने आपको संबोधित करना होगा और अपने-अपने दोषों का निदान तथा उपचार करने का प्रयत्न करना होगा। यह काम आप में से हर एक व्यक्ति को स्वयं करना होगा। आप एकान्त में बैठ जाइये और जिन दोषों से आप ग्रसित है, उन पर आप चिन्तन करें। चिन्तन करते समय आप 'ॐ' का उच्चारण करें या 'ॐ' का गायन करें। जब आपके ओंठ, अनादि ध्वनि 'ॐ' का गायन कर रहे हों, जब आपकी आवाज इसी पवित्र 'ॐ' का उच्चारण कर रही हो, जब आप अपने संकल्प में एकनिष्ठ दृढ़ हों, उस समय आपके ऊपर अनन्त दिव्य आशीर्वाद की वर्षा होने लगेगी। आप अपने अन्तस्थल से अधिक शक्तिशाली हो जायेंगे। जिन दोषों को आप रौंद रहे हैं, वे उस नाग के विभिन्न फन हैं जिन्होने आपके मन की झील को विषाक्त बनाया है। सभी दोषों, सभी कमियों का एक ही सामान्य कारण है,एक ही सामान्य मूलाधार हैं, सभी बुराईयों की एक ही जड़ है। और वह

है- अज्ञान, सभी प्रकार का अज्ञान, विशेष रूप से वास्तविक आत्मा का अज्ञान, सच्ची आत्मा का अज्ञान।

सामान्यतः लोग अपने शरीर से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, इस शरीर के चारों ओर सभी प्रकार की वस्तुओं को संगृहीत कर लेते हैं और सुखों की अनुभूति वाह्य वस्तुओं से करना चाहते हैं। वे अपने शरीर द्वारा अपना परिचय देना चाहते हैं, फलतः उन्हें शोकाकुल होना पड़ता है अथवा दुखों से पीड़ित होना होता है।

शरीर से ऊपर उठिये। इस सत्य की अनुभूति कीजिये और साक्षात्कार कीजिये कि आप आनन्द, सर्वोच्च आत्मदेव हैं। तब आप किस प्रकार वासनाओं, या लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियों से दुखित हो सकते हैं?

यदि वास्तविक आत्मा सम्बन्धी सामान्य अज्ञान का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन करें तो इनमें से सबसे बड़ी श्रेणी प्रकृति के सामान्य नियमों के बारे में अज्ञान की होगी। इसी अज्ञान के कारण लोग बीमार तथा कमजोर होते हैं। प्रकृति का सर्वाधिक पवित्र, सर्वोच्च नियम है, और वह त्रिकाल में विनष्ट नहीं होता है। नियम यह है:

"आप कोई भी भूल करें, कोई भी शरारत या अनिष्ट करें, अपने मन में किसी प्रकार के अन्याय को बढ़ावा दें, आप किसी ऐसे स्थान में कोई दुष्कर्म या पाप करें जहां आप निश्चिन्त हों कि आपको पाप करते समय कोई पकड़ नहीं सकता है या आपका पता नहीं लगाया

जा सकता है या जहां कोई भी आपको पापों के बारे में उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है, जहां भी चाहे यहां तक कि ऐसे स्थान में,जो इतना सुरक्षित हो जितना कोई दुर्ग हो सकता है वहां आप इन पापों, इन बुराइयों के बीज बो दें, वस बीज बोने भर की देर है, फिर तो आपको प्रकृति के कठोरतम, निर्दयतम, अमोघ, अपरिहार्य, शाश्वत नियम के अधीन उस बोये गये बीजों का फल भुगतना ही होगा, आपको दुख, कष्ट, दारूण्य अवश्यमेव भुगतना होगा। पाप की परिणति 'मृत्यु' है, यही पाप का मूल्य है।"

प्रकृति के इस नियम को लोग नैतिक नियम मानते हैं और कहते हैं कि यह नियम उतना ठोस और शक्तिशाली नहीं है जितना गणितीय नियम होता है। लोग कहते हैं कि प्रकृति के इस नियम में गणितीय निश्चयात्मकता और सत्यता नहीं है। जो लोग इस प्रकार सोचते हैं, वे भ्रम में है, भूल करते हैं। यदि आप सर्वाधिक निर्जनतम गुफा में कोई पाप करें तो आपको तुरन्त, तत्क्षण यह देखकर आश्चर्य होगा कि जिस धास के ऊपर खड़े होकर आपने पाप किया है वही घास आपके विरुद्ध गवाही देने के लिये पूरे जोर-शोर से अपना सिर उठाये पुनः खड़ी हो गयी है। समय आने पर आप देखेंगें कि उन्हीं दीवालों, उन्हीं पेड़ों के पास, जिनके पास आप पाप करते हैं, जिनकी अपनी जिह्वायें होती हैं, वे सभी अपनी गवाही की बातों को स्पष्ट करती रहती हैं। आप प्रकृति को, ईश्वर को धोखा नहीं दे सकते हैं। यही सत्य है, यही विधान है।

जब हम केवल अपने हृदय में पाप करते हैं तभी तत्क्षण हम देखते हैं कि हम वाह्य जगत में अत्यन्त व्याकुल करने वाली और कष्टदायक परिस्थितियों से घिरे हैं, कठिनाइयों तथा द्विविधाओं से ग्रसित हो गये हैं। सत्य यही है, वास्तविकता यही है और वस्तुस्थिति भी यही है। परन्तु जो लोग अपनी कठिनाइयों के वास्तविक कारण से अनभिज्ञ हैं, वे परिस्थितियों पर दोषारोपण कर बैठते हैं, वे अपने आस-पास की स्थितियों से लड़ने-झगड़ने लगते हैं, वे अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा साथियों के विरुद्ध न्यायालयों में मुकदमा ठोंक देते हैं। होना यह चाहिये कि सभी बाजारों, सभी स्थानों, कोने-कोने से दिव्य विधान का उद्घोष हो। दिव्य विधान है:- *"ईश्वर की आंखों में धूल झोंकने की कोशिश करो, फिर तो आपको स्वयं ही अंधा बनना पड़ेगा, आंखों से ही हाथ धोना पड़ेगा।"*

विधान यही है कि आपको स्वयं को अवश्यमेव पवित्र बनाना ही पड़ेगा। यदि आप हृदय में अपवित्रता को पनपने देंगे फिर तो आपको उसका परिणाम भुगतना ही होगा। राम समय आने पर इन आध्यात्मिक नियमों पर एक-एक करके विचार करेगा और यह सिद्ध कर देगा कि आध्यात्मिक नियमों में उससे अधिक निश्चयता तथा सत्यता है जितनी गणितीय सिद्धान्तों में हो सकती है। जब कोई भी व्यक्ति एक बार इन आध्यात्मिक नियमों को समझ लेगा, तो फिर उसके लिये स्वार्थमय इच्छाओं के सामने किंचित मात्र झुकना असम्भव हो जायगा। आप अपनी अभिलाषाओं पर नियंत्रण पाने पर अपने मन

को जितने समय के लिये एकाग्र करना चाहें कर सकते हैं। परन्तु

इसके लिये सबसे पहली आवश्यकता यही है कि आप अपने चरित्र का निर्माण करें। अन्य विकल्प नहीं है।

क्या किसी व्यक्ति को अपना मन जीतने के लिये उपवास करना आवश्यक है?

उपवास के सम्बन्ध में राम कहता है कि आप न तो भूखे रहिये और न ही अधिक भोजन कीजिये। अत्यधिक भोजन अथवा न्यूनानितम भोजन की पूर्णतः विरोधाभासी स्थितियों से आप अपने आप को बचायें। कभी-कभी उपवास करने की स्थिति स्वाभाविक रूप से ही पैदा हो जाती है, आपको अपने अन्दर से स्वतः यह इच्छा होती है कि आज खाना न खाया जाय अर्थात् उपवास किया जाये। हृदय की ऐसी प्रेरणाओं का अनुपालन होना चाहिये। परन्तु कभी-कभी आपका अन्तःकरण आपसे कहता है कि आपको पौष्टिक आहार करना अभीष्ट है। इन प्रेरणाओं का अनुशीलन होना चाहिए।

उपवास को आध्यात्मिक विकास में सहायक के रूप में लेना चाहिए; आपको उपवास का दास नहीं बनाना चाहिये। कभी- कभी लोग इसलिये उपवास करते हैं क्योंकि उपवास उन पर लादा गया है; इसलिये उनके लिये उपवास अपरिहार्य हैं। ऐसे लोग उपवास के गुलाम बन जाते है। राम दासता का समर्थक नहीं है। जहां तक उपवास का सम्बन्ध है, भारत में कुछ लोग उपवास रखते हैं और कुछ ऐसे विशेष दिन भी निश्चित हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि उस दिन किस प्रकार

का और कितनी मात्रा में भोजन किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये पूर्णमासी और द्वितीया के दिनों का उल्लेख किया जा सकता है।

भारत में पूर्णमासी के दिन कुछ लोग ऐसा भोजन करते हैं जिससे उनका पेट भारी न हो। इस दिन ये लोग विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करते हैं क्योंकि पूर्णमासी का दिन मन को एकाग्र बनाने में सहायक होता है। यदि आप अनुभव से इस तथ्य की सत्यता का पता लगायें तो आप स्वयं इसके बारे में आश्वस्त हो जायेंगे। इन दिनों इस प्रकार का भोजन किया जाता है कि जिससे मन के संतुलन में व्यवधान न पड़े।

द्वितीया की रात्रि और द्वितीया का दिन ऐसे हैं जब मन को एकाग्र करने में नैसर्गिक रूप से सहायता मिलती है। यह इन दिनों का स्वाभाविक गुण है।

उपवास का वास्तविक अर्थ है कि आप अपने आपको सभी स्वार्थपरक भावनाओं, इच्छाओं, क्रियाओ से उन्मुक्त करें और उन्हें प्रश्रय न दें। सभी प्रकार की अभिलाषाओं, अभीप्साओं से अपने आपको विरत रखना ही उपवास का सच्चा मन्तव्य है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

स्वर्ग का साम्राज्य

भद्र पुरूषों तथा महिलाओं के रूप में
बिराजमान मेरी निज आत्मा !

आपके भीतर, आपके अन्तस्थल में स्वर्ग का साम्राज्य विद्यमान है। प्रश्न यह है कि आप इसका साक्षात्कार कैसे करें?

हम अपने भीतर प्रतिष्ठित स्वर्ग के साम्राज्य का किस प्रकार साक्षात्कार कर सकते हैं, इस विधा की व्याख्या करने के लिये एक अति सुन्दर उपाख्यान है। कहा जाता है कि एक समय एक दैत्य ने वेद के ग्रन्थों को अपने अधिकार में कर लिया और उन्हें लेकर वह समुद्र के तल में चला गया।

'वेद' शब्द के दो अर्थ है। इसका मूल अर्थ है- 'ज्ञान' अर्थात् स्वर्ग का साम्राज्य। इसका दूसरा मन्तव्य, हिन्दुओं की सर्वाधिक पवित्र धर्म- संहिता से है जो वेदों के नाम से विख्यात है।

'वेदों' को समुद्र-तल ले जाने वाले तथाकथित दैत्य का नाम 'शंखासुर' था। शब्द- व्युत्पत्ति के अनुसार 'शंखासुर' का अर्थ है- शंख का दानव अर्थात् शंख क भीतर रहने वाला कीड़ा।

(स्वामी राम द्वारा १६ दिसम्बर, १६०२ को 'हरमैटिक ब्रादरहुड हाल', सनफ्रांसिस्को, अमेरिका में दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

शंखासुर दैत्य से 'वेद' का उद्धार करने के लिये और 'ज्ञान' के भंडार को पुनः सुलभ कराने के उद्‌देश्य से भगवान ने मत्स्यावतार लिया और मछली के रूप में इस अवतार ने शंखासुर दानव से युद्ध किया और उसका संहार किया। तदुपरान्त मत्स्यावतार ने 'वेदों' की पुनर्प्रतिष्ठापना की।

बच्चे इस कथा को बड़े चाव से पढ़ते हैं और इसके शाब्दिक अर्थ में इस कथा को समझते हैं। परन्तु इस कथा में सन्नहित मन्तव्य का गूढ़ तथा गम्भीर अर्थ है। यह कथा तो उदाहरण देकर एक सामान्य सत्य को समझाने के लिये कही गयी है।

कथा में कहा गया है कि भगवान ने शंख में रहने वाले कीड़े (दैत्य) से 'वेद' को छुड़ाने के तथा वेद की पुनर्प्रतिष्ठापना के लिये मछली के रूप में अवतार लिया। मत्स्यावतार लेकर भगवान ने समुद्र के तल में शंख में पलने वाले कीड़े अर्थात शंखासुर दानव से युद्ध किया और उसका अन्त किया। ऐसा करने का क्या प्रयोजन था? मछली जल का प्राणी है और शंख में भी जल का एक अन्य प्राणी या कीड़ा रहता है। इस कथा के अनुसार भगवान ने, सर्वव्यापक परमेश्वर ने शंख में रहने वाले इस समुद्रीय कीड़े से मछली का रूप धारण कर युद्ध किया। इस कीड़े को शंख से निकाल बाहर कर दिया। फिर समुद्र की लहरों ने शंख को बहाकर, उसे शुद्ध कर तट पर पहुंचा दिया। लोगों ने शंख को उठा लिया। लोगों ने शंख को जोरदार ध्वनि से फूंककर उसे बजाया और उसमें से जो ध्वनि निकली वह थी 'ॐ', 'ॐ', 'ॐ', का अनादि

स्वर। इससे वातावरण गुंजायमान हो उठा। यही वस्तुतः 'वेद' है। इस अर्थ में शंख में समाहित 'वेद' की समुद्र तल से लाकर पुनःस्थापना की गयी। 'वेद' को साकार किया गया।

इस उपाख्यान के कथाकार का मन्तव्य 'ॐ' के पवित्र मंत्र की महत्ता पर विशेष बल देना तथा उसको उद्घोषित करना था। वास्तव में सिद्ध करने का यह लक्ष्य था कि समस्त संसार में यही 'ॐ' का अनादि स्वर ही ज्ञान की परिसमाप्ति है। यही 'ओंकार' है, जो वेद है, स्वर्ग का समस्त साम्राज्य है और इसी 'ओंकार' को न्यूनातिन्यून रूप में समेट कर शंख में समाहित किया गया है। इस उपाख्यान का वास्तविक यही उद्देश्य है।

हिन्दू लोग सभी शुभ तथा महत्वपूर्ण अवसरों पर शंख बजाते हैं और 'ॐ' की ध्वनि निकालते हैं। चाहे किसी के जन्म का अवसर हो, या मृत्यु का, अथवा युद्ध का या पूजा- अर्चना का, सभी मौकों पर 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है। वास्तव में वही व्यक्ति सुखी है जो 'ॐ' में निवास करता है, 'ॐ' में विचरण करता है और 'ॐ' में ही अपना समस्त अस्तित्व प्रतिष्ठित करता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कि अन्तस्थल के सभी कोषागारों को प्राप्त किया जाय या स्वर्ग के साम्राज्य के द्वार को खोला जाय, केवल एक ही कुंजी है और वह है, 'ॐ'। इसका उपयोग करना ही पड़ेगा। अन्य कोई विकल्प नहीं है।

यूरोप और अमरीका के निवासी किसी भी धारणा को उस समय तक स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, जब तक उसके बारे में वे बौद्धिक स्तर पर आश्वस्त न हो जांय। यद्यपि हम इस संसार की मान्य तर्क विधा से इस 'ॐ' मंत्र के सद्गुणों को सिद्ध करने में भले ही असमर्थ हों, फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यदि 'ॐ' मंत्र का सही ढंग से उच्चारण किया जाय तो इस मंत्र का मानव के चरित्र पर अद्भुत तथा शक्ति- सम्पन्न प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस मंत्र में अन्तस्थल के छिपे भेदों और रहस्यों को खोलने और संसार की सभी निधियों को हमारे सामने प्रस्तुत करने की अनुपम तथा अद्वितीय सामर्थ है। इस उपाख्यान के कथाकर का एक उद्देश्य यह भी प्रदर्शित करना था कि जब हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों- वेद के रचयिताओं ने सर्वप्रथम 'ॐ' मंत्र के उच्चारण से प्राप्त अव्यक्त परमानन्द की स्थिति में अपने आपको प्रतिष्ठित कर लिया, उसी के उपरान्त वेद के ग्रन्थों के सम्पूर्ण ज्ञान का साक्षात्कार कर वे उनकी रचना कर सकें। यह 'ॐ' मंत्र ही सभी ज्ञान का बीज है। इस 'ॐ' मंत्र की महत्ता को विभिन्न दृष्टिकोणों से आपके सामने प्रस्तुत किया जायगा। इस मंत्र की महत्ता सिद्ध करना इसलिये भी आवश्यक है जिससे लोग अपने सम्पूर्ण हृदय से इस मंत्र को अपनायें।

सबसे पहले ध्यातव्य यही बात है कि 'ॐ' मंत्र किसी भाषा विशेष का शब्द नहीं है। यदि आप लोग, अमरीकी या यूरोपवासी, यह सोचें कि यह शब्द संस्कृत भाषा का है और अन्य किसी भाषा का नहीं है तो उन्हें केवल इस धारणा के कारण इसका तिरस्कार नहीं करना

चाहिए। यह ईश्वर का नाम है। यह 'ॐ' ध्वनि आपके भीतर से स्वभावतः निकलती है। आपको कोई भी इस स्वर की शिक्षा नहीं देता है। यह ध्वनि आप अपना जन्म लेते ही स्वतः निकालते हैं। नवजात शिशु का रूदन अद्भूत रूप से 'ओम्', 'आओम', की ध्वनि से मिलता- जुलता है। भले ही शिशु का यह चीखना- चिल्लाना 'ॐ' ध्वनि का विकृत रूप हो, पर सत्य यही है कि प्रत्येक शिशु के भीतर से यही 'ॐ' ध्वनि निक़लती है।

'ॐ' को लिखने की सच्ची विधि है- ओ३म् जो अ-उ-म् है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार जब 'अ' और 'उ' अक्षरों की संधि की जाती है तो वह 'ओ' में परिवर्तित हो जाती है। 'ॐ' की विशेषता तो यहां तक है कि गूंगा भी अपनी वाणी में आ,ऊ,म्, की ध्वनियों का प्रयोग करता है। इस प्रकार अपनी पूर्णता में, अपने समस्त विभेदों में- सभी में व्याप्त 'ॐ' का प्रश्रय, प्रत्येक व्यक्ति अपने आप ही इस संसार में लेता है। 'ॐ' सर्वाधिक प्राकृतिक ध्वनि है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति अपने आप ही स्वाभाविक रूप से करता है। मार्गों पर जब बच्चे खुशी से उछलते हैं तब उनके हर्ष के पारावार की अभिव्यक्ति आ, ओ, की लम्बी तथा शोरगुल वाली आवाज में ही प्रतिध्वनित होती है। यह तो सीधी साधी 'ॐ' की ही ध्वनि है जिसे बच्चे हर्ष से जोरों से चिल्ला-चिल्ला कर व्यक्त रहे हैं।

'ओम्' का स्वर प्रत्येक भाषा में है, चाहे वह संस्कृत हो, या फारसी, अंग्रेजी, जापानी या अन्य कोई भाषा। सभी भाषाओं में यह

स्वर न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है। जब लोग खुशी से अपने आपे से बाहर होते हैं, जब उनका उल्लास अतिरेक की सीमा पार कर जाता है, जब वे प्रसन्नता से झूम उठते हैं तो यही 'ओ' ध्वनि है ज़ो स्वाभाविक रूप से उनके मुख से निकलती है। जब लोग बीमार होते हैं या कष्ट में होते हैं या जब वे असह्य पीड़ा सहने में असमर्थ होते हैं तो वह कौन सी ध्वनि है जो अपने आप उनके ओठों से निकलती है? वह है- 'ओह, ऊंह, ऊंम'। इस प्रकार की ध्वनियां 'ॐ' का विकृत रूप मात्र हैं। अरबी और अंग्रेजी भाषाओं की प्रार्थनायें 'आमीन' से समाप्त होती हैं। यह 'आमीन', शब्द वस्तुतः अप्रत्यक्ष रूप में अत्यन्त विचित्र ढंग से 'ॐ' से ही मेल खाता है। ग्रीक भाषा की वर्णमाला का आखिरी शब्द 'ओमेगा' है जिसमें 'ॐ' की ध्वनि प्रधानता से व्यक्त होती है।

यह ध्वनि हर व्यक्ति क्यों निकालता है? प्रत्येक बीमार व्यक्ति अपने ओठों से इसी ध्वनि को निकालकर उसका सहारा क्यों लेता है? बीमार भला कोई क्यों न हो, चाहे वह यूरोपीय हो, या अमरीकन, हिन्दू या ईरानी अथवा जापानी हो या किसी अन्य देश का निवासी हो, सभी यही ध्वनि निकालते हैं। ऐसा क्योंकर है- इसका उत्तर हिन्दू देते हैं। वे कहते हैं कि यह ध्वनि उस सुन्दर वृक्ष के समान है जो बीमार व्यक्ति को छाया प्रदान करता है, जो प्रज्जवलित सूर्य के ताप से झुलस रहे व्यक्ति को शीतलता की अनुभूति कराता है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि बीमार व्यक्ति इस फैले हुये वृहताकार वृक्ष की शीतल छाया पाने के लिये लालायित रहे। यही कारण है कि जब कोई आदमी बीमार पड़ता है या कष्ट से पीड़ित होता है तो वह स्वभावतः इसी 'ॐ'ध्वनि का

प्रश्रय लेता है, क्योंकि यही ध्वनि सहज एवं स्वाभाविक है। इसके उच्चारण से उसे थोड़ी राहत मिलती है। हम यह भी देखते हैं कि सभी परिस्थितियों में यही ध्वनि सभी को अपने आप आराम पहुंचाती है। यहां तक कि इस ध्वनि के उच्चारण से बीमार राहत महसूस करता है। जब यह ध्वनि, यहां तक कि बीमार तथा पीड़ित व्यक्तियों को आराम पहुंचा सकती है तो क्या यह संभव नहीं है कि यदि आप इस ध्वनि का सही ढंग से गायन करें तो आपकों सुख- शन्ति की अनुभूति न हो? अवश्य होगी। इसीलिये हम 'ॐ' को 'प्रणव' की संज्ञा देते हैं। 'प्रणव' का तात्पर्य है वह अधिष्ठान, जो सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त है और जो प्राण या स्वांस द्वारा निकलता है, यही ध्वनि उसकी सांस से अविछिन्न रूप से जुड़ी है। यदि आप स्वयं अपनी सांस इतनी जोर- जोर से लें कि उसकी ध्वनि सुनाई पड़े तो आप देखेंगे कि वह ध्वनि 'सोहम्'- 'सोहम्' ही होगी। 'सोहम्' ध्वनि नासिका के माध्यम से हृदय के अन्तस्थल को छूती हुई निकलती है। सभी की स्वासों में यही 'सोहम्' ध्वनि समाहित है। यही प्राकृतिक ध्वनि 'स-ओ-ह-अ-म् ही है।

संस्कृत भाषा की व्याकरण विश्व की अन्य भाषाओं की व्याकरण से अधिक विकसित है। संस्कृत व्याकरण में सभी ध्वनियों तथा सभी शब्दों का पूरी तरह विश्लेषण किया गया है। 'म्', एक व्यंजन है, परन्तु यह व्यंजन अनुनासिक है। इसके बारे में सिद्ध किया गया है कि 'म्', एक ऐसा व्यंजन है जो स्वर के निकटस्थ है। सभी व्याकरणों के अनुसार 'ओ' और 'अ' तो स्वर हैं। 'स' और 'ह' व्यंजन हैं। यदि 'सोहम्' में से हम 'स' और 'ह' के व्यंजनों को विलग कर दें तो अवशेष बचेगा 'ओ', 'अ', 'म्', अर्थात् ओऽम्'।

आपको यह तो ज्ञात ही है कि स्वर स्वतंत्र ध्वनि है और व्यंजन पराश्रित ध्वनि है। व्यंजन की ध्वनि का उच्चारण स्वतंत्र रूप से अपने आप, नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिये 'क' व्यंजन को लीजिये। इस व्यंजन में आपको 'अ', 'इ', या 'ऊ', जैसा कोई स्वर अवश्य जोड़ना पड़ेगा, तभी 'क' व्यंजन की ध्वनि सकारात्मक होगी और उसका उच्चारण किया जा सकेगा।

व्यंजन इस विश्व में नाम-रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। संसार के सभी नाम- रूप, व्यंजनों की भांति पराश्रित हैं। यदि इन नाम- रूपों के पीछे सर्वोच्च वास्तविकता न हो तो क्या कोई भी नाम-रूप स्वतंत्र रूप से, अपने- आप टिक सकता है? सारे दृश्य नाम-रूप से बने हैं, यदि इनके पीछे निहित एवं आधारभूत सत्य, अधिष्ठान, ईश्वर या अज्ञात सर्वशक्ति अथवा वह मौलिक तत्व, जिसे आप जो भी नाम देना चाहें, नहीं है तो किसी भी नाम- रूप का उद्घोष नहीं किया जा सकता है। यही प्रमाणित है कि निहित, आधारभूत वास्तविकता वस्तुतः परिपूर्ण सत्य परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण आनन्द है अर्थात् सच्चिदानन्द है जो क्रमशः 'अ', 'उ, तथा 'म्' की सम्वेत ध्वनि से उद्घोषित होता है। इस दृष्टिकोण से 'सोहम्' में जो व्यंजन 'स' और 'ह' हैं वे भासमान जगत के नाम-रूप और प्रतीक के परिचायक हैं जबकि 'सोहम्' में व्यंजनों को छोड़कर जो 'अ','उ', 'म्', स्वर अवशेष हैं और जिनकी संधि से 'ओ३म्'; 'ॐ' निकलता है, वही आधारभूत वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करता है।

हम चीनी से बनाये गये खिलौनों को देखें, चाहे वे कितने भी

विविध आकार के क्यों न हो, हो सकता है, इनमें से कुछ खिलौने कुत्तों के आकार के हों, या कुछ बैलों के रूप के अथवा कुछ शेर की शक्ल के या कुछ मनुष्य के रूप के हों, पर सत्य यही है इन विभिन्न आकारों के खिलौनों में जो भासमान अन्तर दिखाई देता है, वह केवल नाम, रूप और आकार तक ही सीमित है। वस्तुस्थित तो यही है कि ये सभी खिलौने एक ही तत्व के बने हैं, एक ही चीनी से निर्मित हुए हैं।

इसी प्रकार महासागर का उदाहरण लें। वहां आप देखेंगे कि समुद्र की सतह पर एक तरंग यहां उठी है तो दूसरी तरंग वहां, एक लहर यहां आयी है, तो दूसरी लहर वहां। इन तरंगों तथा लहरों के आकारों और गति में, उनके डील- डौल में विभिन्ता होती है, परन्तु इन सब के पीछे 'वास्तविकता' को ध्यान पूर्वक देखना होगा। वास्तविकता तो यही है कि ये सब तरंगें और लहरें एक ही महासागर की हैं, सभी एक हैं, सब जल ही जल है, विभिन्नता तो केवल नाम-रूप में ही है।

इसी प्रकार एक हीरे का उदाहरण लीजिये। यह हीरा कितना चमकीला है, कितना जगमगाता, कितना चकाचौंध करने वाला, कितना कठोर, कितना जाज्वल्यमान है। उससे लोहा भी आसानी से काटा जा सकता है। इसके विपरीत कोयले का उदाहरण लें। यह कोयला अत्यधिक कोमल है, यहां तक कि यदि कागज के कोरे टुकड़े पर उसे रख दें तो उस पर उसका निशान बन जायेगा। यह चिह्न कितना गन्दा, कितना भद्दा, कितना बेकार है। परन्तु रसायनिक वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि इन दोनों-हीरा और कोयला की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं

है। ये दोनों वस्तुतः 'कार्बन' हैं, इन दोनों के आधार भूत तत्व में कोई भी भेद नहीं है। तब यह प्रत्यक्ष अन्तर किस बात से है? यह अन्तर तो केवल नाम-रूप के हैं। कोयले के 'कार्बन' के परमाणुओं के आकार तथा उनकी परिस्थितियां हीरे के 'कार्बन' के आकार तथा उसकी परिस्थितियों से भिन्न हैं। केवल यही अन्तर है और यह अन्तर केवल रूप का है।

इस परिपेक्ष्य में हिन्दू दर्शन बतलाता है कि इस विश्व के विलग- विलग दृश्यमान विभाजन, केवल नाम- रूप के कारण हैं। यदि आप इस चिन्तन की तह तक जांय, यदि आप सभी नाम- रूप के अधिष्ठान, वास्तविकता का विश्लेषण करें तब आप स्वयं देखेंगे कि इन सब के पीछे एक ही अपरिवर्तनीय, अनादि, अव्यय, अचल तत्व है। यह वास्तविकता, यह अधिष्ठान स्वयं ही अपना आधार है, स्वयं सिद्ध है। इस वास्तविकता की तुलना स्वर की ध्वनि से की जा सकती है और नाम- रूप की समतुल्यता व्यंजन की ध्वनि से हो सकती है। 'सोहम्' में 'स' और 'ह' अक्षर नाम- रूप का द्योतन करते हैं। यदि पराश्रित तत्वों को छोड़ दिया जाय तो शेष वास्तविकता ही रहेगी और यदि 'सोहम्' में पराश्रित अक्षर 'स' और 'ह' को निकाल दें तो केवल 'अ','उ','म्', रहेंगे जिनकी संधि से 'ओ३म्' या 'ॐ' ही प्रकट होगा। इस प्रकार 'ॐ' ही वह सत्य है जो आपकी स्वांस को अभिभूत किये है। यही वास्तविकता, यही 'ॐ' संसार की सभी स्वासों में विद्यमान है। यही 'ॐ' उस शक्ति का नैसर्गिक नाम है जो सभी भेदों, सभी विभिन्नताओं, सभी पृथकताओं के पीछे निहित है। 'ॐ' वास्तविकता का सर्वाधिक प्राकृतिक नाम है।

प्रोफेसर मैक्समूलर तथा उनसे सम्बद्ध अन्य दार्शनिकों ने सिद्ध किया है कि भाषा से सभी विचारों का उसी प्रकार का सम्बन्ध होता है जिस प्रकार एक ही सिक्के के दो पहलुओं का, सिक्के के चित और पट्ट स्वरूपों से होता है। एक स्वरूप का दूसरे स्वरूप के बिना अस्तित्व ही नहीं हो सकता है अर्थात् जब तक सिक्का ही न हो तब तक उसके दो पहलू कैसे हो सकते है? क्या आप मेज का विचार कर सकते है? क्या मेज को देख सकते है? क्या आप किसी निश्चित वस्तु के बारे में सोचे बिना उसका अवलोकन कर सकते हैं? 'अवलोकन' शब्द में मानसिक विचार पहले से ही निहित है।

आप पुनः देखेंगे कि विचार एवं भाषा एक ही हैं, आप बिना भाषा के सोच नहीं सकते हैं। शिशु कोई भाषा नहीं जानता है और इसलिये उसके कोई विचार नहीं होते हैं। शिशु को विचार करने दें, पर वह ऐसा नहीं कर सकता है। जब तक उसके पास भाषा नहीं होगी, वह विचार नहीं कर सकता है। मां, शिशु का नाम तथा अन्य विभिन्न नाम उसके कानों में धीरे- धीरे फूंकती है और कान में फूंके गये अनेकानेक नामों के मन्तव्य को शिशु के हृदय में प्रवेश कराती है। शब्द के मन्तव्य या अर्थ से शब्द का उसी प्रकार का सम्बन्ध होता है जिस प्रकार का सम्बन्ध घोड़े के सवार का घोड़े से। शब्दों के घोड़े के ऊपर बैठकर उनके अर्थों का सवार, शिशु के हृदय में प्रवेश करता है।

हम भाषा के बिना नहीं सोच सकते हैं। विचार और भाषा एक हैं। हम इसे पहले ही देख चुके हैं कि संसार और विचार भी एक

ही हैं। इसलिये भाषा और विचार, दोनों का एक-दूसरे से तादात्म्य होता है। इसी प्रकार विचार एवं संसार, दोनों का भी तादात्म्य है, दोनों में एकरूपता है। जब ऐसा है तो शब्द और संसार एक दूसरे से अटूट रिश्ते में जुड़े हैं। बिना विचार के इस संसार में किसी भी पदार्थ की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। किसी पदार्थ को देखने की कोशिश कीजिये, पर उसके विचार को मन में प्रवेश नहीं होने दीजिये, क्या ऐसा कभी संभव है? कदापि नहीं। वास्तव में श्याम पट 'ब्लैक बोर्ड' को देखने का तात्पर्य श्याम- पट के बारे में अपने विचार से उसका ताल-मेल बैठाना है।

इस संसार के सभी पदार्थ वास्तव में तदनुकूल विचारों के दूसरे पहलू हैं, उनके प्रतिरूप हैं। इस विश्व में बिना विचार के किसी भी वस्तु की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। संसार का भाषा से उसी प्रकार का सम्बन्ध है जिस प्रकार सिक्के के एक पहलू का दूसरे पहलू से होता है। इस दृष्टि से आप बाइबिल के उन शब्दों की वास्तविक सच्चाई अथवा उनके सच्चे महत्व को समझ सकते हैं, जो इस प्रकार हैः- ''सृष्टि के आदि में 'नाद' शब्द था, यह नाम शब्द ईश्वर के साथ था और यह नाम शब्द ही ईश्वर था''।

हम तो ऐसा एकमात्र शब्द चाहते है जो सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व कर सके। हमें एक ऐसे शब्द की उत्कट अभिलाषा है जो सर्वशक्तिमान, सर्वऊर्जा, सर्वबल, एकमात्र नियामक तत्व हो अथवा उस निहित अधिष्ठान को परिचायक हो जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार हो।

सभी भाषाओं में हमें विभिन्न ध्वनियां मिलती है। इनमें से कुछ ध्वनियां ऐसी होती हैं जो कंठ से निकलती है, कुछ ओंठों से और कुछ तालू के पास मुख के पृष्ठ भाग से। किसी भी भाषा में ऐसा कोई एकमात्र शब्द नहीं है जो कंठ के नीचे वाले सम्बन्धित सभी अवयवों के क्षेत्र से निकलता हो। कुछ ध्वनियों की सीमा कंठ है, कुछ ध्वनियां वाणी सम्बन्धी अवयवों के निर्दिष्ट क्षेत्र की सीमा से आवद्ध हैं। और कुछ ऐसी ध्वनियां भी है जिनकी सीमा ओंठ ही हैं। कोई भी ध्वनि ओंठों के बाहर नहीं निकलती है।

परन्तु 'ॐ' की ध्वनि अद्वितीय है। इसमें 'अ','उ' और 'म्' की संधि है। 'अ' कंठजनित ध्वनि है। यह ध्वनि वाणी सम्बन्धी अवयवों की निर्दिष्ट सीमा से निकलती है। 'उ' ध्वनि तालु के निकट वाणी सम्बन्धी अवयवों के क्षेत्रों के मध्य से निकलती है। 'म्', वास्तव में वाणी सम्बन्धी अवयवों या क्षेत्र का अन्तिम क्षितिज है अथवा अन्ततः ओष्ठ एवं नासिका की सम्वेत ध्वनि है।

इस प्रकार 'अ', ध्वनि- क्षेत्र के आदि का प्रतिनिधित्व करता है, 'उ', मध्य का और 'म्', अन्त का । अतएव 'ॐ' में सम्पूर्ण क्षेत्र समाहित है। 'ॐ', 'ॐ', सर्वाधिक नैसर्गिक नाम है। यह सभी भाषाओं का प्रतिनिधित्व करता है, फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व का परिचायक है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है। वह यह है कि अनेक अन्य ध्वनियां हैं जो 'अ' की भांति कंठ- जनित हैं, कंठ से निकलती हैं।

इसी प्रकार 'उ' और 'म्' की भी सजातीय अनेक ध्वनियां हैं। तो फिर 'अ' के अतिरिक्त कंठ- जनित किसी अन्य ध्वनि को स्वैच्छाचारी ढंग से क्यों न चुन लिया जाय और फिर उसकी संधि 'उ' के समवर्ती किसी अन्य ध्वनि से क्यों न कर दी जाय जिससे सम्पूर्ण भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले 'ॐ' के सदृश्य एक अन्य समकक्ष शब्द की संरचना हो सके?

इस परिपेक्ष्य में हम देखते हैं कि अन्य सभी ध्वनियों में, जो 'उ' की ध्वनि- क्षेत्र से निकलती है, एकमात्र 'उ' ही वह ध्वनि है जिसे उन सभी ध्वनियों का मुखिया, स्वामी, सम्राट की संज्ञा दी जा सकती है। यह एक वह स्वर है, वह ध्वनि है जिसे प्रत्येक शिशु अपने मुख से निकालता है। यहां तक कि गूंगा भी इसी 'उ' ध्वनि का अपने प्रकार से उच्चारण करता है। इस ध्वनि को कोई पढ़ाता नहीं हैं, यह ध्वनि तो अपने आप निकलती है। फलस्वरूप यह ध्वनि अपने प्रकार की सभी ध्वनियों का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार 'म्' ध्वनि, ओष्ठजनित सभी ध्वनियों की सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि है। इसके बारे में एक अन्य विशेषता है, वह यह है कि यह ध्वनि नासिक- जनित भी है और नासिका के सभी क्षेत्रों में व्याप्त है। वास्तव में नासिका स्वांस की संचालिका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि कोई पूर्ण नाम हो सकता है वह है 'ओ३म्'। यह सभी भाषाओं का प्रतिनिधि है। यह सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधि है।

समस्त वेदान्त, यहां तक कि हिन्दुओं का सम्पूर्ण दर्शन सभी इसी अनादि शब्द 'ॐ' की अभिव्यंजना मात्र है। 'ॐ' ब्रह्माण्ड में व्याप्त

है। सम्पूर्ण संसार में ऐसा कोई विधान, ऐसी कोई शक्ति नहीं है और न ही पूरे संसार में ऐसा कोई पदार्थ है जो 'ॐ' के अनादि स्वर से न बना हो। एक-एक विश्लेषण कर आप देखेंगे कि प्राणियों के सभी धरातल, सभी प्रकार के संसार, अस्तित्व की समस्त विधायें आदि, इस अनादि स्वर 'अ', 'उ', 'म्', अर्थात् 'ओ३म' में समाहित हैं।

ध्वनियां दो प्रकार की होती हैं। इन्हें हम वर्णनात्मक और ध्वन्यात्मक कहते हैं। ये संस्कृत शब्द हैं और इनकी पूरी सार्थकता है। वर्णनात्मक का शाब्दिक अर्थ है- "वे ध्वनियां, जिनको लिपिबद्ध किया जा सके" और ध्वन्यात्मक का तात्पर्य है- "वे ध्वनियां, जिनको लिपिबद्ध नहीं किया जा सके"। सभी सामान्य भाषायें वर्णनात्मक हैं। भावना की भाषा ध्वन्यात्मक है, उसकी अभिव्यक्ति लिखित शब्दों या अन्य चिह्नों से नहीं की जा सकती है।

एक व्यक्ति हंसता है। क्या आप उस हंसी को लिखित शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति कर सकते हैं? क्या आप कागज पर लिखकर उस हंसी का प्रतिनिधित्व करा सकते हैं? एक व्यक्ति रोता है, इस रोदन को आप कागज पर लिपिबद्ध नहीं कर सकते हैं। ये ध्वन्यात्मक हैं। हम देखते हैं कि अभिव्यक्ति ध्वनियों में या प्राकृतिक भाषा में ध्वन्यात्मक सोद्देश्य है, उसकी सार्थकता है जिसकी पूर्ति वर्णनात्मक ध्वनियों द्वारा नहीं हो सकती है। अनुमान कीजिये कि आप में से कोई भी व्यक्ति विदेश जाता है, अथवा कोई विदेशी आपके देश में आता है, वह न तो आपकी भाषा समझ सकता है और न ही बोल सकता है। उसे

किसी वस्तु की आवश्यकता है, शायद वह कोई वस्तु खरीदना चाहता है। आप उसको और उसकी भाषा को समझ ही नहीं सकते हैं। कदाचित वह व्यक्ति भूखा हो, उसे खाने के लिये भोजन की आवश्यकता हो। उसकी भाषा न समझने के कारण आप उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में अक्षम हैं। कोई व्यक्ति चिल्लाना शुरू करे, रोने लगे। तब आप समझते हैं, तभी आप देखते हैं। भावना की यही भाषा सर्वत्र सभी स्थानों में समझी जाती है। परन्तु वर्णनात्मक या कृत्रिम भाषा को तो केवल वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्होंने उस भाषा को सीखा हो। कृत्रिम भाषा को हर जगह नहीं समझा जा सकता है।

आप हंसना प्रारम्भ कर दें। सभी समझ जायेंगे कि आपके साथ कोई घटना घटित हुई है अथवा कोई हर्षवर्धक बात आप अपने में छिपाये हैं। एक व्यक्ति है जो वाद्य- यंत्र, जैसे वायलिन बजाता है। आप उसके स्वर-ताल भले ही न जानते हों; पर संगीत की यह भाषा ध्वन्यात्मक है और हर एक व्यक्ति इसे समझ सकता है और इससे आनन्द उठा सकता है। अंग्रेजी भाषा के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि, नाटककार, शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मरचेन्ट आफ वेनिस' में एक स्थान पर लिखा है, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हैः-

कल्पना की थी कवि ने इसीलिये
कैसा गाया होगा ओरफियूस ने अपना संगीत।
उस समय क्या ऐसा भी था कोई
इतना निष्ठुर, कठोर, क्रोधी, निर्दय,
जो न हुआ हो द्रवित और आकर्षित

और न बदल गया हो उसका अपना स्वभाव,
जब तक चलता रहा हो उसका गान।

ध्वन्यात्मक का ऐसा ही प्रभाव होता है। संगीत की भाषा उस प्रकार की भाषा नहीं होती है, जिस प्रकार की विचारों की भाषा होती है। इसका एक विशेष प्रयोजन होता है, इसका अपना अनोखा आकर्षण होता है। विज्ञान इसे सिद्ध करने में सफल हो अथवा असफल कि किस प्रकार और क्योंकर संगीत का आप पर अत्यन्त मोहक प्रभाव पड़ता है, परन्तु तथ्य यही है कि संगीत आपको मोह लेता है। यदि विज्ञान इस तथ्य को सिद्ध नहीं कर पाता है तो इसके लिये विज्ञान अपने को इस असमर्थता के लिये दोषी ठहराये। इसी प्रकार 'ॐ' का अपना अनुपम, अद्वितीय आकर्षण तथा अपनी विलग मोहनी है। 'ॐ' में स्वयं ही ऐसी प्रभुता, प्रतिभा और ऐसे सद्‌गुण हैं कि जो भी 'ॐ' का गायन करे, उसका मन प्रत्यक्षतः नियंत्रित हो जाता है, उसकी सभी भावनायें और सभी विचार समन्चित ताल-मेल में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उसके अन्तःकरण में शान्ति और निश्चलता विराजमान हो जाती है और उसकी मनोदशा की ऐसी परिणति हो जाती है, जिससे उसका तादात्म्य, उसकी एकता ईश्वर से एकाकार हो जाती है। विज्ञान इसकी व्याख्या करने में समर्थ न हो, परन्तु तथ्य तो यही है और इस तथ्य की सत्यता को प्रयोग द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। यदि विज्ञान 'ॐ' के अनादि स्वर की प्रभुता एवं प्रभाव के सत्य के विरूद्ध आचरण करता है तो ऐसे विज्ञान को संतप्त होने दें, ऐसे विज्ञान को विलाप करने दें। 'सत्यमेव जयते'!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

'ॐ' का पवित्र मंत्र

सम्मानित महानुभावों तथा भद्रमहिलाओं के रूप में विराजमान मेरे ही आत्मन् !

पिछले दिन पवित्र मंत्र 'ॐ' के कतिपय पक्षों की संक्षिप्त व्याख्या की गयी थी और यह भी स्पष्ट किया गया था कि 'ॐ' मंत्र की पूर्ण विवेचना सात या आठ व्याख्यानों में समाप्त नहीं की जा सकती है। इस मंत्र के विषय में संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। और आज भी इस 'प्रणव' के बारे में रचनायें लिखी जा रही है। वास्तव में सभी वेद, सभी वेदान्त और हिन्दुओं के अन्य पवित्र धर्मिक ग्रन्थ 'ॐ' के इसी मंत्र में समाहित हैं।

भारत में विभिन्न सम्प्रदाय हैं, लेकिन सभी सम्प्रदाय 'ॐ' के प्रति भावभीनी तथा हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। यहूदी हो या मुसलमान अथवा ईसाई-सभी अपनी-अपनी प्रार्थनाओं को 'ओमन्' शब्द से समाप्त करते हैं। मुसलमान भी ऐसा करते हैं, परन्तु वे 'आमीन' शब्द का उच्चारण इस प्रकार करते हैं जिससे 'ई' पर जोर पड़ता है।

आप लोग 'अमेरिका तथा यूरोपवासी' अपनी साधारण प्रार्थना में 'ओमन'शब्द का प्रयोग करते हैं। 'ओमन' शब्द का आपकी प्रार्थना में क्या योगदान है? जहां सभी वाणी रूक जाती है, जहां सभी वार्ता

(स्वामी राम द्वारा २२ दिसम्बर, १६०२ को 'हरमैटिकं ब्रादरहुड हाल',सनफ्रांसिसको, अमेरिका में दिए गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

का अन्त होता है, जहां दिव्यता में आत्मा का विलय हो जाता है, उस स्थान पर, उस बिन्दु पर, 'ओमन' का आविर्भाव होता है। इसलिये आप उस समय तक हृदय की भाषा प्रवाहित करते रहें जब तक आप उस बिन्दु तक न पहुंच जांय, जहां आपका सम्पूर्ण अस्तित्व दिव्यता में विलीन न होने लगे। जब अकथनीय ,अनिर्वचनीय, अव्यक्त स्थिति आती है तभी 'आमीन' का प्रादुर्भाव होता है। यह 'आमीन' क्या है? यह 'ॐ' है, 'ॐ' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आपकी सभी पवित्र प्रार्थनाओं में 'ओमन' या 'आमीन' शब्द का वही स्थान है जो 'वेदान्त' शब्द का है अर्थात् 'वाणी की परिसमाप्ति।' इस अर्थ में आमीन का वेदान्त से सटीक मेल है। यह 'आमीन' शब्द वेदान्त के सार-तत्व के अत्यन्त निकट है। वेदान्त 'ॐ' है।

वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है- ज्ञान का अन्त, वाणी का अन्त। यह उस स्थल का द्योतन करता है जहां सभी वाणी,सभी विचार विराम पाते हैं। हिन्दुओं के मत में 'ॐ' द्वारा ही सम्पूर्ण वेदान्त का प्रतिनिधित्व होता है। जिस परिपेक्ष्य में, जिस अर्थ में वेदों में 'ॐ' का प्रयोग हुआ है, उसकी महत्ता अब आपको बतलायी जायगी। 'ॐ'-है 'अ', 'उ' और 'म्' की सन्धि।

तांत्रिक लोग अपने ढंग से 'ॐ' की व्याख्या करते हैं, शैव अपने अलग ढंग से , वैष्णव अपनी विचारधारा के अनुसार 'ॐ' की विवेचना करते हैं। अन्य हिन्दू सम्प्रदाय 'ॐ' की महत्ता पर अपने-अपने निराले ढंग से प्रकाश डालते हैं। परन्तु इस समय 'ॐ' की जो व्याख्या आपके

सम्मुख प्रस्तुत की जा रही है, वह सार्वभौमिक है। यह व्याख्या वेदान्त के अनादि स्रोत के मुख-केन्द्र से निर्गत होती है।

'ॐ' या ओ३म्, तीन अक्षरों 'अ' , 'उ', 'म्', की सन्धि है। वेदान्त शास्त्र के मतानुसार 'अ' की ध्वनि तथाकथित भौतिक संसार, दृश्यमान ठोस संसार, सकल इन्द्रियों के संसार और उस सब का प्रतिनिधित्व करता है, जो जागृत-अवस्था में दिखायी देता है। स्वप्न लोक के सभी अनुभव 'उ' की ध्वनि से परिलक्षित होते हैं। यहां स्वप्नावस्था में देखने वाला और दिखायी देने वाली सभी वस्तुयें, दोनों ही दृष्टा तथा दृश्य सभी 'उ' ध्वनि से व्यक्त किये जाते हैं। मानस या परा-लौकिक संसार, आत्माओं के विश्व तथा सभी प्रकार के नर्क और स्वर्ग 'उ' ध्वनि से स्पष्ट परिलक्षित किये जाते हैं। 'म्' ध्वनि दर्शाती है- सुषुप्ति अर्थात् गहननिद्रा की वह अवस्था जिसमें सम्मलित है- सभी अज्ञात जगत, यहां तक कि जागृत अवस्था की वह सम्पूर्ण स्थिति जो अज्ञात है, जो बुद्धि की समझ से परे है।

इस प्रकार 'ॐ' अर्थात् 'अ', 'उ', 'म्' ध्वनि मानव के तीन प्रकार के सभी अनुभवों को समाहित किये है। इससें सभी दृष्टगत संसारों का द्योतन होता है।

'अ', 'उ', 'म्' में एक सामान्य सिद्धान्त यह भी निहित है जिसे 'अमात्रा' की संज्ञा दी जाती है। इस अमात्रा से तात्पर्य है-अविनाशी, निर्विकार तथा वास्तविक अधिष्ठान, जो तीनों प्रकार के

दृश्यों-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में व्याप्त है और सभी में प्रवाहित है। इस अमात्रा की पूर्ण व्याख्या किसी अन्य व्याख्यान में की जायगी। इस समय इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'ॐ' सर्व, सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व करता है।

यूरोप तथा अमरीका के सभी दर्शन, जागृत अवस्था के अनुभवों पर आधारित हैं और स्वप्नलोक तथा सुषुप्ति अवस्था के अनुभवों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते हैं। हिन्दू कहते हैं- 'आप अपूर्ण आंकड़े लेकर विचार प्रारम्भ करते हैं। तब फिर ब्रह्माण्ड की समस्या के बारे में आपका हल या उत्तर कैसे सही होगा?''

ये दार्शनिक अपने आपको जागृत अवस्था तक ही सीमित करते हैं। मिल, हैमिल्टन, वर्कले, यहां तक कि स्पेंसर तथा अन्य दार्शनिक केवल जाग्रत अवस्था के अनुभवों के आधार पर अपने-अपने आविष्कार तथा खोज करते हैं। इन अनुभवों से ये दार्शनिक सभी शक्ति, सभी ऊर्जा या उस शाश्वत आधार के, जिसे आप कोई नाम दे सकते हैं, आदि स्रोत के शीर्षस्थ स्थल की खोज करना चाहते हैं। यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि यदि आपको कोई गणितीय समस्या दी गयी है और उसको हल करने के लिये कहा गया है तब आपको सभी तर्कों तथा तथ्यों, प्रतिज्ञाओं और परिकल्पनाओं पर विचार करना होगा। जब सम्पूर्ण आँकड़े न लेकर केवल उनके एक ही भाग पर आप विचार करेंगे तो आप किस प्रकार समस्या का सही समाधान निकाल सकेंगे?

वेदान्त आपसे समस्त आंकड़ों को लेकर विचार करने के लिये आग्रह करता है। आपके आंकड़े तीन प्रकार के हैं, आपके सांसारिक अनुभव तीन प्रकार के हैं और इन सभी पर विचार किया जाना चाहिये। जागृत अवस्था के संसार में अन्य दो अवस्थाओं यथा स्वप्न सुषुप्ति के संसार पूर्णतः विलुप्त हो जाते है;। फिर भी आप अर्थात् 'आत्मा', स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं। आप इनमें मृत नहीं हैं। सुषुप्ति अर्थात् गहन निद्रा अवस्था में आपकी बुद्धि और व्यक्तिगत चेतना समाप्त हो जाती है, फिर भी वास्तविक 'आत्मा' अर्थात् आपकी वास्तविक 'अस्ति' वहां भी एक रस में व्याप्त है। यह अपरिवर्तनीय, शाश्वत तथा निर्विकार सिद्धान्त है। यह वास्तविकता स्थायी रूप से आपकी सच्ची आत्मा या आपकी वास्तविक अस्ति के रूप में तीनों अवस्थाओं में समान रूप से प्रवाहित होती है। यही 'ॐ' है, आपको अपने मस्तिष्क, मन या बुद्धि को अपने आत्मदेव के रूप में मान्यता देने का कोई अधिकार नहीं है। आप कैसे जानते हैं कि इस संसार का अस्तित्व है, आप किस प्रकार जानते हैं कि यह ब्रह्माण्ड है? क्योंकि आप पदार्थों का स्पर्श करते हैं, वस्तुओं को देखते हैं, बातों को सुनते हैं, आप स्वाद लेते हैं और चीजों को सूघते हैं, केवल यही तो प्रमाण है। यदि आप कहते हैं कि चूंकि विक्टर ह्यूगो ,रार्बट इंगरसोल, इमरसन तथा अन्य विचारकों ने इस संसार में इतना अधिक लिखा है, इसलिए संसार का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। परन्तु राम आपसे पूछता है कि आप कैसे जानते हैं कि धार्मिक पुस्तकें भी हैं? यह सब आप अपनी इन्द्रियों के माध्यम से जानते हैं। आपकी इन्द्रियाँ ही इस संसार के अस्तित्व के बारे में एकमात्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

संवेदनशीलता सभी बोधों तथा बुद्धिजनित ज्ञानों आदि का मौलिक कारण है। यह संवेदनशीलता केवल आपकी जाग्रत अवस्था तक सीमिंत नहीं है। आपकी जाग्रत अवस्था में आपकी इन्द्रियाँ स्थूल रूप में हैं। परन्तु क्या आप अपने स्वप्नों में नहीं देखते हैं, क्या आप स्वप्नों में इन्द्रियों का प्रयोग नहीं करते हैं? क्या आपके इन्द्रिय-अवयव स्वप्नलोक की विशेषताओं के अनुरूप नहीं बन जाते हैं? स्वप्न में आपके वाह्य नेत्र और वाह्य कर्ण काम नहीं करते हैं। स्वप्न लोक में आप इन्द्रिय-जनित पदार्थों की रचना करते हैं और साथ ही इनसे अनुभव प्राप्त करने के लिये इन्द्रियों के विशेष अवयवों या तदनुकूल इन्द्रियों का भी निर्माण करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वप्न लोक में इन्द्रियां और इन्द्रियों द्वारा अनुभव किये जाने वाले पदार्थ एक ही शक्ति के घनात्मक तथा ऋणात्मक ध्रुव है, या एक प्रकार से ये दोनों एक ही सिक्के के दो उलट-पुलट पहलू हैं। स्वप्न में दृष्टा तथा दृश्य, दोनों एक साथ प्रकट होते हैं। स्वप्न के दृष्टा तथा दृश्य का उद्भव 'ओ३म्' अर्थात् अ,उ,म्, की ध्वनि से होता है। स्वप्न लोक की आधार भूत वास्तविकता, जिसमें दृष्टा एवं दृश्य दोनों ही प्रकट होते हैं, वस्तुतः सच्ची आत्मा अर्थात्'ॐ'है।

वेदान्त के अनुसार जाग्रत अवस्था में आपकी इन्द्रियां तथा दृष्टगत पदार्थ एक दूसरें से एक ही शक्ति के घनात्मक एवं ऋणात्मक ध्रुवों की भांति जुड़े रहते हैं। स्वप्न में भी यद्यपि पदार्थों की उत्पत्ति तुरन्त और तत्क्षण होती है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इन पदार्थों का अपना एक लम्बा भूतकाल रहा होगा। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था

में संसार के पदार्थों का अपने-अपने पुराने इतिहास सहित चेतन दृष्टा के साथ एक साथ ही प्रादुर्भाव होता है। जब आप यह कहते हैं कि यह संसार वास्तविक है, ठोस है, स्थूल है तो आपका यह कथन दृष्टा के अवलोकन करने वाली इन्द्रियों अथवा स्वयं दृष्टा के साक्ष्य पर निर्भर है। यह स्थिति एक प्रकार से स्वप्न देखने वाले अहंकारी दृष्टा के समान है जो स्वप्न में देखी गयी वस्तुओं को स्वप्न काल में वास्तविक मानता है। इसकी तुलना इस प्रकार की जा सकती है कि कोई व्यक्ति चित्रपट पर बनी तस्वीर में अपने कुत्ते को वास्तविक कहे। परन्तु तथ्य यही है कि दोनों ही मिथ्या हैं, वास्तविक नहीं हैं।

वह क्या था जिसके कारण इन्द्रियों का अस्तित्व हुआ? केवल तत्व ही थे। आप इन तत्वों का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते हैं? केवल इन्द्रियों के माध्यम से। क्या यह वृत्त में घुमा-फिराकर एक ही बात को सिद्ध करने वाला तर्क नहीं है? इस तर्क विधा से जाग्रत अवस्था में संसार की मिथ्या प्रकृति सिद्ध होती है। जब तक आप स्वप्न लोक में अपना स्वप्न देख रहे होते हैं, उस समय तक दृष्टगत पदार्थ वास्तविक ही लगते हैं। जब हम सोकर जाग्रत अवस्था में उठते हैं तब स्वप्न लोक के पदार्थ, जगने पर विद्यमान नहीं रहते हैं। जाग्रत अवस्था में सभी वस्तुयें सभी पदार्थ ठोस तथा स्थूल होते हैं। जब हम सुषुप्ति अवस्था में अर्थात् गहन निद्रा की अवस्था में होते हैं जब यह प्रत्यक्ष संसार कहां रहता है? यह संसार कहीं भी नहीं रहा, चला गया, समाप्त हो गया। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि 'वास्तविकता' की परिभाषा जाग्रत अवस्था के दृष्यों अथवा स्वप्न अवस्था पर सही तथा समान रूप से लागू नहीं होती है।

हिन्दू 'वास्तविकता' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं- 'वास्तविकता' वह है जो सभी परिस्थितियों में एक समान विद्यमान रहे। जो दृश्य एक क्षण दिखायी दे और दूसरे क्षण छाया की तरह विलुप्त हो जाय, वह भ्रमात्मक या मायावी दृश्य अवश्यमेव है। यही परिभाषा हरवर्ट स्पेंसर ने भी की है।

आप यह क्यों कहते हैं कि स्वप्न लोक अवास्तविक है? केवल इसीलिए, क्योंकि जब आप निद्रा से जाग जाते है तो स्वप्न लोक विलीन हो जाता है। तब फिर 'अवास्तविकता' की यही मूल परिभाषा जाग्रत अवस्था पर क्यों लागू नहीं होती है? जब आप स्वप्नलोक या सुषुप्ति अवस्था में होते हैं, उस समय तो जाग्रत अवस्था में आपके संसार का अस्तित्व ही नहीं रहता है। 'ॐ' अर्थात् अ,उ,म्, में 'अ' की ध्वनि इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि जाग्रत अवस्था के प्रत्यक्ष दृष्टा, अधिष्ठान सत्ता 'मैं' की अभिव्यंजना मात्र है।

मनुष्य के हृदय को किस प्रकार पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण ने पराभूत कर रखा है? लोग कहते हैं कि "मेरे पास ठोस नकदी है। यह वास्तविकता है, यह स्थूल साकार प्रतीत होने वाला विश्व है।" ऐ मूर्ख ! केवल एकमात्र ठोस सत्य आपकी आत्मा है। यह सत्य अपरिवर्तनीय है। आपकी आत्मा अमर है। केवल यही वास्तविकता एवं ठोस सत्य है। शेष तो इद्रियों का भ्रम जाल है।

कुछ लोग इस निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं

हैं , क्योंकि इन लोगों की यह मान्यता है कि स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थायें जाग्रत अवस्था की प्रतिद्वन्द्वी हैं, इसलिये संसार के मिथ्याजाल को ये लोग स्वीकार नहीं करते हैं। ऐसे लोगों के विचारार्थ कुछ बातों की व्याख्या की जायेगी।

इस पृथ्वी के पूरे धरातल के आधे से कुछ अधिक भाग में हमेशा रात्रि होती है और रात्रि में पृथ्वी की लगभग आधी जनसंख्या यातो स्वप्न लोक या सुषुप्ति अवस्था में रहती है। प्रत्येक व्यक्ति ठीक उसी प्रकार स्वप्न लोक के अनुभवों से गुजरता है जिस प्रकार उसे जाग्रत अवस्था के अनुभवों से गुजरना होता है। क्या सम्पूर्ण शिशु -काल एक लम्बी निद्रा का समय नहीं है? इस पर भी ध्यान दीजिये कि मृत्यु भी एक लम्बी निद्रा ही है। आप अपने जीवन काल के प्रथम तीन या चार वर्षो में लगातार सोते ही रहते हैं। अब आप अपने सम्पूर्ण जीवन-काल की गणना कीजिये कि कितने घंटे आपने जाग्रत अवस्था में व्यतीत किये। आप यह देखकर आश्चर्य-चकित होंगे कि आपका आधा जीवन तो सोने में ही व्यतीत हो गया और आधा जीवन जाग्रत अवस्था में। तब आपको क्या अधिकार है कि आप केवल उन्ही बातों और घटनाओं पर विचार करें जो जाग्रत अवस्था में घटित हुई हों औरं उन बातों पर कोई ध्यान न दें जो सोने के समय घटित हुई हों। क्या आप उस समय मृत हो जाते हैं जब आप सोते रहते हैं? कदापि नहीं। आपके स्वप्नलोक के अनुभव भी तो अनुभव हैं। तब इन पर विचार क्यों न किया जाय? यदि जाग्रत अवस्था, स्वप्न लोक से अधिक शक्तिशाली हो तो ऐसा क्यों है कि सभी व्यक्ति, यहाँ तक की शक्तिशाली से शक्तिशाली व्यक्ति, बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति,

बिना किसी अपवाद के प्रत्येक रात्रि अपने-अपने हाथ-पैर फैलाकर निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं, चाहे उन्हे पलंग पर लेटना पड़े या सोफे पर या अन्य शैय्या पर। निद्रा का कठोर नियम किसी भी व्यक्ति को जाग्रत रहने की उसकी उत्कृष्ट अभिलाषा पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता है। जिस प्रकार स्वप्न अवस्था का अपने स्वयं का संसार है, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था का भी। अतएव यदि आपका ध्यान आकर्षित करने का जाग्रत संसार का अधिकार है तो स्वप्नलोक का भी। आपको उचित ढंग से इन पर विचार करना चाहिए।

अमरीका तथा यूरोप निवासी प्रत्येक वस्तु को बहुमत के दृष्टिकोण से निर्धारित करते हैं। यदि ऐसा है तो स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं को अपना मत देने का अधिकार होना चाहिये। यदि अवस्था के अनुभवों के आधार पर स्वप्नावस्था के अनुभव 'अवास्तविक' हैं तो स्वप्न लोक के अनुभवों के आधार पर जाग्रतावस्था के अनुभव 'मिथ्या' हैं। यह भी देखिये कि पेड़-पौधे वास्तव में सुषुप्ति की दशा में सतत रहते हैं और पशु निरन्तर स्वप्नावस्था में। ऐसा ही है। जिस प्रकार का जगत आपको अर्थात् मानव को प्रतीत होता है, उससे बिल्कुल भिन्न इन पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं को। तब फिर पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, के अनुभवों पर विचार क्यों न करें? चीटी के नेत्रों, उल्लू के नेत्रों, हाथी के नेत्रों के लिये संसार की चीजें वैसी नहीं है जैसी आपके नेत्रों के लिये हैं। उनके लिये चीजों का स्वरूप बिल्कुल भिन्न है। परन्तु आप कहते हैं कि केवल मानव के अनुभवों पर ही विचार करना चाहिये और उसके जाग्रतावस्था अथवा जाग्रत संसार को ही 'वास्तविक' मानना

चाहिये। परन्तु यदि आप सही परिपेक्ष्य में सभी पूर्व महापुरूषों के अनुभवों पर ध्यान दें तो केवल यही विचार आपको आश्वस्त कर देगा कि यह ठोस प्रतीतात्मक संसार मिथ्या है। आप प्रश्न कर सकते हैं कि यह कैसे है? कृपया आप अपने वैज्ञानिकों,दार्शनिकों तथा हक्सले, स्पेंनसर जैसे विद्वानों के मत तथा विचारों पर ध्यान दें। ये सभी जाग्रत संसार की वास्तविकता पर अत्यधिक बल देते हैं। फिर उनके अनुभव जगत के मिथ्यात्व को किस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं? कृपया विचार करें। क्या आप इन महापुरूषों के सर्वोत्कृष्ट अथवा निकृष्टतम सभी प्रकार की धारणाओं पर विश्वास कर लेंगे? आप इन लोगों के विचारों पर ध्यान नहीं देगे जो ये लोग सोते समय या खर्राटे लेते समय व्यक्त करते हैं। किस अवस्था में ये महापुरूष अपने सर्वोत्कृष्ट चरम सीमा पर होते हैं? उनका सर्वोत्तम स्वरूप केवल उस समय प्रकट होता है, उस समय वे सभी प्रकार का श्रेय तथा समादर प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, जब उनके अन्तस्थल से ज्ञान का स्रोत स्वतः फूटने लगता है, ज्ञान स्वतः निर्झर होने लगता है। जब ये महापुरूष अपनी सर्वोत्कृष्ट अवस्था में हों, उस समय इनके पास जाइये और फिर इनका निरीक्षण कीजिये तब आप देखेंगे कि उनके शरीर का रोम-रोम, उनकी त्वचा का प्रत्येक बाल,विश्व की अवास्तविकता, संसार के मिथ्यात्व की अनवरत व्याख्या कर रहे होते हैं और अद्वैत का उद्घोष कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मेरे-तेरे की भावना नहीं होती है, किसी प्रकार का द्वैत, विविधाकार व्यक्तित्व या संसार का नामोनिशान नहीं रहता है। सारा दृश्यमान जगत अस्तित्वहीन बन जाता है। उस समय विचारक एकाग्र चिन्तन की स्थिति में, अमूर्तता की स्थिति में, परिपूर्ण स्थिति में, उस परम उत्कृष्ट स्थिति

में प्रतिष्ठित रहता है जहां सारे ज्ञान नैसर्गिक रूप से उससे प्रवाहित होते हैं। यह एक ऐसी स्थित है जहां स्वाभाविक रूप से सभी ज्ञान उससे उसी प्रकार निकलते हैं जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलता है। उसकी ऐसी परम स्थित होने के कारण वह बातचीत नहीं करता है। परन्तु जब वह अपनी परमावस्था से निकलता है, तभी उससे वार्ता फूटती है, आविष्कार तथा खोज और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट विचारधारा प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार, जब सभी महान विचारक अपनी अनुपम अवस्था में होते हैं तभी उनके वास्तविक अनुभव संसार के अद्वैत को सिद्ध करते हैं। इस सत्य को और अधिक स्पष्ट किया जायगा। जव आप विचार करते हैं तब आप क्या करते हैं? जब आप किसी विषय पर विचार करते हैं तो आप उसकी विवेचना करते हुये आगे बढ़ते हैं। आप अन्य सभी विषयों को छोड़ देते हैं और उस विषय के प्रकरण पर ही सोचते हैं, आप अपने पूरे मन से केवल उस प्रकरण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। तभी आपकी समस्त शक्तियां, सभी ऊर्जा उस विशेष प्रकरण पर ध्यानावस्थित हो जाती हैं। तभी आपका मन उस प्रकरण से, उसके विचारों से परिपूर्ण हो जाता है। परिणाम यह होता है कि इस परिपूर्ण ध्यानावस्था में वह प्रकरण स्वतः पलायन कर जाता है और निरपेक्ष तथा चेतनातीत स्थिति पैदा हो जाती है, ऐसी निरपेक्ष चेतना उत्पन्न हो जाती है, जो सभी ज्ञान के स्रोत का मुखद्वार है।

मनोविज्ञान के एक प्रसिद्ध नियम के अनुसार यदि आप किसी पदार्थ के बारे में सचेत होना चाहते हैं तो उस पदार्थ के विचार के

अतिरिक्त आपके मन में अन्य किसी पदार्थ का विचार होना नहीं चाहिये। परन्तु यदि आपके मन में अन्य पदार्थों का विचार आता है तो अभीष्ट पदार्थ पर एकाग्रता नहीं हो सकती है। दूसरे पदार्थों का विचार आने से द्वैत उत्पन्न होता है। परन्तु अब मन में द्वैत नहीं हो अर्थात अद्वैत की भावना से आपका मन परिपूर्ण हो तो सभी प्रकार की पदार्थ- चेतना शान्त हो जाती है और इस तरह प्रेरणा के स्रोत विन्दु की प्राप्ति होती है।

जब टैनीसन 'लार्डटेनीसन' होने के अस्तित्व के सभी विचारों से परे होते थे तभी ने कवि टैनीसन बन सके। जब वर्कले में आधिपत्य की कोई भावना नहीं रहती थी, जब वे संरक्षण-च्युत पादरी होते थे, केवल तभी विचारक वर्कले का आविर्भाव होता था। जब ह्यूम अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाते हैं जिसका उल्लेख उनके चरित्र-लेखक करते हैं, केवल तभी दार्शनिक ह्यूम उभरते थे। जब हक्सले वह हक्सले नहीं रहते थे जिसे इतिहासकार चित्रित करते हैं वरन् जब वे पूर्ण होते थे केवल तभी वे वैज्ञानिक हक्सले बन पाते थे।

जब हमारे द्वारा कोई महान और अद्भुत कार्य सम्पन्न होता है तो हमारे लिये उसका श्रेय लेना मूर्खतापूर्ण भूल है। क्योंकि जब वह कार्य सम्पादित किया जा रहा था, उस समय श्रेय प्राप्त करने का इच्छुक 'अंहकार' वहां था ही नहीं। यदि यह अहंकार होता तो उस महान कार्य का सौन्दर्य ही विनष्ट हो गया होता। उस समय "मैं यह महान कार्यकर रहा हूं" की चेतना पूर्ण रूप में अनुपस्थित रहती है,

उसका अस्तित्व नहीं होता है। जो महान कार्य होता है, वह ईश्वर द्वारा अपने आप ही सम्पादित होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हम इन महापुरूषों, विचारकों या महान लेखकों के निर्णयों, उनकी सम्मतियों पर उनके उत्कृष्ट स्वरूप में विचार करें तो हम देखेंगे कि वे अपने कर्मों द्वारा, नहीं-नहीं, अपने शरीर के प्रत्येक रोम-रोम से यही अभिव्यक्ति कर रहे होते हैं, यही उपदेश दे रहे होते हैं कि संसार मिथ्या है। "कर्म का उद्घोष शब्दों के उद्घोष से अधिक प्रतिभा-सम्पन्न होता है।"

युद्ध- क्षेत्र में हम अनेक महान वीरों और नायकों को युद्ध करते हुए देखते हैं। जब इनकी चरमोत्कर्ष स्थिति होती है तभी वे निरन्तर युद्ध करते रहते हैं। भले ही बन्दूकों की गोलियों की बौछार तेजी से और अबाध गति से होती रहती हो, एक गोली इधर से गिरती हो, उधर एक घाव लगता हो, उनके शरीरों से खून के फ़व्वारे फूटते रहते हों, उनका शरीर छलनी -छलनी होता जाता हो, फिर भी वे निर्भय होकर, निडर होकर, पूरे मनोयोग से आगे, और फिर और आगे ही बढ़ते जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनका शरीर वस्तुत कोई शरीर नहीं रहता है और वाह्य जगत भी कोई जगत नहीं रह जाता है। ऊर्जा की परिभाषा में वे तो इस जगत तथा शरीर को मिथ्या सिद्ध कर रहे होते हैं। पश्चिमी संसार के महान नायक, जैसे नेपोलियन, वाशिंगटन, विल्गिटन तथा अन्य महावीर अपने कृत्यों से सिद्ध करते हैं, वे अपनी तुच्छ बुद्धि के बावजूद आपको स्पष्ट करते हैं कि जब वास्तविक आत्मा दृढ़तापूर्वक अपने को आरोपित करती है तभी संसार विलीन हो जाता है। वास्तविक आत्मा

तो सच्चिदानन्द है, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति है और केवल यही आत्मा ही वह ठोस सत्य है जिसके सामने संसार की दृश्यमान वास्तविकता की परिसमाप्ति हो जाती है।

वह कौन सा तत्व है जो योद्धा की भुजाओं को सशक्त बनाता है? वह तत्व है, सच्ची आत्मा की कठोर, निश्चल और अटल वास्तविकता से तादात्म्य स्थापित करने का सत।

वे कौन से कारण हैं जिनसे मन को अनेकानेक अन्वेषण तथा खोज करने की प्रेरणा मिलती है? कारण यह है कि मन या बुद्धि, थोड़े समय के लिये ही सही, सच्ची आत्मा- ईश्वर-की निष्ठुर तथा दृढ़ सत्ता में विलय हो जाती है, तभी प्रेरणा मिलती है। यही सच्ची आत्मा आप हैं, आप ही एकमात्र वास्तविकता हैं, आप ही ब्रह्माण्ड के प्रकाशक हैं, प्रभुओं के प्रभु, पवित्रों में पवित्रतम, उच्चों में सर्वोच्च उच्च आप ही हैं।

'ॐ' मंत्र, अ,उ,म्, की संधि है। 'अ' अक्षर निश्चल सत्य अर्थात् आपकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है जो जाग्रत अवस्था के भ्रामक भौतिक संसार में व्याप्त होकर अपनी अभिव्यंजना करता है। 'उ' अक्षर मानस संसार का प्रतिपादन करता है और अन्तिम अक्षर 'म्' पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति करता है, जो 'अज्ञात' तत्व का रूप लेकर अव्यवस्थिति स्थिति में व्याप्त होकर अपनी अभिव्यंजना करता है।

जब बुद्धिमान व्यक्ति 'ॐ' का उच्चारण करते हैं, उस समय

वे निश्चल वास्तविकता के रूप में 'आत्मा' का साक्षात्कार करने के लिये अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर देते हैं और उस ध्यान में सम्पूर्ण भावनाओं का समावेश कर देते हैं। यही निश्चल वास्तविकता ठीक उसी प्रकार तीनों संसारों में व्याप्त है और ठीक उसी प्रकार तीनों संसारों का ही संहार करती हैं जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय अपने सातों रंगों की छटा बिखेर कर, मन मोह लेता है, परन्तु कुछ समय के बाद दोपहर होने के पहले ही सूर्य अपने उदय और अस्त होने वाली अपनी मनमोहिनी छटा अपने में समेट लेता है।

ये तीनों संसार भासमान और दृश्यमान हैं। आप अपनी स्वप्नावस्था में एक भेड़िया देखते हैं और डर जाते हैं कि कहीं भेड़िया आपको खा न जाय। आप भयभीत हो उठते हैं। परन्तु वास्तविकता यही है कि वह भेड़िया नहीं है, जिसे आप देखते हैं, वह तो आप स्वयं हैं जो भेड़िये के रूप में प्रकट हुये हैं। इसी प्रकार वेदान्त आपको बतलाता है कि जाग्रतावस्था में भी "वह आप ही हैं" जो अपने मित्र के रूप में प्रकट होते हैं। आप दोनों हैं। आप सूर्य हैं, और जलाशय भी, जिसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। आप दीपक हैं और पतंगा भी। जो भी आपको अपना घोर से घोर शत्रु दिखायी देता है, वही शत्रु आप हैं, अन्य कोई नहीं।

जब आप 'ॐ' का उच्चारण करें, उस समय आपको शाश्वत सत्य के साक्षात्कार के अपने अभ्यास को उस चरम सीमा पर अपने मन को केन्द्रीभूत करना चाहिये जहां मन से सभी प्रकार की ईर्षा और

द्वेष का समूल नाश हो जाय और इन दोषों को बाहर निकाल कर फेंक दिया जाय। द्वैत के भाव, भिन्नता के भाव को बिल्कुल समाप्त कर दें। मित्र-शत्रु, नाम-रूप केवल स्वप्न-मात्र हैं। आप ही मित्र हैं और आप ही शत्रु। कल जो बातें आप कर चुके, क्या वे आज आपके साथ हैं? क्या वे कृतियां स्वप्न नहीं बन गयी हैं? वे तो समाप्त हो गयी हैं। वे भूतकाल के गर्भ में चली गयीं। वे अब कहां हैं? क्या आप अभी भी सोचते हैं कि वे समाप्त नहीं हुई हैं? वे तो कभी की विलीन हो गयीं! इस परिपेक्ष्य में, इस अर्थ में भी जाग्रतावस्था के अनुभव स्वप्न मात्र हैं। स्वप्नावस्था के अनुभव तो स्वप्न होते ही हैं। इन सब दृश्यगत संसारों के पीछे विद्यमान रहती है-वास्तविक, कठोर, नकद, निश्चल, सच्चाई, सच्ची आत्मा। इसकी अनुभूति कीजिये।

कुछ लोग ऐसे हैं जो विचारों को ही ठोस भौतिक आधार प्रदान करना चाहते हैं और सभी भौतिक पदार्थों को केवल विचार मात्र के रूप में साक्षात्कार करने के सत्य की उपेक्षा करते रहते हैं। वे मानते हैं कि मानस संसार या विचारों के संसार की तुलना में भौतिक धरातल ही वास्तविक है। वेदान्त के अनुसार,भौतिक तथा मानस, दोनों संसार मिथ्या हैं। आपको इन दोनों संसारों से ऊपर उठना होगा, क्योंकि निश्चलता, वास्तविक शान्ति, आनन्द उसी समय प्राप्त किया जा सकता है जब आप इन सब संसारों, इन भासमान दृश्यों के पीछे की सत्यता, नकद वास्तविकता का साक्षात्कार कर लें।

अ, उ, म, में 'अ' अक्षर को कभी-कभी किसी मंत्र या

किसी अन्य रूप की संज्ञा दी जाती है, 'उ' का भी इसी प्रकार बहुधा किसी मंत्र या किसी विशेष रूप के नाम से उच्चारण किया जाता है, 'म्' को भी किसी मंत्र या किसी निर्दिष्ट रूप से विभूषित किया जाता है। परन्तु 'ॐ' या 'ओ३म्' किसी मंत्र या रूप पर अवरूद्ध नहीं होता है, वह तो सत्य, नकद वास्तविकता का प्रतीक है। जितने भी मंत्र हैं, उन सब में यही वास्तविकता, यही सत्यता प्रवाहित होती है। लोग कहते हैं- ''हमें जीवन चाहिये, ठोस वस्तु चाहिये, हम केवल विचार-मात्र नहीं चाहते हैं।'' ओह! किस प्रकार के जीवन की आपको अपेक्षा है? क्या आप उस जीवन को चाहते हैं, जो जाग्रतावस्ता का है? निर्णय आपको करना है कि आपको कौन सा जीवन पसन्द है। वास्तविकता, सच्चा जीवन तो आपकी स्वयं की आत्मा है। वह ऐसा कठोर विधान है जो आपको कभी भी इन्द्रियों के माध्यम से सुखों की अनुभूति करने की अनुज्ञा नहीं देगा। क्या आपके लिये यह कभी सम्भव है कि आप अपने आपको इन्द्रियों को समर्पित कर दें, इन्द्रियों के हाथ अपने को बेच दें और फिर भी आनन्द से भरपूर रहें? कदापि नहीं, यह असम्भव है। विधान यही है जो सर्वाधिक निष्ठुर,अविचलित, निश्चल है,और वह आपको इन्द्रिय-भोगों में आनन्द लेने की अनुभूति करने की अनुमति नहीं देता है।

आत्मा ही वास्तविक जीवन है, नकद वास्तविकता है। इसका साक्षात्कार कीजिये। फिर ये भौतिक सुख आपको ढूढ़ने के लिये उसी प्रकार दौड़ेगें, जिस प्रकार पतंगा प्रज्जवलित दीपक के पीछे दौड़ता है, जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलने के लिये व्याकुल रहती है, जिस प्रकार

एक छोटा कर्मचारी अपने महान सम्राट के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिये परेशान रहता है। जब आपने अपनी सच्ची आत्मा को, अपनी दिव्य प्रभुता को, अपनी वास्तविक सत्ता-सम्पन्न आत्मा को सकल रूप में जान लिया और उसकी अनुभूति कर ली तो सारे सुख, सारे आनन्द आपके पास स्वतः ही आयेंगे। 'ॐ' इस आत्मा का प्रतिपांदन करता है।

आपके सामने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि 'अ','उ','म्', की संधि से बने मूल मंत्र द्वारा हिन्दू लोग, विशेषकर वेद और उसके आधारभूत सत्य को आत्मसात करने का गुर प्राप्त करते हैं। आधारभूत सत्य आप ही हैं। 'ॐ' का तात्पर्य सभी दृश्यमान, भासमान परिवेश के पीछे अधिष्ठान, सत्य से है, 'ॐ' शाश्वत सत्य है, 'ॐ'अविनाशी आत्मा है। यही आत्मा आप है। इसलिये जब आप 'ॐ' के पवित्र मंत्र का गायन करें और उस समय आप अपनी बुद्धि, अपनी शरीर को अपनी वास्तविक आत्मा में विलीन कर दें। इस सत्य का साक्षात्कार कीजिये और इसको आप भावना की भाषा में गाइये, अपने कर्मों द्वारा गाइये, अपने शरीर के रोम-रोम से इसे गाइये। इस सत्य को आप अपनी नस नाड़ियों में प्रवाहित कीजिये, इस सत्य का आप अपने हृदय में स्पन्दन कीजिये, इस सत्य को आप अपने रक्त की प्रत्येक बूंद द्वारा और अपने शरीर के प्रत्येक रोम द्वारा अपने से एकाकार कीजिये। सत्य यह है कि आप ही प्रकाशों के प्रकाश हैं, प्रभुओं के प्रभु आप ही वास्तविक आत्मा हैं। सूर्य तथा

चांद-तारों को आपने अपने हाथों से बनाया है और आसमान तथा पृथ्वी तो आपकी अपनी कृतियां है। हर वस्तु, प्रत्येक पदार्थ, आपकी प्रभुता, आपकी महिमा का उद्घोष कर रहा है और सकल प्रकृति अपना सम्मान प्रकट करने के लिये नत-मस्तक है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

ईश्वरः अन्तस्थल में

सम्मानित महिलाओं तथा भद्रपुरूषों के रूप में विराजमान मेरे ही आत्मन्!

हजरत मूसा के धर्म-ग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि मेरे इस संसार को ईश्वर ने बनाया। उसने अपनी कारीगरी देखी और वाह! कितनी सुन्दर, कितनी गौरवशाली रचना थी ईश्वर की। ईसाइयों की धर्म-पुस्तक इंजील- "बुक आफ जेनेसिस" के सृष्टि-खण्ड में यही पढ़ते हैं और इसमें इसी सत्य का प्रतिपादन होता है। आप जानते हैं कि "हे ईश्वर! तेरी इच्छा ही पूरी हो" की प्रार्थना में मन की एक विशेष स्थिति प्रकट होती है। वेदान्त उसी मानसिक स्थिति को जोरदार ढंग से उद्घोषित करता है। हिन्दू इसी प्रार्थना को, इसी बात को इस प्रकार कहते हैं- "मेरी ही इच्छा पूरी हो। मेरी इच्छा ही पूरी हो रही है।" जब पत्नी अपनी इच्छा का तादात्म्य अपने पति की इच्छा से कर लेती है तो वह अत्यन्त उल्लास पूर्वक कहती है- "मेरी इच्छा ही पूरी हो रही है।" इस अवस्था में उसे इस बात की प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होती है कि वह यह कहे कि मेरी पति की इच्छा पूरी हो। क्योंकि पति-पत्नी दो सत्ता नहीं हैं वरन् वे एक में समाहित हैं-पत्नी को अपने स्वामी-अपने पति की इच्छा के अनुरूप अपनी इच्छा को स्वयं ढालने

(स्वामी राम द्वारा २४ दिसम्बर, १६०२ को ' हरमैटिक ब्रादरहुड हाल', सनफ्रांसिसको, अमेरिका में दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

के लिये कठोर परिश्रम करना स्वाभाविक है। परन्तु जब पति-परायण पत्नी ने अपने निरन्तर प्रयत्नों द्वारा अपने पति के साथ अपने मतभेदों को दूर कर लिया, द्वैत समाप्त कर लिया, तब वह अपने पति के कृत्यों को अपने स्वयं के कर्म ही मानती है। इस दृष्टिकोण से वेदान्ती विश्व की प्रत्येक वस्तु का आनन्द उठाता है, क्योंकि वह मानता है कि ये सभी चीजें उसी ने बनायी हैं। प्रबुद्ध महापुरूषों की मान्यता है:-

"पत्थरों की दीवारें नहीं बनाती है कारागार,
न ही बनाती हैं लोहे ही छड़ें कोई कटघरा,
जिनका मन निर्दोष है, शान्त है,
वे जानते हैं ये स्थान हैं पवित्र,
मानों हों, वे आश्रम सन्तों के।"

इसके विपरीत जो लोग अज्ञानी हैं जो अपनी वास्तविक आत्मा को नहीं जानंते हैं और जिन लोगों ने अपने आपको अहंकार तथा स्वार्थपरता को समर्पित कर दिया है वे अपने राज-प्रासादों और किलों को फांसी-गृह, श्मशान घाट या कब्रगाह तथा नरक से भी अधिक बदतर और भयंकर बना देते हैं। अपनी तुच्छ चिन्ताओं, नीचं, अधोगामी इच्छाओं तथा काल्पनिक भय और आशंकाओं से वे अपने आपको बन्दी बनाने के लिये स्वयं जंजीरों का निर्माण करते हैं।

वेदान्त आपको स्पष्ट करता है कि आपका आनन्द, आपका सुख, आपका अपना काम है; फिर सांसारिक इच्छायें इस क्षेत्र में क्यों

हस्तक्षेप करें? इस सत्य की अनुभूति कीजिये और आप स्वतंत्र हैं। यूरोप तथा अमरीका महाद्वीपों और अन्य देशों के लोग मानते हैं कि वेदान्तिक साक्षात्कार करना अत्यन्त दुरूह है। वे सोचते हैं कि इसके लिये उन्हें अपने आपको ईश्वर में परिवर्तित करना होगा। उन्हें अपने अन्दर ईश्वर का निर्माण करना होगा। वेदान्त के अनुसार, स्वयं सिद्ध सत्य यही है कि आप पहले से ही ईश्वर हैं, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। आपको ईश्वरत्व की संरचना नहीं करनी है; आपको केवल इस ईश्वरत्व का ज्ञान प्राप्त करना है, इसकी अनुभूति करनी है, इसका साक्षात्कार करना है। आपको इस सत्य को व्यवहार में लाना है, आपको इस सत्य का उपयोग करना है।

मानिये, एक ऐसा व्यक्ति है जिसके घर में विशाल कोष है, परन्तु वह उस कोष को भूल गया है। एक दूसरा व्यक्ति है जिसके पास कोई कोष नहीं है। दोनों ने अपने-अपने घरों में कोषों को ढूढ़ने के लिये खुदाई प्रारम्भ की। जिस व्यक्ति के घर में कोष गड़ा है और जिसे वह भूल गया है, यदि वह व्यक्ति खुदाई चालू रखे तो कभी न कभी उसे अपने विस्मृत कोष का पता लग जायगा। परन्तु जिस व्यक्ति के पास कोई खजाना ही नहीं है, वह काल्पनिक कोष को पाने के लिये कितनी भी खुदाई क्यों न करें उसे कोष नहीं मिलेगा। आपके पास विशाल कोष है। अब आप कृपया अधिक कृपण और लोभी न बनें, अपने महान कोष का उपयोग करें। आपको अपने घर में अर्थात् अपने हृदय में, कोष को संजोये रखना मात्र नहीं है, आपको उसका प्रयोग भी करना है। आपकी आत्मा अपनी प्रकृति से, अपने स्वभाव से, अशुद्ध

और पापी नहीं है, आपकी आत्मा न तो किसी एक व्यक्ति के पापों द्वारा पतित हुई है और न ही उस आत्मा का किसी दूसरे व्यक्ति के सत्कर्मों से उद्धार हुआ है।

किसी श्याम-पट (ब्लैक-बोर्ड) को लीजिये। वह एक ठोस तथा कठोर वस्तु है। आप इस श्याम-पट को रगड़ें, और फिर जितना चाहें उसको खुरचें, पर क्या आप उसे पारदर्शी बना सकते हैं? कदापि नहीं। इसके विपरीत एक दर्पण लीजिए। इस दर्पण पर धूल, मिट्टी तथा अन्य प्रकार की गन्दगी पड़ गयी है। लेकिन आप दर्पण को साफ कर सकते हैं और उसे पारदर्शी बना सकते हैं। आपको दर्पण को पारदर्शी बनाने के लिये मौलिक प्रयत्न नहीं करने हैं। आप तो उसे साफ कर उसका वह रूप निखार सकते हैं जो वस्तुतः उसका वास्तविक स्वरूप है और जो पहले से ही उसमें विद्यमान है। श्याम-पट की ऐसी प्रकृति नहीं है कि वह पारदर्शी बने और कितने भी प्रयत्न क्यों न किये जांये, उसे पारदर्शी नहीं बनाया जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य में यह स्वाभाविक विश्वास अत्यन्त गहराई तक कूट-कूट कर भरा हुआ है कि उसमें मुक्ति प्राप्त करने की सामर्थ्य है तथा क्षमता है। इससे आत्मा की निहित शुचिता तथा पापहीनता सिद्ध होती है। यह दूसरी बात है कि कुछ समय के लिये प्रत्यक्षतः उसमें मलिनता भासित हो। पर आत्मा की शुचिता के बारे में यह सार्वभौमिक तथा निरापद आस्था उस अस्वाभाविक सिद्धान्त को झूठा सिद्ध कर देती है, जिसकी मान्यता है कि आत्मा की प्रकृति पापमयी है। इस अप्राकृतिक

सिद्धान्त से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि श्याम-पट की भांति इस आत्मा को कभी भी पारदर्शी अथवा विशुद्ध नहीं बनाया जा सकता है। पर तथ्य यही है कि सच्ची प्रकृति 'ईश्वर' है। यदि ईश्वर मानव की अपनी आत्मा नहीं होता तो इस विश्व में किसी भी पैगम्बर या सन्त या महात्मा का आविर्भाव कदापि हो ही नहीं सकता था।

राम जोर से, बलपूर्वक आह्वान करता है-''किंचित भयभीत मत होइये, बाहर मैदान में निकलिये और हिम्मत तथा साहस से अपने जन्म-सिद्ध अधिकार पर कब्जा कीजिये। आपका जन्म सिद्ध अधिकार है- ''मैं ही ईश्वर हूँ।'' बिल्कुल भी भयभीत न होइये, डर से मत कांपिये''।

जब हजरत मूसा 'माउंट सिनाई' पर्वत पर टहल रहे थे, उस समय उन्होंने एक झाड़ी को जलते हुए देखा। उन्होंने पूछा ''तुम कौन हो, वहां कौन है?'' हजरत मूसा कदाचित जोर से न बोले हों, परन्तु वे अचम्भित थे, क्योंकि इस अग्नि से जो लपटें निकल रहीं थीं, उनसे झाड़ी भस्मीभूत नहीं हो रही थी। इस अद्वतीय अग्नि को जानने के लिये मूसा अत्यधिक उत्सुक तथा अधीर थे। अन्ततः झाड़ी से उत्तर आया- ''मैं वही हूँ, जो वास्तव में 'मैं' हूँ।'' यही विशुद्ध- ''मैं हूँ'' ही आपकी सच्ची आत्मा है।

आपकी आत्मा, आपकी वास्तविक प्रकृति वस्तुतः पारदर्शी हीरे, ज्योतिर्मय स्फटिक के समान है। इस स्फटिक के पास कोई भी काली वस्तु रखिये और स्फटिक काला प्रतीत होने लगेगा। इस विशुद्ध स्फटिक

के निकट कोई लाल चीज रखिये और यह स्फटिक लाल प्रतीत होने लगेगा। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा। वास्तव में विशुद्ध स्फटिक में कोई रंग नहीं होता है। वह लाल, काले एवं सभी रंगों से परे है। स्फुटिक तो स्फटिक ही है, अन्य कुछ भी नहीं। इसी प्रकार आपकी आत्मा, आपकी सच्ची आत्मा वही है जो वह है। वह विशुद्ध, निर्मल "मैं हूँ" ही है।

भारत के एक मनुष्य का उदाहरण लीजिये। वह अपनी विशुद्ध निर्मल आत्मा के निकट बादामी रंग के एक कपड़े का एक टुकड़ा रख देता है। बादामी रंग हिन्दुओं का प्रिय रंग है। इस कारण आत्मा का स्फटिकवत् बादामी रंग भासित होने लगता है, मानों आत्मा का यही रंग हो। विशुद्ध "मैं हूँ" का रूप बदलकर "मैं एक हिन्दू हूँ" हो जाता है। वास्तविक आत्मा, विशुद्ध स्फटिक के समान है; रंग रहित है, वह नाम-रूप से विरत है। ऐसी आत्मा के स्फटिक के समीप एक अमरीकन एक पीला कपड़ा रख देता है; फिर यह निर्विकार "मैं हूँ" का रंग स्फटिक में "मैं एक अमरीकी हूँ" में परिवर्तित हो जाता है। एक अन्य पुरूष आता है और इस विशुद्ध आत्मा, पारदर्शी स्फटिक के निकट एक लाल कपड़ा लाल कागज रख देता है, फलतः "मैं हूँ" का स्वरूप बदलकर "मैं एक महिला हूँ" हो जाता है। एक दूसरा आदमी विशुद्ध आत्मा के निकट कोई दूसरा रंग रख देता है और कहता है- "मैं ईसाई हूँ" तो दूसरा कहता है-"मैं हिन्दू हूँ", फिर तीसरा कहता है "मैं अमरीकन हूँ", चौथा कहता है- "मैं जान बुल हूँ", पांचवां कहता है-"मैं बालक हूँ", छठा कहता है-"मैं महिला

हूँ'', सातवां कहता हैं ''मैं सिंह हूँ'', आठवां कहता है- ''मैं चीता हूँ''। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

कृपया ध्यान दीजिये, यह शुद्ध, सच्ची आत्मा, आभापूर्ण, निर्मलतम, देदीप्यमान आत्मा-'ॐ' या ''मै हूँ'', सभी रूपों में, सर्वत्र एक समान है, अपरिवर्तित है। वास्तव में आत्मा में कोई रंग या विशेषण नहीं हैं। आप अपनी स्वयं की अज्ञानपूर्ण भ्रान्तियों में आत्मा को अपना मन पसंन्द रंग दे देते हैं। किसी पारदर्शी दर्पण को लीजिये और उसके पास कोई रंग रख दीजिये। यह रंग दर्पण में आत्मसात नहीं होता है, वह रंग तो उसमें प्रतिविम्बित होता है, और दर्पण उस रंग से किसी प्रकार सम्बद्ध नहीं होता है। स्फटिक तो सदैव विशुद्ध एवं रंग विहीन है। ''मैं हूँ'' का तत्व सार्वभौमिक तथा सर्वव्यापक है, वह हर जगह आप में विद्यमान है। सिंह तथा चीता भी ''मैं हूँ'' के एक ही विचार का प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः यही विशुद्ध ''मैं हूँ'' ही आप है। आपको कोई अधिकार नहीं है कि आप अपने निकट रखे कपड़े या कागज के रंगीन टुकड़े से अपना तादात्म्य स्थापित करें, क्योंकि एक समय था जब इसी सीधी-सादी और निर्लिप्त आत्मा का तथाकथित दूसरा स्वरूप था। उस समय ''मैं हूँ'' का विचार दूसरे शरीर में व्याप्त था। एक समय वह भी था जब आपने अपने किसी पूर्व जन्म में ''मैं सिंह हूँ'' या''मैं बैल हूँ'' का भाव अधिग्रहण कर लिया था।

आप सच्ची आत्मा, वास्तविक ''मैं हूँ'' का साक्षात्कार करके ही स्वतंत्रता एवं आनन्द प्राप्त कर सकते है। यह आत्मा जैसी कल थी,

वैसे ही आज है। और हमेशा वैसी ही रहेगी। विशुद्ध "मैं हूँ" को काल स्पर्श नहीं कर सकता है, क्योंकि पूर्व जन्म में यह विशुद्ध 'मैं हूँ" एक दूसरे रूप में विद्यमान था। देश और परिस्थितियों से भी यह सत्य दोषपूर्ण या मलिन नहीं होता है, क्योंकि ये सभी शरीर उसी एकमात्र तत्व- "मैं हूँ" के पराधीन हैं। सभी काल केवल "अब" विशुद्ध वर्तमान हैं और सभी देश के अन्तर केवल "यहीं" तत्स्थली से सीमित हैं। यह विशुद्ध-अब "मैं हूँ" का यही तत्व है जिसका प्रतिनिधित्व 'ॐ' करता है। विशुद्ध "मैं हूँ", "मैं ही ईश्वर हूँ" के सत्य को 'ॐ' प्रकट करता है।

फारसी भाषा के अनुसार "उ" है- ओ, अ,म्, की संधि अर्थात् 'मैं ईश्वर हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। 'ॐ' तो "मैं हूँ" के विशुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन करता है।

हे ईश्वर! हे मेरे सर्वस्व प्रियतम!
भले ही तू विस्मृत करना चाहे मुझे,
हजारों-लाखों रूप धारण कर,
पर मैं तुरन्त जान लेता हूँ तुझे, सत को।
हे ईश्वर! हे सर्वव्यापक!
चाहे छिपाये तू अपने मुखड़े को
जादू की छड़ी से या मायावी घूंघट से,
पर मैं सीधा-सादा जानता हूँ तुझे, सत को।

हे ईश्वर! हे परम तत्व!

चाहे हो सरों का वृक्ष,

या हो उसकी कोमलतम कोपल,
उसके निर्मलतम, पल्लवित कलियों में,
उन सुन्दरतम खिली कोपलों में,
व्याप्त है एकमात्र तू,
मैं जानता हूँ, तुझे, सत को।

हे ईश्वर! हे लीलाकार!
नहर के सजीव, निर्मल जल में,
बाढ़ की उफनती धारा में,
देखता हूँ मैं, सबको मोहित कर रहा है तू,
मैं तो जानता हूँ भलीभांति तुझे,सत को।

जब बढ़ती है जल-धारा,
तोड़ती तटों को, सवेग से,
सभी प्रकार का कौतुक करने वाले तुझको,
कितनी प्रसन्नता पूर्वक जानता हूँ मैं, तुझे, सत को।

हे ईश्वर! हे अपरिवर्तनशील!
जब तू समेटता आकाश में जल की नन्हीं -नन्हीं बूदों को,
और बनाता है उनसे उमड़ते-घुमड़ते विविधाकार बादल,
उनका स्वरूप बनाता, बिगाड़ता है तू,
पर, मैं देखता हूँ तुझे
मैं तो जानता हूँ तुझे, सत को।

हे ईश्वर! हे सुन्दरतम्!
हरे भरे मैदानों के गलीचों पर
झूमते, नाचते फूलों की छटा
सभी जगह बिखरी है, छितरी है तारों जैसी,
सौन्दर्य प्रतिभा बना है तू
मैं तो जानता हूँ तुझे, सत को।

यदि कोई पौधा फैलाये कहीं भी हजारों शाखायें,
उनमें भी व्याप्त है तू और किये है सबको आलिंगनबद्ध,
मैं तो जानता हूँ, तुझे सत को।

हे ईश्वर! हे आनन्द मूर्ति!
जब प्रस्फुटित होती है पर्वत पर प्रातः मधुर आभा,
तभी दर्शन करता हूँ तेरा,सब पर हर्ष की वर्षा करने वाले को,
और नमन करता हूँ तत्क्षण मैं तुझे।

हे ईश्वर! हे हृदयेश्वर!
जब बनता है ऊपर आकाश का महराब,
विशुद्ध और दैदीप्यमान,
सभी हृदयों में विराजमान, व्यापक तू,
भरता हूँ, समेटता हूँ, मैं तुझे अपनी स्वासों में!

हे ईश्वर! हे नेति-नेति!
जो है भीतर मेरे,

जो है बाहर मेरे,
जिसकी अभिव्यंजना प्रकट करती हैं इन्द्रियां,
सभी का शिक्षक, सभी का उपदेशक है तू,
मैं जानता हूँ तेरे द्वारा तुझे, सत को।

है ईश्वर! हे आत्मदेव!
यदि मैं पुकारूँ अल्लाह को,
सैकड़ों बार, सैकड़ों नामों से,
हर एक नाम से प्रतिध्वनित होती है,
एक ही बात, एक ही सत्य,
सब हैं तेरे लिये,
सब है समर्पित तुझी को।

राम अब आपसे हजरत मूसा के जीवन की एक घटना का उल्लेख करना चाहता है। जब मूसा "तूर" पर्वत पर थे और वहां जब उन्होंने झाड़ी में से एक आवाज निकलती हुई सुनी तब उन्हें यह देखकर अचम्भा हुआ कि उनके पास एक सांप फुफकार रहा है। बस, मूसा डर गये, उनकी बोलती बन्द हो गयी,सारी बुद्धि रफू-चक्कर हो गयी। वे कांपने लगे, उनकी छाती जोर-जोर से घड़कने लगी, नसों का सारे का सारा खून मानों जम गया हो। वे हताश थे, वे कहीं के नहीं रहे। इस पर आकाशवाणी जोर से हुई- "ऐ मूसा! डरो मत, सांप को पकड़ लो। जोर से सांप को उठाओ, डरो नहीं, उसको कसकर पकड़

कर अपने हाथों में थाम लो। लेकिन मूसा तो अभी भी कांप रहे थे और बराबर भयभीत होते जा रहे थे। दुबारा फिर आकाशवाणी हुई- ''अरे मूसा! आगे बढ़ो और निडर होकर सांप को कसकर पकड़ो।'' अन्ततः मूसा ने सर्प को पकड़ लिया और देखिये तो सही, यह सर्प सर्वाधिक सुन्दर तथा शोभायमान छड़ी अथवा दण्ड या डंडे के रूप में बदल गया। इस घटना या कथानक का वास्तविक मन्तव्य क्या है? आप जानते हैं कि पूर्वी देशों के विचारकों, विशेष रूप से हिन्दू मत के दार्शनिकों के अनुसार सत्य या अन्तिम वास्तविकता का प्रतिनिधित्व 'शेष' (नाग) द्वारा होता है। सर्प चक्राकार रूप में घेरे के अन्दर घेरे बनाकर कुंडली मार कर बैठता है, पर वह इस प्रकार से बैठता है कि वह अपनी पूँछ लौटाकर अपने मुँह में रख सके। इसी प्रकार हम इस संसार में देखते हैं कि हम चक्कर के अन्दर चक्कर लगा रहे हैं; हर चीज घूम-घूम कर चक्कर पर चक्कर लगाकर बारम्बार घटित हो रही है। पर इन चक्करों के अन्तिम दोनों छोर मिलते रहते हैं। यह एक सार्वभौमिक विधान या सिद्धान्त है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

सर्प को पकड़ने का तात्पर्य है-अपने आपको दिव्य विधान के प्रशासक अथवा ब्रह्माण्ड के नियामक की स्थिति में अपने को प्रतिष्ठित करना। आप साहसपूर्वक स्वयं को उस स्थित में अवस्थित करें और दिव्यता के साथ अपनी एकता का साक्षात्कार करें।

हजरत मूसा उस जाति के थे जो गुलामी में रह रही थी। उन दिनों यहूदियों की दयनीय दशा थी। वे अपने देश से निकाल

बाहर कर दिये गये थे और खाना-बदोश (घूमने वाले, आवारा) बन गये थे। इन लोगों को अनेकानेक यातनायें सहनी पड़ती थीं, अनेकानेक कष्ट झेलने पड़ते थे, जिसके कारण यहूदियों का ऐसे ईश्वर में विश्वास करना स्वाभाविक ही था जो पूरी तरह क्रूर और आततायी हो। ये लोग ईश्वर को मानते थे कि वह पूरी तरह निरंकुश तानाशाह है।

कल्पना कीजिये कि बैलों ने एक जगह एकत्र होकर एक धार्मिक संसद का आयोजन किया। ऐसी संसद ईश्वर की क्या परिभाषा करेगी? इस संसद में बैलों का ईश्वर के बारे में यही परिभाषा करना स्वाभाविक है कि वह एक महाप्रतापी बैल है जो किसी भी बैल को इतना डरा सकता है, उसे इतना भयभीत कर सकता है कि वह बैल मर जाय। इसी प्रकार यदि सिंह अपनी जाति की धार्मिक संसद का आयोजन करें तो उनका भी ईश्वर के बारे में यही विचार होगा कि ईश्वर सबसे बड़ा, सबसे अधिक शक्तिशाली सिंह है, वह सबसे अधिक भयानक, खूंखार सिंह है। क्या आप अपनी क्षमता से अधिक सोच सकते हैं, अपने भीतर से बाहर निकलने के लिये छंलाग लगा सकते हैं? कदापि नहीं। सिंहों को ईश्वर के बारे में सोचने दें और ईश्वर के स्वरूप के बारे में निर्णय करने दें। वे यही निष्कर्ष निकालेंगे कि ईश्वर एक भीमकाय, भयंकरातिभयंकर सिंह है। इसी प्रकार यदि भयभीत लोग ईश्वर के बारे में कल्पना करने लगें और उसके स्वरूप के बारे में निर्णय करने लेगे तो निश्चयात्मक रूप से वे यह निष्कर्ष निकाले बिना नहीं रह सकेंगे कि ईश्वर गुलामों का सबसे बड़ा स्वामी है, वह एक निरंकुश और आततायी शासक है। इस परिप्रेक्ष्य में यहूदियों

ने स्वभावतः दिव्य ईश्वर की यह कल्पना की थी कि ईश्वर प्रतिभा तथा शक्ति सम्पन्न शासक है, एक महानतम स्वामी है।

अधिकांश पूर्वीय देशों की विशेषकर 'सेमेटिक' भाषाओं में ईश्वर के लिये 'मालिक' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस 'मालिक' शब्द का अनुवाद बहुधा 'स्वामी' के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में यहां कुछ शब्द कहना अनुचित नहीं होगा।

यहूदियों की अनेक जन-जातियां थीं। प्रत्येक जन-जाति का अपना स्वयं का एक ईश्वर होता था। एक समय था जब एक जन-जाति, ईश्वर को 'मोलक' के नाम से पुकारती थी। यहूदियों की विभिन्न जन-जातियों के आपसी युद्धों में 'मोलक' को ईश्वर मानने वाली प्रजाति के लोगों ने अन्य जन-जातियों को पराजित कर दिया। फलस्वरूप विजेता प्रजाति के ईश्वर- 'मोलक' ने भी पराजित जन-जातियों के विविध ईश्वरों पर अपना आधिपत्य जमा लिया और 'मोलक' सभी यहूदियों के ईश्वर बन गये। इस कथानक से स्पष्ट कल्पना की जा सकती है कि किस प्रकार 'सेमेटिक' लोगों के एक व्यक्तिगत ईश्वर के मानने वालों के भगवान के लिये 'मालिक' शब्द का प्रयोग आरम्भ किया गया होगा। उस काल के एक ईश्वर को 'मालिक' मानने वालों की विचारधारा ही तत्कालीन ज्ञान की प्रमुखता थी। यह विचारधारा वास्तव में 'अज्ञात' के क्षेत्र में प्रवेश करने, 'अज्ञात' की जानकारी प्राप्त करने के लिये एक प्रयत्न था। ऐसा प्रयत्न उस समय इन लोगों के लिये समीचीन था।

अब परिस्थितियां बदल गयी हैं। अधिकांश लोग राजतंत्र के पक्षधर नहीं है, वे स्वायत्त शासन चाहते हैं, अमेरिका के लोग स्वतंत्रता चाहते हैं, इंग्लैण्ड के लोग भी आजादी पसन्द करते हैं,सभी जगह स्वतंत्रता की चाह है। विज्ञान ने भी प्रगति की है। हर क्षेत्र में प्रगतिं हुई है और विकास हुआ है। अब यह सर्वाधिक उपयुक्त समय है कि ईश्वर के बारे में पुरातन, अत्याचारी, घमंडी, प्रभुत्वप्रधान मान्यता को प्रगति के सिद्धान्त के अनुसार स्वतंत्रता-उत्प्रेरक विचारधारा में परिवर्तित कर दिया जाय। यह विचारधारा है- ''अहम् ब्रह्मोस्मि'' अर्थात् मैं ईश्वर हूँ''। यही शिक्षा वेदान्त देता है। जिस प्रकार इंग्लैण्ड के स्वेच्छाचारी राजतंत्र की शक्तियों को धीरे धीरे सीमित कर दिया गया, उसी प्रकार अब समीचीन समय है कि व्यक्तिगत ईश्वर की निरंकुशता और आधिपत्य की सभी शक्तियों को उससे छीन लिया जाय और धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त की जाय।

यहूदी लोग राजनीतिक दासता में रहते थे, इसलिये उनका ईश्वर उनसे भिन्न 'मालिक' ही होना चाहिये था। अब आप राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता का आनन्द उठा रहे हैं, तो आपके ईश्वर को भी यही आनन्द चाहिये, आपका ईश्वर 'आपकी अपनी आत्मा' से विलग नहीं हो सकता है, दोनों को एकाकार होना चाहिये। आज वह युग है जब लोग दासता में नहीं रहना चाहते हैं। वंधुवापन तथा दासता का युग तेजी से भाग रहा है। विकास का बोल-बाला है और हर वस्तु को ऊपर की ओर, फिर और आगे की ओर प्रगति करनी है। तब क्या केवल आपका व्यक्तिगत ईश्वर ही अपने स्थान पर स्थिर बना रहे? नहीं,नहीं, कदापि नहीं।

कहा जाता है कि एक समय ऐसा था, जब ईश्वर का एक प्रतिद्वन्द्वी शैतान हुआ करता था और ईश्वर के भी अनेक देवदूत तथा सेवक थे, जो ईश्वर को भी परिसीमित किया करते थे। ईश्वर ने सात दिनों में इस संसार की रचना की। पर वह कौन सा समय था, जब ईश्वर ने ऐसा किया होगा? यह वह समय था जब हजरत मूसा ने अपनी धार्मिक पुस्तकें लिखीं। आप जानते हैं कि मूसा के काल से लेकर अब तक हजारों साल गुजर गये। इस बीच संसार में भी अनेक क्रान्तियां हुईं। थोड़ा ध्यान दीजिए कि वह किस प्रकार का ईश्वर होगा, जिसकी इतनी अधिक लम्बी अवधि गुजर जाने क बाद किंचित विकास न हुआ हो, वह ज्यों का त्यों बना रहा हो? हर वस्तु को आगे बढ़ाना होगा, हर चीज को विकसित होना होगा। अब तक तो ईश्वर की प्रतिस्पर्धा करने वाले उसके प्रतिद्वन्द्वी-शैतान का समूल नाश हो ही जाना चाहिये था। अब तक तो ऐसी कोई चीज नहीं रह जानी चाहिये थी जो ईश्वर की शक्तियों को परिसीमित या सीमाबद्ध कर सके। ईश्वर के बारे में यह मान्यता थी कि वह संसार का वास्तुविद है, संसार का निर्माता है। अब तक इस मान्यता को समाप्त हो जाना चाहिये था और ईश्वर को निर्माण के तथाकथित व्यवसाय से आगे बढ़कर और अधिक उन्नति कर लेनी चाहिये थी।

यही उपयुक्त समय है, संसार के लिये सर्वाधिक समीचीन काल है कि वह वेदान्त का अनुशीलन करे। सम्पूर्ण संसार के लिये यह सटीक समय है कि संसार, सत्य को फुफंकार मारने वाले, डसने वाले सर्प को साहस से उठाये और उसे जोरों से पकड़े। परिपूर्ण सत्य आपके पास

स्वयं आया है और आपके सामने उद्घोष कर रहा है कि आप ही ईश्वर हैं, ईश्वर आपसे विलग नहीं हैं ईश्वर न तो इस स्वर्ग में और न ही उस नरक में निवास करता है। वरन् ईश्वर तो स्वयं आपकी आत्मा है। इस विचार का, इस सत्य का साक्षात्कार करने के लिये आप पूर्णरूपेण स्वतंत्र है।

आप क्यों भय या आशंकाओं के कारण अपनी बुद्धि को निराशा के गर्त में ढकेलते हैं और आप किसलिये सविनय प्रार्थनाओं या विनतियों में अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं? आप अपनी आन्तरिक आत्मा का प्रतिनिधित्व कीजिए, सत्य को मत कुचलिये, निर्भयपूर्वक तथा साहसपूर्वक आइये और अपनी सबसे ऊँची आवाज में निडर होकर, उद्घोष कीजिए- ''अहम् ब्रह्मोस्मि; अहम् ब्रह्मोस्मि, मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ।" यह आपका जन्म सिद्ध अधिकार है।

साधारण मनुष्यों की मानसिक स्थिति सामान्यतः वैसी ही होती है जैसी मूसा की उस समय थी, जब उन्होंने सांप की फुफकार सुनी थी और भयभीत हो गये थे। उस समय मूसा गुलामी की स्थिति में रहते थे और जब उन्होंने सर्प को देखा तभी डर के मारे कांपने लगे थे। इसी प्रकार, जब लोग ''मैं हूँ'' की ध्वनि, 'अहम् ब्रह्मोस्मि' का विशुद्ध ज्ञान, 'ॐ' का शुद्धतम सत्य सुनते हैं तो उनकी मूसा जैसी स्थिति हो जाती है। जब लोग '' मैं हूँ'' के सत्य का उद्घोष सुनते हैं तो वे कांपते हैं, हिचकिचाते हैं और उनमें सत्य को स्वीकार करने, सत्य को ग्रहण करने की साहस नहीं होता है। निम्नलिखित शब्दों के

वाक्यांश लोगों के लिये फुफकार करते हुये सर्प की तरह हैं- "आप स्वयं दिव्यात्मा हैं, आप ही सर्वोच्च सत्ता हैं, आप वह परम शक्ति हैं जिसकी व्याख्या शब्दों द्वारा नहीं हो सकती है, आप न तो कोई शरीर और न ही कोई मन हैं, आप तो विशुद्ध "मैं हूँ" ही हैं, आप ही 'ब्रह्मोस्मि' हैं।"

कृपया आप स्फटिक के पास रखे पीले, लाल या काले कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों को दूर फेंक दें और अपनी वास्तविकता में जाग्रत हों तथा इस सत्य की अनुभूति करें कि "मैं वह (ईश्वर) हूँ", मैं ही सर्वस्व हूँ ।" लोग इस सत्य से भयभीत हो जाते हैं। वे सर्प के डर से कांपते हैं। ओह! सर्प को जोर से पकड़िये और फिर अचम्भों का अचम्भा देखिये। यह सर्प आपके हाथ में आकर परम सत्ता का राजदण्ड बन जायेगा। विचित्रतम सर्प है यह। जब आप भूखे होंगे तभी फुफकार मारता हुआ वह सर्प आपको भोजन करायेगा, जब आप प्यासे होंगे तभी यह सर्प आपकी प्यास बुझायेगा, जब आपका मार्ग कठिनाइयों, दुखों तथा दारूण्यता से अवरुद्ध होगा तभी यह सर्प सब बाधाओं को नष्ट कर देगा।

एक बार हजरत मूसा जंगलों में घूम रहे थे, उस समय उन्होंने अपने दंड-अपने डंडे- से एक चट्टान को छू दिया और बस, उससे कलकल ध्वनि करती हुई निर्मल जल-धारा, चमकता जल-प्रपात निर्झर होने लगा। जब इजरायली लोग अपनी सुरक्षा के लिये भाग रहे थे, तभी उन्हें लाल सागर पार करना था। इन इजरायली लोगों के सामने लाल सागर इस प्रकार खड़ा था, मानों वह उन्हीं को लीलने के लिये खुदी हुई और फैली हुई लम्बी कब्रगाह हो। हजरत मूसा ने अपने इसी

दंड, 'डंडे' से लाल सागर को छुआ और समुद्र का पानी दो भागों में तुरन्त फट गया, सामने सूखी जमीन निकल आयी और इजरायली लोग उस पर चलकर पार हो गये।

फुफकार मारता हुआ यह प्रत्यक्ष सर्प, यह सत्य बड़ा भयावना प्रतीत होता है। परन्तु आवश्यकता केवल यही है कि उस सर्प को पकड़ने का साहस करें और उसे जोरों से पकड़ें। तब आपके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा, क्योंकि तब आप देखेंगे कि आप ब्रह्माण्ड के सम्राट बन गये, सभी तत्वों के स्वामी बन गये, चांद-सितारों के प्रशासक बन गये, सभी आकाशों के नियामक बन गये। आप देखेंगे कि आप सर्वस्व बन गये। लोगों को इस सत्य को व्यवहार में लाने में और इस दिव्य सिद्धान्त का आलिंगन करने में लज्जा का अनुभव होता है। उठिये, आइये और किंचित भी झिझकिये नहीं। इस सत्य को निर्भय होकर कस कर पकड़िये। इस सत्य को आप अपने सीने से लगाइये और स्वयं सत्य का रूप बन जाइये। इस सत्य का साक्षात्कार कीजिये और यह सत्य आपको स्वतंत्र कर देगा।

इस सत्य का प्रतिवाद करना, इसे न कहना कि "मैं ईश्वर हूँ, अहम् ब्रह्मोस्मि" एक भयंकर पाप है। "आत्मा" की चोरी करना सबसे बड़ी चोरी है। यह कहना कि "मैं एक पुरूष हूँ या एक स्त्री हूँ अथवा मैं दीन-हीन, तुच्छ, नराधम प्राणी हूँ" सबसे बड़ा झूठ है, नास्तिकता है। कृपया कृपण व्यक्ति का अभिनय नहीं कीजिये। कृपण व्यक्ति अपने घर में महान कोष रखे हुए है। परन्तु वह अपने इस

अपार कोष से एक भी पैसा व्यय नहीं करना चाहता है। आपने अपने अन्तस्थल में सम्पूर्ण विश्व को प्रतिष्ठित कर रखा है, सकल ब्रह्माण्ड आपका अपना है। तब आप उसे क्यों छिपाते हैं? आप उसका उपयोग क्यों नहीं करते हैं? इसे व्यवहार में लायें और आप अपनी 'आत्मा' के अमृत का भरपूर रसपान करें। आप अपनी स्वयं की नैसर्गिक अन्तर्निहित राजसत्ता को क्यों नहीं प्राप्त करते हैं?

भारत में लोगों की ऐसी मान्यता है कि सकल सत्य का यह साक्षात्कार मानों विस्मृत या भूले हुये अमूल्य हार की पुनर्प्राप्ति की तरह है। एक मनुष्य अपने गले में हीरों का सर्वाधिक मूल्यवान तथा लम्बा हार पहने हुये था। किसी तरह यह हार उसकी पीठ पर खिसक गया और उसे इस बात की, अपने हीरों के हार की सुध न रही, वह हार को भूल गया। यह देखकर कि यह हार उसके वक्षस्थल पर नहीं लटक रहा है, उसने उस हार की खोज प्रारम्भ की। उसकी यह पूरी खोज-बीन बेकार सिद्ध हुई। तब उसने अपने अमूल्य हार के खो जाने पर आंसू बहाना और रोना-धोना शुरू किया। उसने सभी से आग्रह किया कि कोई व्यक्ति उसके हार को खोज निकाले। एक व्यक्ति आया और उससे बोला- " भाई, यदि मैं तुम्हारे लिये तुम्हारा हार खोज निकाल दूं तो आप मुझे क्या दोगे?" इस व्यक्ति ने कहा-" जो भी आप मांगेगें, वही मैं आपको दूंगा, पर हार खोज दीजिये।" इस व्यक्ति ने अपने मित्र की गर्दन पर अपना हाथ बढ़ाया और वहां पड़े हुये हार को छूकर कहा- " यह रहा आपका हार।" यह खो नहीं गया था, वह तो अभी भी आपकी गर्दन में पड़ा हुआ था, लेकिन आप उसे भूल गये थे, आपको याद नहीं

रहा।" यह कितना बड़ा, कितना सुखद आश्चर्य था। इसी प्रकार आपका ईश्वरत्व आपके बाहर नहीं है, आप पहले से ही स्वयं ईश्वर हैं, आप 'तत्वमसि' हैं। यह तो आपका विचित्र भुलक्कड़पन है, विस्मृति की स्थिति है कि आप अपनी वास्तविक आत्मा, अपने सच्चे ईश्वरत्व को ही भूल बैठे हैं। इस अज्ञान को दूर कीजिये, इस अन्धकार का विनाश कर दीजिये, इसे परे दूर फेंक दीजिये और फिर तो आप स्वयं मूर्तिमान, परिपूर्ण ईश्वर ही हो गये। आप अपने स्वभाव से स्वतंत्र हैं, आप अपनी दासता की स्थिति में स्वयं को भुला बैठे हैं।

एक राजा था। वह सो गया और स्वप्न में उसने देखा कि वह एक भिखारी बन गया। यह हो सकता है कि कोई स्वप्न में भिखारी बन जाए, पर इससे क्या होता है, इससे उसकी वास्तविक प्रभुसत्ता में, उसके स्वामित्व में कहीं कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

हे सम्राटों के सम्राट! समस्त शरीरों में मेरी प्यारी आत्मा! हे परम् परिपूर्ण सम्राट! हे समस्त आशीष, कल्याणकारी बचनों के सार-तत्व! ओ परम प्रिय मेरी निजात्मा! कृपया अज्ञान के अपने स्वप्न में आप अपने आपको दासानुदास नहीं बनायें! उठिये, जाग्रत होइये और अपनी सर्वोच्च राजसत्ता में शासन कीजिये। आप ईश्वर हैं; आप ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सकते। आप अपनी पूरी अन्तर्निहित शक्ति के साथ, सभी प्रकार की हिचकिचाहट, कमजोरी और दुर्बलता को परे फेंककर, विशुद्ध, निर्मल "मैं हूँ" अर्थात् आत्मा के महासागर में सीधे कूद जाइये। "आप ईश्वर हैं", "वह (ईश्वर) और मैं एक

हैं"। कितना अनुपम विचार, कितनी अद्वितीय, कल्याणकारी भावना! इससे तो सारे दुख संकट हर लिये गये, सारे बोझों को उतार फेंक दिया गया। आप अपने बाह्य में मत विचरण कीजिये। आप अपने केन्द्र-बिन्दु में ही प्रतिष्ठित रहें। आर्किमिडीज निश्चित केन्द्र-बिन्दु का पता नहीं लगा सका। निश्चित केन्द्र-बिन्दु तो आपके अन्तस्थल में विद्यमान है। आप स्वयं अपनी आत्मा हैं। इस सत्य को पकड़िये, इसको धारण कीजिये और फिर देखिये, आप सकल ब्रह्माण्ड को संचालित कर रहे हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

कुछ प्रश्नोत्तर: वेदान्त-जिज्ञासुओं के लिये

भद्र पुरूषों तथा सम्मानित सज्जनों
के रूप में मेरी जिन आत्मा !

प्रश्नः स्वामीजी! क्या आप स्पष्ट करेंगे कि 'ॐ' को समझे बूझे बिना, 'ॐ' का केवल उच्चारण करने से कोई विशेष लाभ हो सकता है?

उत्तर : हिमालय के जंगलों में रहने वाले साधु-सन्यासी 'ॐ' का उच्चारण करते हैं या इसी प्रकार का गायन करते हैं और संगीत-वाद्यों से उसे बजाते हैं। अनेक बार तो वनों के सांप, हिरन तथा अन्य जंगली जानवर अपने- अपने घरों से निकल आते हैं और इन्हीं साधु-सन्यासी लोगों के पास बैठ जाते हैं। अब देखिये, ये जंगली जानवर संगीत के नियमों के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं, 'ॐ' के उच्चारण की महिमा से अनभिज्ञ हैं, फिर भी उन पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि 'ॐ' की केवल ध्वनि से सर्पों तथा हिरनों और अन्य जानवरों पर इतना अद्भुत प्रभाव पड़ सकता है तो क्या अबाध रूप से 'ॐ' की ध्वनि के गायन से आपके जीवन पर उचित समय पर अनुकूल तथा अनुपम प्रभाव नहीं होगा?

(स्वामी राम द्वारा २६ दिसम्बर, १६०२ को 'हरमैटिक ब्रादरहुड हाल', सनफ्रांसिसको में दिए गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

संगीत के प्रत्येक गीत के तीन चरण या तीन पक्ष होते हैं। प्रथम है- गीत का अर्थ, दूसरा है- गीत के नियम और तीसरा है- गीत की भाषा या ध्वनि। यदि आप गीत के तीनों पक्षों से भलीभांति अवगत हैं तो आप अद्‌भुत, अनुपम तरीके से गीत का आनन्द उठाते हैं। परन्तु यदि आप गीत के संगीत के किसी भी पक्ष से भी परिचित हैं तो भी आप कुछ सीमा तक उसका आनन्द उठा सकते हैं। सांप और हिरन को लीजिये। वे तो केवल संगीत की लहरी ही सुनते हैं, उन्हें संगीत के गीत के अर्थ से कुछ भी लेना देना नहीं, फिर भी वे उस संगीत-लहरी का आनन्द उठाते हैं। कुछ लोग इस बात से आनन्दित होते हैं कि संगीत के कलाकारों ने जो नियम बनाये हैं, उनका कितने सुन्दर ढंग से अनुपालन हुआ है, इन लोगों के लिये संगीत के उस गीत के अर्थ का कोई मन्तव्य नहीं होता है। कुछ लोग तो गीत के अर्थ से आनन्द विभोर हो जाते है, उन्हें संगीत के नियमों की जानकारी नहीं होती है।

इसी प्रकार 'ॐ'- ओ३म के भी तीन पक्ष हैं। पहला है- 'ॐ' की केवल ध्वनि, मुख द्वारा उच्चारित 'ॐ' मंत्र की ध्वनि, दूसरा है-'ॐ' मंत्र का अर्थ, जिसका भावना द्वारा साक्षात्कार होता है, तीसरा है-'ॐ' का अपने चरित्र में व्यवहृत करना, 'ॐ' से अपने कार्यों को और अपने जीवन को अभिभूत करना। जो भी व्यक्ति इन तीनों पक्षों में 'ॐ' का गायन करता है, अर्थात् ओठों से 'ॐ' गाता है, 'ॐ' का सम्पूर्ण हृदय से अनुभव करता है और अपने कर्मों के माध्यम से 'ॐ' को गाता है, वह वास्तव में अपने जीवन को निरन्तर संगीतमय और लयबद्ध बना लेता है। हर एक के लिये ऐसा व्यक्ति ईश्वर होता है। परन्तु यदि

आप 'ॐ' को भावनापूर्वक नहीं गा सकते हैं अथवा अपने कर्मो द्वारा 'ॐ' को प्रतिध्वनित नहीं कर सकते हैं तो कृपया 'ॐ' को मत छोड़िये; केवल ओठों द्वारा 'ॐ' को गाते रहिये। यह भी निरर्थक नहीं है, इसका भी लाभ है। यदि आप 'ॐ' को केवल भावनापूर्वक ही गा सकते हैं और अपने कर्मों तथा वाणी के अवयवों से 'ॐ' को नहीं गा सकते हैं तो भी आपको कुछ सीमा तक अवश्य ही लाभ पहुंचेगा। यदि आप केवल कर्मों द्वारा ही 'ॐ' का गायन करते हैं और भावना और वाणी से 'ॐ' का गायन नहीं कर पाते हैं तो यह भी श्रेयस्कर एवं सुन्दर है। यदि आप 'ॐ' का उच्चारण, 'ॐ' का गायन केवल मुख द्वारा, वाणी द्वारा करना प्रारम्भ करें तो स्वाभाविक रूप से 'ॐ' की अभिव्यक्ति आपकी भावनाओं तथा कर्मों द्वारा कालान्तर में अवश्यमेव होगी।

कुछ ऐसी स्वादिष्ट चीजें होती हैं जिनका केवल नाम लेने से ही मुंह मे पानी भर आता है, जैसे सन्तरा, नारंगी, नींबू आदि। जब इन चीजों के केवल नाम लेने से इतना अधिक प्रभाव पड़ता है तो उनके रसास्वादन से पूरा का पूरा आनन्द स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'ॐ' की केवल ध्वनि या 'ॐ' के गायन मात्र से कुछ न कुछ प्रभाव होता है। इसलिए यदि आप 'ॐ' को अंगीकार करें तो उसका प्रभाव पूर्ण ही होगा। हो सकता है, प्रारम्भ में आप 'ॐ' के उच्चारण के प्रभाव को अनुभव न कर सकें परन्तु अन्ततः प्रभाव अवश्य होगा। कृपया इस बारे में पूर्ण आश्वस्त रहें।

जल-स्थित विज्ञान हमें बतलाता है कि यदि हम पानी की किसी

टंकी की पेंदी (तह) में कोई डाट लगायें और टंकी में पानी उड़ेलते जांय तो जैसे-जैसे हम उसमें पानी की अधिकता बढ़ाते जायेंगे वैसे-वैसे पेंदी (तह) में पानी का दबाव बढ़ता जायगा। हम जल-स्थिति विज्ञान के नियमों से यह गणना कर सकते हैं कि इस टंकी में और कितना अधिक पानी उड़ेला जाय जिससे पानी का दबाब इतना बढ़ सके जिसके फलस्वरूप पेंदी में लगी डाट अपने आप बाहर निकल जायगी और पेंदी (तह) से पानी बाहर बहने लगेगा। इसी प्रकार, यदि आप अपने शरीर की टंकी में 'ॐ' को निरन्तर उड़ेलते जांय तो आप में 'ॐ' का जो दबाव बढ़ेगा वह दबाव 'ॐ' के अबाध उच्चारण से अपना प्रभाव निरन्तर उत्पन्न करता रहेगा। पर जन-साधारण के लिये उस प्रभाव की अभिव्यक्ति की व्याख्या करना एक बात है और उस प्रभाव को पैदा करना, या उसमें वृद्धि करना दूसरी बात है। फिर भी एक समय ऐसा अवश्य आयेगा कि आप देखेंगे कि 'ॐ' के निरन्तर उच्चारण से टंकी की तह में लगी डाट दबाव बढ़ने के कारण अपने आप बाहर निकल गयी है और फलस्वरूप 'ॐ' से प्लावित जल स्वतः ही अपने आपसे फूट निकलने लगा है। कुछ समय के लिये यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होने लगेगा, पर प्रभाव तो प्रभाव है ही।

यह प्रभाव कुछ इस प्रकार का है: एक नवविवाहित युवती थी, वह सीधी-सादी थी, सरलता का प्रतीक थी, वह मां बनने के अनुभवों से पूर्णतः अनभिज्ञ थी। जब वह पहली बार गर्भवती हुई तो पहले महीने की गर्भावस्था में उसने अपने शरीर और स्वभाव में कुछ अन्तर अनुभव किया। उसने बड़ी सरलता से कल्पना की कि पहले महीने

में उसे जो अन्तर देखने को मिला वह अब आने वाले महीनों में नहीं होगा, स्थिति यथावत बनी रहेगी। भारत में नवविवाहित बहुयें अपनी सास के घर में रहती हैं और वह सास ही होती है जो अपनी बहू की देखभाल करती है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वही अपनी बहू के बच्चों की देखभाल भी करती है। एक दिन इस गर्भवती बहू ने अपनी सास से गम्भीर होकर कहा-"माताजी, जब मेरे बच्चा पैदा होने को हो, उस समय कृपया मुझे जगा दीजिये। कहीं ऐसा न हो कि मैं सोती रहूं और शिशु पैदा हो जाय और मुझे इसकी जानकारी ही न हो।" सास ने मुस्काराकर बहू को समझाया "बहूरानी, जब बच्चा जनने का समय आयेगा, तब तुम्हें जगाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। तुम्हारी तो उस समय वह स्थिति होगी कि तुम दर्द की अपनी चीखों तथा चिल्लाहटों से सभी पड़ोसियों को स्वयं ही जगा दोगी।" गर्भ-धारण की अवस्था में महिला के शरीर तथा स्वभाव में अनोखा परिवर्तन होता रहता है और अन्ततः इसका प्रभाव भी प्रकट होता है। यह दूसरी बात है कि इस भोली-भाली बहू को मां बनने के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं थी। परन्तु जब उपयुक्त समय आयेगा, प्रभाव अपने आप प्रकट होगा और शिशु का जन्म हो जायेगा। इसी प्रकार, 'ॐ' के इस मंत्र का उच्चारण करते जाइये, इसका भोजन करते जाइये, 'ॐ' से अपने आपको परिपुष्ट बनाते जाइये, इस पवित्र मंत्र के पौष्टिक दुग्ध का भरपूर पान करते जाइये और फिर देखिये, उपयुक्त समय आने पर इसका प्रभाव अपने आप प्रकट होने लगेगा। आपको अधीर होने की आवश्यकता नहीं है।

राम एक घटना सुनाता है। जब राम बालक था तो उसने तथा उसके अनेक साथी-संगी, मित्रों ने जौ या धान के कुछ बीज इकट्ठे किये; फिर अपने घर के आंगन की कुछ जमीन गोड़ दी। तदुपरान्त हम लोगों ने उस जमीन में बीजों को बो दिया, साथ ही उनमें पानी भी दे दिया और उन बीजों को मिट्टी से ढक दिया। हम सब साथी अपने इस कार्य में इतने संलग्न थे कि हम लोग अपना-अपना भोजन करना ही भूल गये। हम यह देखने के लिये अधीर थे कि इन बीजों से कौन सा और कितना अनाज निकलता है। हम यह देखने के लिये बेचैन थे कि जिस जगह हम लोगों ने कुछ मिनट पूर्व जौ और धान के अनाज के बीच बोये थे, उस स्थान से आखिरकार किस प्रकार पौधा निकलता है। हम लोग एक क्षण के लिये भी उस स्थल को छोड़ नहीं सकते थे, क्योंकि हमें डर था कि यदि हम चले गये तो कहीं ऐसा न हो कि हमारी अनुपस्थिति में वहां बीज अंकुरित हो जांय। हम सभी चिन्तित थे। इसलिये बीज बोने के लगभग एक घंटे तक हम उस जगह का अत्यन्त बारीकी से निरीक्षण करते रहे कि कहीं बीज अंकुरित तो नहीं हो रहे हैं, पर हम कुछ भी पता नहीं लगा सके। हम लोग अत्यन्त निराश थे और फिर हमने यह देखने के लिये कहीं कुछ हुआ तो नहीं, जमीन को थोड़ा सा कुरेदा पर कुछ भी परिवर्तन नहीं देख सके, हमने जमीन को कुछ और नीचे तक हटाया, लेकिन अंकुर फूटने का कोई-नामो. निशान नहीं देखा। हमने जमीन को और अधिक गहराई तक हटाया और वहां देखा कि बीज तो ज्यों के त्यों पड़े हैं, उनमें कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं। कृपया आप उन बालकों की तरह न बनिये जो अधीर और व्याकुल हैं और जो बीज बोने के चौथाई घंटे से कम समय में ही उन बीजों के फल के पाने के लिये उत्सुक हैं।

आप बीज बोइये, परन्तु याद रखिये, आप अल्प समय में उसकी फसल को नहीं काट सकते हैं। इसके लिये कम से कम आवश्यक समय तो देना ही चाहिये, तदुपरान्त निश्चयात्मक रूप से फसल उगेगी और आप उसे काट सकेंगे। इस बारे में पूर्ण आश्वस्त रहें।

मानसिक चिकित्सक

प्रश्न : हमको ऐसा बताया गया है कि मानसिक चिकित्सक या मानसिक रोगों के उपचारक स्वयं ही अपने लिये ऐसा कारण पैदा कर रहे हैं, ऐसे कारण स्वयं बना रहे हैं, जिनका परिणाम यह होगा कि उन्हें अपने आगामी जन्मों में इसका प्रतिफल भुगतने के लिये भयंकर रोगों से ग्रसित होना पड़ेगा। क्या यह सत्य है?

उत्तर : नहीं, ऐसा नहीं है। मानसिक चिकित्सक ऐसा कुछ नहीं कर रहे हैं, जिसकी परिणति आगामी जन्मों में भयंकर रोगों के भुगतने में अवश्यमेव हो। मानसिक रोगों के उपचार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका परिणाम अपने आप भयंकर रोगों के रूप में उभरे। लोग तो सभी प्रकार के सांसारिक कार्य कर रहे हैं। क्या इन कार्यों का नतीजा यह होगा कि उन्हें भयंकर रोग भुगतना पड़े? कदापि नहीं। साधारण बैद्यों की भांति मानसिक रोगों के चिकित्सक भी उपचार करने का कार्य कर रहे हैं। यदि सामान्य डाक्टरों के लिये उपचार सम्बन्धी कार्यों से आगामी जन्मों में भयंकर रोग पैदा हो सकते हैं तो मानसिक रोगों के चिकित्सकों के उपचार सम्बन्धी कार्यों से इसी प्रकार के

परिणाम निकल सकते हैं। यदि डाक्टर आगामी जन्मों में भंयकर रोग पैदा करने वाले कर्म अपने ऊपर नहीं थोपते तो मानसिक चिकित्सक भी नहीं थोपते हैं।

राम से एक बार पूछा गया था कि वह मानसिक रोगों का उपचार क्यों नहीं करता है? उत्तर था कि राम की निगाह में, राम के मन में, शारीरिक जीवन इतना महत्वपूर्ण नहीं है जिस पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता हो। ईसा मसीह ने रोगों के उपचार करने सम्बन्धी अपनी शक्तियों को अपना कोई व्यवसाय नहीं बनाया था। जब उन्होंने किसी को निरोग किया और जब कोई उनके उपचार द्वारा अपने रोगों से मुक्त हुआ तो ईसा मसीह ने यही कहा-"वह मैं नहीं हूँ जिसने तुम्हें निरोग बनाया, वरन् वह तो ईश्वर में तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी आस्था ही थी जिसके कारण तुम रोग-मुक्त हुये।" यदि राम इस प्रकार का कार्य करे तो क्या परिणाम होगा? हर एक आदमी राम के पास रोजी-रोटी के लिये आयेगा। कोई राम के पास आयेगा और कहेगा-"मेरे पुत्र को निरोग कर दीजिये।" दूसरे लोग आकर कहेंगे- "मैं समाज में अपने लिये उच्च स्थान की पुनर्स्थापना करना चाहता हूँ।" इससे तो व्यावसायिक प्रवृत्ति और वाणिज्यिक दृष्टि ही पनपेगी। मानसिक रोगों के उपचार को एक व्यवसाय के रूप में स्वीकार करने से, हम वास्तविक स्वतंत्रता का साक्षात्कार करने से बहुत दूर हो जाते हैं।

आत्मा की अभिव्यंजना

प्रश्न : जब आत्मा भौतिक शरीर में अवरूद्ध हो तो क्या उस समय आत्मा अपनी अभिव्यंजना कर सकती है?

उत्तर : यहां 'आत्मा' शब्द की थोड़ी बहुत व्याख्या करना अपेक्षित है। आप कृपया पानी भरा बर्तन लें, जिसके पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो।

अब आप इस बर्तन के पानी को दूसरे बर्तन में उड़ेल दें। तब आप देखेंगे कि इस दूसरे बर्तन के पानी में सूर्य उसी रूप में प्रतिबिम्बित हो रहा है जिस प्रकार वह पहले बर्तन के पानी में। दूसरे बर्तन के पानी को आप पुनः तीसरे बर्तन में पलटें, इस तीसरे बर्तन के पानी में भी सूर्य का प्रतिबिम्ब उसी प्रकार का होगा जैसा अन्य दो बर्तनों के पानी में। इसी प्रकार, आपके वाह्य शरीर, आपके स्थूल शरीर की तुलना मिट्टी के घड़े से की जा सकती है। मिट्टी के घड़े में भरे पानी की तुलना आपके सूक्ष्म शरीर से अत्यन्त सटीक ढंग से की जा सकती है। आपका सूक्ष्म शरीर, मुख्यतः आपकी इच्छाओं, आपकी भावनाओं और आपके मन से बना है। मृत्यु के उपरान्त आपका सूक्ष्म शरीर, आपके वर्तमान स्थूल शरीर के घड़े से दूसरे स्थूल शरीर के घड़े में स्थानान्तरण हो जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूक्ष्म शरीर का स्थानान्तरण आत्मा का स्थानान्तरण है। परन्तु वेदान्त के अनुसार ऐसा कुछ नहीं है। वेदान्त के अनुसार वास्तविक आत्मा या दैदीप्यमान आत्मा, सूर्य की भांति है जो पहले घड़े के सूक्ष्म शरीर में उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होती है जैसी अब दूसरे घड़े के सूक्ष्म शरीर में। वास्तविकता यही है कि सच्ची आत्मा, अनादि आत्मा सभी परिस्थितियों और भावनाओं में पूरी तरह अपनी अभिव्यंजना कर रही है। सच्ची, तेजोमय आत्मा में किसी प्रकार का परिवर्तन असम्भव है। आत्मा तो सतत पूर्ण है।

पर यदि आत्मा से आपका तात्पर्य उस सूक्ष्म शरीर से है जो स्थानान्तरित होती रही है, तब आपको वास्तविक, अनादि, अव्यक्त, अपरिवर्तनशील शाश्वत बनने के लिये अनेकानेक जन्मों, जीव या योनियों में प्रवेश करना पड़ेगा। उसके बाद कहीं जाकर आपके पुनर्जन्म का अन्त होगा। यदि आप इस जीवन में अपनी मुक्ति पाने के लिये सच्ची तरह उत्सुक हैं और समर्पित हैं तो आप इसी जन्म में पूर्ण मुक्ति का साक्षात्कार कर सकते हैं और आपको फिर कोई पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा।

मृत्यु क्या है? मृत्यु का अर्थ है- भौतिक शरीर के स्थूल घड़े का फूटना। कहा जा सकता है कि जब मृत्यु होती है तो एक स्थूल शरीर या घड़े का पानी दूसरे शरीर या घड़े में परिवर्तित कर दिया जाता है। सूक्ष्म शरीर का पुनर्जन्म हुआ और उसे नया स्थूल शरीर प्राप्त हुआ। इस नये घड़े या शरीर में सच्ची आत्मा-ईश्वर ठीक उसी रूप में प्रतिबिम्बत होती है जिस प्रकार वह पहले घड़े या शरीर में। इस दूसरे शरीर का घड़ा, इस बार हो सकता है, तीन या चार या पांच दशकों या इससे कम या अधिक अवधि तक जीवित रहे और फिर फूट जाय। अब इस दूसरे शरीर का द्रव्य पदार्थ, अर्थात् सूक्ष्म शरीर का तीसरे शरीर या तीसरे घड़े में हस्तान्तरण हो जाता है। यही पुनर्जन्म है। वास्तविक आत्मा तो सूर्य के सदृश्य है जो सूक्ष्म शरीर में उसी तरह प्रतिबिम्बित होती है जिस प्रकार स्थूल शरीर के विभिन्न घड़ों में। क्योंकि वास्तविक आत्मा सभी प्रकार के पुनर्जन्मों से परे है। पुनर्जन्म का तो केवल सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है, सूर्य या वास्तविक आत्मा का पुनर्जन्म से कोई प्रयोजन नहीं है। अब इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करना उपयुक्त होगा।

आप जानते हैं कि सूर्य हर समय पूर्ण रूप से चमकता रहता है। परन्तु सूर्य का प्रतिबिम्ब पानी में सदैव एक सदृश्य पूर्ण या अविच्छिन्न नहीं रहता है। जब पानी ठोस स्थित में होता है, तब सूर्य, बर्फ या हिमखण्डों के टुकडों पर नहीं चमकता है और, इसलिये वहां उसका प्रतिबिम्ब भी नहीं बनता है। इसी प्रकार जब पानी वाष्प रूप में बदल जाता है तो उस स्थिति में भी हम सूर्य की प्रतिमा को नहीं देख पाते है। जल की तीन स्थितियां होती है- ठोस, द्रव्य और वाष्प की। जब यह ठोस स्थिति हिमशिलाओं के रूप में होती है, उस दशा में सूर्य की प्रतिमा का प्रतिबिम्ब नहीं दिखायी देता है। परन्तु जब जल की द्रव्य अवस्था होती है, तभी सूर्य का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। जब यही जल वाष्प की स्थिति में हो जाता है, उस दशा में भी हम सूर्य की प्रतिमा का कोई प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते हैं। जिस स्थिति में जल का परिवर्तन होता है उसी परिवर्तन के अनुरूप सूर्य की प्रतिमा और प्रतिबिम्ब बनते बिगड़ते रहते हैं। ये मिट्टी के घड़े या स्थूल शरीर, वनस्पति रूप, पशुरूप और मानव रूप में प्रकट होते हैं।

एक समय ऐसा भी होता है। जब सूक्ष्म शरीर, ठोस स्थिति की तरह अत्यन्त स्थूल प्रकृति का होता है। ऐसी स्थिति में सूर्य का प्रतिबिम्ब बिल्कुल भी नहीं पड़ता है, परन्तु यथार्थ यही है कि सूर्य इस अत्यन्त स्थूल स्थिति पर ठीक उसी भाव से चमकता रहता है, जिस प्रकार अन्य स्थितियों में। पेड़-पौधे और निम्न कोटि के पशु-पक्षी अपना विकास करते हैं और आगे बढ़ते हैं, फिर भी उनमें "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार नहीं होता है। दूसरे शब्दों में उनमें "कृतत्व-भाव"

की किंचित झलक नहीं मिलती है। उनमें वास्तविक आत्मा की प्रतिमा का कहीं अता-पता नहीं रहता है। जैसा प्रकृति का सम्पूर्ण परिवेश है, इसमें सभी प्रकार की प्रगति एवं विकास, सूर्य के माध्यम द्वारा ही सम्पन्न होता है। परन्तु इसमें सूर्य की प्रतिछाया नहीं पड़ती है। ठीक जिस प्रकार सूर्य हिमालय की चोटियों और शिखरों पर हिमखण्डों का निर्माण करता है और उनको पिघलाता भी है परन्तु उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं बनता है, उसी प्रकार की स्थिति वनस्पति और पशु-जगत की है। यह सूर्य ही है, यह आत्मा ही है, जिसके माध्यम और साधन से वनस्पति जगत और निम्न कोटि के पशु-जगत का विकास हो रहा है और उनका उत्थान हो रहा है, उनको आगे बढ़ाया जा रहा है तथा उनका विकास किया जा रहा है। परन्तु सूर्य या आत्मा के वास्तविक माध्यम और शक्ति का उनके तुच्छ शरीर के साथ कोई विनयोग नहीं होता है। इनमें स्वर्ग से अग्नि चुराने जैसे 'प्रोमीथियस' के कृत्यों को करने की क्षमता का अभाव रहता है। यूनानी पुराणों की एक कथा के अनुसार 'प्रोमीथियस' ने मानव की भलाई के लिये स्वर्ग से अग्नि चुराई थी और 'जीयस' के अत्याचारों से मानव को बचाया था। इस प्रकार के कृत्य वनस्पति और निम्न कोटि का पशु-जगत नहीं कर पाता है और न ही इन संसारों में "मैं यह करता हूँ" का श्रेय, आत्म- श्लाघा, आत्म-प्रशंसा का भाव ही रहता है।

सूक्ष्म शरीर का द्रव्य पदार्थ निम्न कोटि के घड़ों से धीरे-धीरे गुजरता हुआ जब मनुष्य जगत के सुन्दर घड़े में प्रवेश करता है तो इस घड़े का जल न केवल द्रव्य स्थिति में होता है, वरन् पारदर्शी भी।

इस जल में सर्वोत्कृष्ट माध्यम, सूर्य अर्थात् आत्मा की अलौकिक छवि प्रतिबिम्बित होती है। जैसा पूर्ववर्ती वनस्पति और पशु-जगत में था वही सूर्य, केवल वही आत्मा ही, वास्तविक सत्ता थी। परन्तु मनुष्य-जगत के सूक्ष्म शरीर में वास्तविक आत्मा की प्रतिमा या प्रतिबिम्ब, मानव में अहंकार या उत्तरदायित्वपूर्ण कृतत्व-भाव के रूप में प्रकट होता है। " मैं यह कर रहा हूँ या मैं वह कर रहा हूँ" का विचार वनस्पति तथा निम्न पशु लोकों में बिल्कुल विलुप्त होता है। परन्तु मनुष्य में मिथ्या अहम् के भाव का आविर्भाव हो जाता है। "मैं ही करने वाला हूँ", "मेरे माध्यम द्वारा कृत्य सम्पन्न होते हैं" का जो भाव मनुष्य में है, वह वाह्य, मिथ्या, अहम्, के स्वरूप में सूक्ष्म शरीर के द्रव्य में प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रतिमा के समान है। यह अहंकार, यह वाह्य आत्म-भाव,वास्तव में मिथ्या और अवास्तविक है। वास्तविक माध्यम, वास्तविक कर्ता, ईश्वर ही है जो सब कुछ करता है। ईश्वर ही उत्तरदायित्वपूर्ण स्वामी है। परन्तु इस उत्तरदायित्व को अज्ञान द्वारा विशुद्ध सूक्ष्म शरीर, अनाधिकार पूर्ण चेष्टा से हड़प लेता है और हृदयंगम कर लेता है। वर्तमान के इस भाव को अंगीकार करना ही मिथ्या, भ्रामक, क्षुद्र आत्मा को जन्म देता है। यह मिथ्या विज्ञान-वेत्ता गणितीय विधि से सिद्ध करते हैं कि दर्पण या जल में प्रतिबिम्ब भ्रामक तथा छलावा मात्र है। सूक्ष्म शरीर या द्रव्य के सूर्य के माध्यम से विकास होता है। जब सूर्य,आत्मा या ईश्वर के प्रकाश को तथा ऊर्जा को सूक्ष्म शरीर अधिकाधिक मात्रा में अधिग्रहण तथा आत्मसात करता है तब उस सूक्ष्म शरीर की भौतिक स्थिति भी स्थूलतर बनती है। जब आत्मा, सच्ची अस्ति का प्रकाश और ज्ञान सामान्य व्यक्ति अधिकाधिक रूप में स्वीकार और आत्मसात

करता है तो सूक्ष्म शरीर कालान्तर में वाष्पमय बन जाता है, परन्तु इस वाष्प स्थिति में भी वह सूक्ष्म शरीर यद्यपि स्थूल शरीर के घड़े से किसी न किसी रूप में आबद्ध रहता है फिर भी उसमें सूर्य की प्रतिमा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है। उस स्थिति में ऐसा प्रतीत होता है, मानो, मिथ्या अहंकार या भ्रामक प्रतिबिम्ब पूर्ण सूर्य के साथ तदाकार हो गया हो। यहां यह ध्यातव्य है कि जिस प्रकार वनस्पति और निम्न पशु-जगत में अहंकार की भावना नहीं होती है, उसी प्रकार मानव की वाष्पमय स्थिति में भी, हम देखते हैं कि, उत्तरदायित्व का कोई विचार, "मैं यह कर रहा हूँ" की भावना या "मेरे प्रति कृतज्ञ हो" जैसी बलवती अनुज्ञा के सदृश्य सारी भावनायें, मनोवृत्तियां विलीन हो जाती हैं। इस स्थित में मिथ्या अहम् अर्थात् वास्तविक आत्मा का प्रतिबिम्ब बिल्कुल नहीं दिखायी देता है। सर्वाधिकार के संरक्षण की भावना, व्यापारिक दृष्टिकोण लुप्त हो जाता है, श्रेय-परक, स्वार्थ-परक अहंकार से छुटकारा मिल जाता है।

सामान्यतः वाष्प एक घड़े से दूसरे घड़े में नहीं उड़ेला जा सकता है। ठोस तथा द्रव्य पदार्थों को एक घड़े से दूसरे घड़े में हस्तान्तरित किया जा सकता है। परन्तु जब वाष्प को संगृहीत करने वाला घड़ा ही टूट जाता है तो वाष्प वायु में विलीन हो जाती है। इस प्रकार, सभी हिन्दुओं का लक्ष्य होता है कि वे ऐसी सर्वाधिक विशुद्ध स्थिति को प्राप्त करें जहां से उनको और पुनर्जन्म लेने के लिये बाध्य न होना पड़े। हिन्दू माता की सर्वोत्कृष्ट महत्वाकांक्षा यही होती है कि वह ऐसे शिशु को जन्म दे जो पूर्ण रूपेण स्वतंत्र हो, फिर पुनर्जन्म न हो।

सूक्ष्म शरीर

प्रश्न : क्या मुक्त व्यक्ति की आत्मा मृत्यु के उपरान्त सूक्ष्म शरीर के रूप में बनी रहती है अथवा वह अनन्त में समाहित और लीन हो जाती है?

उत्तर : जब वाष्प को संग्रहीत करने वाले या उसका भंडार करने वाले घड़े (घट) से वाष्प एक बार बाहर निकल जाती है तो वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समाहित और लीन हो जाती है। इसी प्रकार मुक्त व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर विश्व के विराट स्वरूप में मिल जाता है, उसमें व्याप्त हो जाता है।

प्रश्न : सूक्ष्म शरीर किससे बनता है?

उत्तर : सूक्ष्म शरीर वासनाओं, इच्छाओं, मनोवृत्तियों और विचारों से बनता है। मुक्त व्यक्ति की इच्छायें व्यक्तिहीन ही होती हैं, उनमें स्वार्थपरता का लेश मात्र भी चिह्न नहीं होता है। जैसा मुक्त व्यक्ति होता है, वैसे ही उसकी इच्छायें स्वार्थहीन, व्यक्तिहीन, सर्वव्यापक होती हैं, उनका वाष्पाकार होता है। जब इस वाष्प को संग्रहीत करने वाला स्थूल घड़ा टूट जाता है तो यह वाष्प एकीकृत पुंज नहीं रह जाता है वरन् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड द्वारा उसका अधिग्रहण कर लिया जाता है।

फारस के महान सम्राट, साइरस (कैरवुसरू) के बारे में कहा जाता है कि जब तक वह इस संसार में जीवित रहा, वह लोगों की,

जनता की भलाई तथा सेवा के लिये ही जिया। जब वह मरणासन्न

हुआ तो उसने अपनी वसीयत में लिखा- "मेरे शरीर को सुन्दर एवं भव्य मकबरे में नहीं दफनायें, उसके शव को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिया जाय और सम्पूर्ण फारस साम्राज्य में उन टुकड़ों को छितरा दिया जाय जिससे उनकी खाद बन सके।" मुक्त व्यक्ति का अपने सूक्ष्म शरीर के साथ ठीक इसी प्रकार का सम्बन्ध होता है। उसके सूक्ष्म शरीर को सम्पूर्ण विश्व में बांट दिया जाता है या छितरा दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके सूक्ष्म शरीर के उपयोग में भागीदार होता है, उसके शरीर के गोश्त की बोटी-बोटी को काट-काट कर बांट दिया जाता है और उसके रक्त की बूंद-बूंद का सेवन किया जाता है। मुक्त व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर टुकड़ों-टुकड़ों में काट दिया जाता है, जिससे उसके गोश्त का सम्पूर्ण संसार सेवन करे । इस व्यक्ति का अहंकार पूर्णतः शून्य हो जाता है,वह हवा में उड़ जाता है। ऐसा मुक्त पुरुष चाहे वह अपना मुख खोले या न खोले, चाहे वह रचना करे या न करे, चाहे वह जनता के सामने आये या न आये, वह अद्भुत, अद्वतीय ढंग से सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा करता है। वह अनुपम सुधारक है। सभी राजाओं के कोषों से कुछ भी लेने की उसकी इच्छा नहीं होती है। संसार की सभी पुस्तकें और बाइबिल जैसी सभी धार्मिक ग्रन्थ उसे कोई शिक्षा नहीं दे सकते हैं। निरंकुश राजाओं और शासकों की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता, उनके उपकार या अपकार उसके लिये निरर्थक हैं। जब तक मुक्त व्यक्ति जीवित रहता है, उसकी दिव्य उपस्थिति, उसका पवित्र दर्शन केवल शुचिता एवं आनन्द ही बिखेरता है। उसकी मृत्यु से भी संसार में विलक्षण तरीके से सुधार होता है।

कृपया इस तथ्य पर विचार कीजिये। सूर्य की गर्मी पाकर किसी भी स्थान पर वायु हल्की हो जाती है और जैसे-जैसे यह गर्मी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे हवा हल्की से और हल्की होती जाती है। हल्की हवा होने के कारण वह ऊपर उठती जाती है। स्वाभाविक रूप से जब वह हवा ऊपर उठती है तो उसके स्थान पर रिक्तता आ जाती है। वह स्थान हवा से खाली हो जाता है। इसका क्या परिणाम होता है? इस रिक्तता को समाप्त करने, हवा के खालीपन को पूरा करने के लिये चारों ओर से हवा अपने आप दौड़ी चली आती है, जिससे क्षण भर के लिये, रिक्तता का अनुभव नहीं होता है। परन्तु हवा की दौड़ से, हवा की इस गति से, हवा की इस उथल-पुथल से सम्पूर्ण वातावरण में हल-चल पैदा हो जाती है। जो व्यक्ति अपने शरीर के बारे में कभी कुछ नहीं सोचता है, जिसकी कोई इच्छा नहीं होती है, जो व्यक्ति पूर्ण है,उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर, आत्मा के सूर्य में पूरी तरह डूबा रहता है और सत्य, ऊर्जा अथवा प्रकाश में समाहित रहता है। जब ऐसे महापुरूष का पार्थिव शरीर समाप्त होता है, ब्रह्माण्ड में उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

जिस प्रकार हल्की हवा ऊंची उठती जाती है, उसी प्रकार वह महामानव भी इस संसार से ऊपर उठता जाता है। इस प्रकार, उसके अभाव के कारण एक प्रकार की रिक्तता पैदा होती है, क्योंकि अब तो उसका पुनर्जन्म तो होना ही नहीं, इसीलिये उसके अभाव की रिक्तता को पूरा करने के लिये दिव्य विधान के अनुसार जो उसके सबसे निटकस्थ होते हैं, उन्हें स्वतः ही दौड़ते हुये आना पड़ता है और इस प्रकार उनका

उन्नयन हो जाता है। और तदुपरान्त महामानद के निकटस्थ लोगों की रिक्तता की पूर्ति के लिये जो लोग उनके समीपस्थ होते हैं, उन्हें दौड़ते हुये आना पड़ता है और वे इस प्रकार समुन्नत हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से सम्पूर्ण विश्व उन्नति की एक और सीढ़ी पार कर लेता है। इस प्रकार मुक्त व्यक्ति के कारण संसार अपने आप प्रगति के ओर अग्रसर होता है। यह व्यक्ति वास्तव में एक अलौकिक, विचित्र तथा अद्‌भुत सुधारक है। इसे अपना मुख खोलने की आवश्यकता नहीं हैं। उसके द्वारा संसार का तो स्वयं ही उत्थान होता है।

आर्कीमिडीज ने एक बार कहा था- "यदि मैं विश्व के स्थिर बिन्दु का पता लगा सकूं और उसे पा सकूं तो मैं सम्पूर्ण विश्व को हिला दूंगा।" पर उसे संसार को हिलाने के लिये स्थिर और अचल बिन्दु की खोज करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। वेदान्त कहता है कि यह स्थिर बिन्दु आपके अन्तस्थल में विराजमान है। यह स्थिर बिन्दु आत्मा है। इस आत्मा को पकड़िये और तभी आप सम्पूर्ण संसार को चलायमान कर सकेंगे।

मिथ्या अहम् या मिथ्याभिमान के बारे में कुछ शब्द कहना यहां असंगत नहीं होगा। घड़े के द्रव्य पदार्थ में सूर्य का प्रतिबिम्ब देखें। विज्ञान सिद्ध करता है और दृष्टि विज्ञान भी बतलाता है कि यह प्रतिबिम्ब अवास्तविक है, सम्पूर्ण प्रकाश बाहर से आता है और जो प्रतिबिम्ब द्रव्य पदार्थ में देखा जा रहा है वह तो प्रकाश का परावर्तन मात्र है। यह प्रतिबिम्ब, यह प्रतिमा आपका अपना अवास्तविक निष्कर्ष है; इन्द्रियों

का छलावा मात्र है। प्रतिबिम्ब सरीखी कोई भी वस्तु पानी में अथवा पानी के घड़े में नहीं है। यह प्रतिबिम्ब केवल भ्रम है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं, पानी या द्रव्य में जो दृष्टगत प्रतिमा है, वह भी पानी या द्रव्य की गति से प्रभावित होती है, जिस अनुपात में द्रव्य या पानी में हलचल होती है, उसी अनुपात में प्रतिमा या प्रतिबिम्ब में परिवर्तन होता है।

आपके बालों को कौन बढ़ाता है या आपकी नाड़ियों में कौन रक्त का संचार करता है? क्या वह आपका मिथ्या, क्षुद्र, अनाधिकारपूर्ण, लोलुप या प्रतीतात्मक प्रभाव जमाने वाला अहम् है? ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। यह क्षुद्र उत्तरदायित्व पूर्ण अहम् नहीं है जो मस्तिष्क को सोचने की प्रेरणा देता है। इस भ्रमात्मक अहम् को दूर फेंक दीजिये, उससे विरत हो जाइये और अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात्कार कीजिये। आप ब्रह्माण्ड के महेश्वर है, आप प्रकाशों के प्रकाश हैं, आप प्रकाश हैं, आप पवित्रतम हैं।

हम देखते हैं कि जब सुषुप्ति अवस्था होती है, उस अल्पावधि में सूक्ष्म शरीर अस्तित्व विहीन हो जाता है, उसका ठोस, स्थूल स्थिति से सम्बन्ध- विच्छेद हो जाता है, क्योंकि उस स्थिति में सूक्ष्म शरीर नहीं रहता है। परन्तु विचित्रता तो यह है कि इस सुषुप्ति अवस्था में भी रक्त का संचार यथावत चलता रहता है, भोजन की पाचन-क्रिया भी होती रहती है, अन्तर केवल इतना है कि सुषुप्ति अवस्था में "मैं भोजन की पाचन क्रिया का संचालन कर रहा हूं" का विचार नहीं

रहता है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर, स्थूल-स्थिति का परित्याग कर देता है और द्रव्यावस्था में आ जाता है। मानो सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखायी देना प्रारम्भ हो गया हो। आप स्वप्नावस्था में इस प्रकार कहना शुरू कर देते हैं- "मेरी यह इच्छा है, मैं यह करूंगा।" आप में वह स्वार्थी, उत्तरदायित्व पूर्ण लालसा, इच्छालु, अहंकारमय प्रतिमा फिर से प्रकट होने लगती है। यदि स्वप्नावस्था का यह स्वार्थपरक व्यक्तित्व वास्तविक होता तो वह निरन्तर काल तक विद्यमान रहता। सुषुप्ति अवस्था में यह स्वप्नपरक व्यक्तित्व क्यों नहीं काम करता है? वह व्यक्तित्व सुषुप्ति में क्योंकर सदैव नहीं बना रहता है? केवल यही तथ्य कि स्वप्नावस्था का स्वार्थपरक व्यक्तित्व सुषुप्ति अवस्था में नहीं रहता है, सिद्ध करता है कि आपका यह श्रेय-लोलुप अहंकार केवल भ्रम है, मिथ्या है। इसके ऊपर उठिये। आप सूर्यों के सूर्य हैं, परिपूर्ण आनन्द हैं, वास्तविक सत्ता हैं। आप यही हैं, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं।

अधिकांश लोगों की कठिनाई यह है कि वे अपने आपको इस मिथ्या अहम्, इस काल्पनिक प्रतिबिम्ब के रूप में ही स्वीकार करते हैं, वे इस मिथ्याचरण का परित्याग नहीं कर पाते हैं। यही सारे व्यतिक्रमों, सारे झगड़ों की जड़ है।

जल प्रवाहित होता है। उसमें तरगें, लहरें और हिलोरें उठती हैं। परन्तु इन लहरों आदि का मूल कारण सूर्य की क्रिया है। इन लहरों के सृजन में जल में प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रतिमा का किंचित भी हाथ नहीं है। परन्तु जिस सीमा तक लहरों आदि द्वारा जल की सतह अशांत होती है और उस जल में व्यतिक्रम पैदा होता है, उसी सीमा

तक जल में प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रतिमा भी अशांत और बाधित होती है। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी जल के सदृश्य है, वास्तविक आत्मा, वास्तविक सूर्य तो बहुत दूर रहता है, परन्तु उसकी शक्ति, उसके आकर्षण से सूक्ष्म शरीर में तरंगें और लहरें उठतीं हैं और उसमें व्यतिक्रम आता है। इस कारण मिथ्या अहम् अशान्त होता है, उसमें व्यवधान पैदा होता है। परन्तु मिथ्याभिमान यही मानता है कि वही जल की सभी हलचलों का मूल कारण या आदि स्रोत है। साधारण बोल-चाल की भाषा में जल में प्रतिविम्ब का तार्त्पय होता है- मन, बुद्धि, शरीर से तादात्म्य स्थापित करना। यदि आप बीमार हैं, तब आप कहते हैं- "आह! मेरी पीड़ा असह्य है, मैं बेचैन हूँ, मैं बीमार हूँ।" यह आप इसलिये कहते हैं क्योंकि आपने अपने शरीर या मन से तादात्म्य स्थापित कर रखा है।

वेदान्त का उद्घोष है- "इस मिथ्या तादात्म्य का परित्याग कीजिये और आप पूर्ण निश्चिन्त, पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे। शरीर में या मन में यदि थोड़ी-बहुत गड़बड़ी हो भी जाये तब भी आपको विचलित नहीं होना चाहिये। इस मिथ्या अहम् के कारण आपमें असत्य, झूठी भावुकता और मनोभाव पैदा होते हैं, जो आपकी सभी व्यथाओं, सभी कठिनाइयों का कारण हैं। इस मिथ्याभाव से विरत रहिये और सच्चिदानन्द बनिये।"

आत्मा की अभिव्यंजना की पुनर्विवेचना

प्रश्नः जब आत्मा भौतिक, स्थूल शरीर में आबद्ध रहती है, क्या उस स्थिति में आत्मा अपनी पूर्णरूपेण अभिव्यंजना कर सकती है?

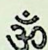
उत्तरः इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य पर निर्भर करता है

कि आप 'आत्मा' शब्द से क्या अर्थ लेते हैं? 'आत्मा' से आपका क्या प्रयोजन है? आत्मा से क्या तात्पर्य है? क्या आत्मा मन है? वर्कले, मिल, हैमिल्टन, रीड जैसे सभी पाश्चात्य दार्शनिक मानते हैं कि 'आत्मा' का मन से तादात्म्य है, मन और 'आत्मा' एकाकार हैं। इस अर्थ में 'आत्मा' का विकास अनिश्चित है।

यदि 'आत्मा' शब्द का मन्तव्य उस परिवेश से है जिसे हम मानव में सत्य की प्रतिमा सत्य के प्रतिबिम्ब की संज्ञा देते हैं तो इस प्रश्न की कोई सार्थकता नहीं है, कोई उपयुक्तता नहीं है।

यदि आत्मा शब्द से 'सच्ची आत्मा' का तात्पर्य है तो उस 'सच्ची आत्मा' में किसी प्रकार के परिवर्तन या प्रगति की कोई गुंजाइश, कोई संभावना नहीं है। अधिकांश लोगों के लिये 'आत्मा' शब्द सामान्यतः कल्पनातीत कल्पना है, नाम मात्र है, इसकी कोई निश्चित सत्ता नहीं है और न ही इसकी कोई महत्ता है! ऐसे लोग 'आत्मा' के बारे में जो भी विचारधारा बनाना चाहते हैं, बना सकते है, पर 'आत्मा' तो केवल 'आत्मा' ही है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!



क्या किसी विशेष समाज की आवश्यकता है?

सम्मानित महिलाओं तथा भद्र पुरूषों
के रूप में विद्यमान मेरे निजात्मन्!

जो सज्जन राम के भाषणों को सुनते रहे हैं वे राम से बहुधा यह प्रश्न पूंछते हैं कि राम द्वारा प्रतिपादित सच्चाइयों का अनुसरण करने के लिये क्या विशेष प्रकार के समाज की संरचना करना सर्वाधिक उपयुक्त नहीं होगा? राम आज इसी प्रश्न का उत्तर देना चाहता है।

राम आपसे स्पष्ट कहता है कि राम का एक उद्देश्य जाति-भेद तथा साम्प्रदायिकतावाद को नष्ट करना है। किसी संगठन या संघ को गठित करने से सत्य के प्रयोजन को बल मिलता है, परन्तु इस प्रकार के समाज या संगठन से कभी-कभी काम होने की अपेक्षा हानि अधिक हो जाती है।

यदि आपको किसी संगठन या समाज का निर्माण करना है तो उसे अन्य समाजों या संगठनों की तरह नहीं होना चाहिए। राम दासता का समर्थक नहीं है, राम यह भी नहीं चाहता है कि बैलों की भांति कंधों पर वेदान्त के जुओं का भार रख दिया जाये। आप सभी, किसी भी संगठन में भाग लेने, किसी भी नवागत उपदेशक, धर्माचार्य

(स्वामी राम द्वारा २६ दिसम्बर, १६०३ को 'गोल्डन गेट हाल', सनफ्रांसिसको, अमेरिका में दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर)

आदि के भाषणों को सुनने के लिये पूर्णतः स्वतंत्र है। यदि आप उन अनेक वक्ताओं की ओर आकर्षित होते हैं, यदि आप समझते हैं कि इस या उस वक्ता की वाणी में आपके लिये कोई संदेश है और वह आपके लिये उपयोगी है तब आप उसके पास अवश्य जाइये। प्रत्येक वक्ता राम ही है। ''मै ही कृष्ण हूँ'', ''मैं ही मुहम्मद हूँ'', इसलिये जो भी व्याख्यान दाता हो, उन्हें स्वतंत्र रूप से सुनिये। राम यह कभी भी नहीं चाहता है कि आप राम के दास बनें। कृपया प्रकाश को आने से न रोकें। साथ ही, राम आपसे अपेक्षा करता है कि आप सत्य से लाभान्वित हों।

सत्य इतना प्राचीन है जितने हिमालय के हिमाच्छादित उच्च ललाटमय शिखर। सत्य इतना प्राचीन है कि उसे हजारों लाखों वर्ष पूर्व पवित्र गंगा के तट पर गाया गया था। एकमात्र सत्य वही है जिसे इमरसन, ह्विटमैन जैसे पश्चिमी दार्शनिकों तथा अन्य मनीषियों, विचारकों ने ग्रहण किया था और इसी सत्य ने इन महापुरूषों को आनन्दातिरेक अवस्था का अनुभव कराया था। वर्तमान संघ तथा आज के अनेकानेक समाज इसी सत्य को हजारों तरह के विभिन्न तरीकों से प्रस्तुत करते हैं, वे कभी-कभी सत्य को उसकी पूर्णता में या कभी-कभी सत्य के एकांगी पक्षों को प्रदर्शित करते हैं। आज की आपकी पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों में उसी सत्य की चर्चा की जाती है और वे इस सत्य की अभिव्यंजना को अत्यन्त सुन्दर और सुरूचिपूर्ण ढ़ंग से व्यक्त करते हैं।

परन्तु इतना अधिक समय व्यतीत होने पर भी सत्य में कोई परिवर्तन नहीं आया है, सत्य आज भी वही है, जो हजारों-लाखों वर्ष

पूर्व था। राम का दावा है कि राम सत्य की अभिव्यंजना सबसे अधिक सुन्दर तथा भव्य रीति से करता है। यदि आप केवल राम की कतिपय पुस्तकों को पढ़ें तो आप देखेंगे कि राम ने सत्य को अत्यधिक भावपूर्ण, सर्वाधिक तेजोमय, अत्यन्त विलक्षणतापूर्वक प्रदर्शित किया है। कुछ लोगों ने राम की वकृता, राम की वाणी को पसन्द नहीं किया, क्योंकि राम ने उनका मनोविनोद नहीं किया और उनकी अभिरूचियों की पूर्ति नहीं की। पर कुछ भी हो, राम सत्य से परामुखी नहीं होगा, सत्य से विचलित नहीं होगा और उस स्वर में नहीं बोलेगा जिससे आपकी चापलूसी हो, आपका मनोविनोद हो और जो आपकी कल्पना को रूचिकर लगे, जिससे लोग राम का भाषण सुनने के लिये बड़ी संख्या में एकत्र हों। परन्तु राम तो किसी व्यक्ति की अभिरूचि की पूर्ति के लिये या उसकी चापलूसी के लिये सत्य के शिखर से कभी भी नीचे नहीं उतरेगा। यह कभी भी सम्भव नहीं है।

ईसा मसीह ने केवल ग्यारह शिष्यों को उपदेश दिया था, परन्तु उनके उपदेशों, उनके शब्दों में इतना आकर्षण था कि वातावरण ने उन शब्दों को संग्रहीत किया, आकाशों ने उन शब्दों को आत्मसात किया। आज उन शब्दों को लाखों-करोड़ों लोग पढ़ते हैं। याद रखिये, यदि सत्य को धूल-धूसरित किया गया तो वह समाप्त नहीं होगा, वरन् सत्य अपना सिर फिर ऊंचा करके उठेगा। सत्य शाश्वत है।

यह सही है कि अनेक व्यक्ति इस विचार को अपने-अपने ढंग

से व्यक्त करते हैं। यही विचार, समाचार-पत्रों-पत्रिकाओं द्वारा प्रतिपादित

होता है। लेकिन राम जिस विधा से इस विचार की अभिव्यंजना करता है, उससे कुछ लोगों की जिज्ञासापूर्ण शंकाओं का समाधान होगा और कुछ लोगों को इससे थोड़ा बहुत लाभ भी मिलेगा। कुछ लोग एक तरीके से लाभान्वित होगें तो कुछ अन्य व्यक्ति दूसरे तरीके से लाभ उठायेंगे। फिर भी राम की विधा से, राम के तरीके से, लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का हित-लाभ होगा। राम का स्पष्ट कथन है कि यदि आपको उसके द्वारा बताये गये सत्य में अभिरूचि है, तो आप उस सत्य को निस्संकोच स्वीकार करें, उसको आगे बढ़ायें और हर एक व्यक्ति में उसे प्रचारित करें। जब राम यहां से, अमरीका से, आप लोगों के पास से चला जायगा तब आप एक ऐसा समाज बनायें जहां राम के वचनों तथा रचनाओं को अपनाया जाय, इमरसन, ह्विटमैन, स्पेन्सर तथा अन्य विचारकों की रचनाओं का अध्ययन किया जाय। आपका ऐसा समाज किसी नाम से सम्बद्ध नहीं होना चाहिये, क्योंकि उसका उद्‌देश्य तो सत्य को और प्रभावकारी ढंग से बढ़ाना है। यदि ऐसे समाज में ऐसा कोई प्रबुद्ध व्यक्ति है जिसके पास मौलिकता है या महान ग्रन्थों के अध्ययन करते समय कुछ लोगों को अपने विकास-मार्ग के लिये कुछ उपयोगी तथा सहायक तथ्यों का पता चलता है तो इन लोगों को ऐसी सूचनायें समाज के समक्ष रखनी चाहिये, जिससे सभी लोग लाभान्वित हो सकें। यदि कुछ ऐसे सदस्य हैं जिनमें अपनी निजी ध्यानावस्था में कतिपय सत्यनिष्ठ विचारों का आविर्भाव हुआ तो इन लोगों को अपने विचारों से समाज को अवगत कराना चाहिये। लेकिन यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से, स्वतः होना चाहिये, किसी विशेष नियमों से बाध्य होकर नहीं।

आप एक बांसुरी लें, जिसके बजाने से कोयल के गायन के सदृश्य ध्वनि निकलती हो। इस बांसुरी को आप अब भी चाहें, बजा सकते हैं और कोयल की ध्वनि के समान आवाज निकाल सकते हैं। परन्तु यह ध्वनि प्राकृतिक नहीं है। कोयल को अपने स्वाभाविक गीतों के गायन के लिये देश, काल या किसी प्रकार के नियमों द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता है। जब कोयल की मर्जी होगी, तभी वह गायेगी। यदि आप कोयल के पास जांय और उससे निवेदन करें- 'हे कोयल! कृपया आप अपना गीत गाइये, तो वह कभी नहीं गायेगी। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि भाषण करने या व्याख्यान देने वाले वक्ता के लिये समय सीमा का निर्धारण करने से उसके लिये बंधन ही पैदा होता है और वक्ता की वाणी से जो प्रभाव प्रकट होना चाहिए,वह नहीं होता है।

व्याख्यान आयोजित करने के लिये कुछ शर्तों का निर्धारण आवश्यक होता है, जैसे व्याख्यान-स्थल को किराये पर लेना, इत्यादि। प्रचार- प्रसार के माध्यमों से व्याख्यानों के प्रति आकर्षण पैदा कर के अधिक धन अर्जित करने के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता पड़ सकती है। परन्तु ये सभी शर्तें, ये सभी नियम, ये सभी साधन, 'सत्य' को बलि-बेदी पर चढ़ा देते हैं। एक प्रकार से इस प्रक्रिया को अपनाकर चन्द चांदी के टुकड़ों के लिये 'सत्य' के ईसा मसीह को बेच दिया जाता है।

राम आपसे कहता है कि यदि आप कोई समाज बनाना चाहते हैं तो उसका संगठन स्वाभाविक रूप से, अपने आप उभर कर सामने आना चाहिये और ऐसे समाज को वर्तमान अनेकानेक समाजों की नकल

या उनका प्रतिरूप नहीं होना चाहिये। वह अपनी तरह की पहली मिसाल बन सकता है।

ईसाई-चर्च-संस्था स्वयं में एक भयंकर भूल है। जहां एक ओर उसने अत्यधिक हित-लाभ किया है, वहीं दूसरी ओर उसने उसी अनुपात में हित- हानि भी की है, क्योंकि इस चर्च-संस्था ने ईसाई धर्म संहिता- 'बाइबिल' के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से सत्य ग्रहण करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अपने अनुयायियों के चारों ओर संकुचन की दीवार खड़ी कर दी। यही स्थिति बौद्ध-मंदिरों, मुसलमानों की मस्जिदों तथा अन्य धर्मावलम्बियों की धार्मिक संस्थाओं की है। इन्होंने भी भंयकर भूल की है। क्योंकि इन धर्मों ने अपने अनुयायियों को संकुचित सीमाओं में जकड़ रखा है और ये धर्म अन्य किसी स्रोत से सत्य को स्वीकार करने के लिये अपने अनुयाइयों को रोकते हैं। ये धर्म कहते हैं कि आप इसी धर्म के द्वार अथवा खिड़की के माध्यम से ही स्वर्ग पहुंच सकते हैं, अन्य धर्म के माध्यम से नहीं।

आपको अधिकार है कि आप किसी भी द्वार या खिड़की से आसमान को देखें, वास्तव में आपको अधिकार है कि आप घर को छोड़ दें, खिड़की या द्वार को भी छोड़ दें और बाहर निकलकर खुली हवा में सम्पूर्ण आकाश, सम्पूर्ण स्वर्ग का आनन्द उठायें। इसलिये राम चाहता है कि अप्राकृतिक, अस्वाभाविक योजनाओं के अनुसार किसी समाज की रचना न हो, परन्तु जो भी समाज आप बनायें, वह अत्यन्त नैसर्गिक योजना, स्वाभाविक रूप से निर्गत भावनाओं के अनुरूप हो। समाज

के सदस्य किसी पद्धति विशेष से जकड़े न हों, परन्तु वे पूर्णतः स्वतंत्र हों। यह समाज ऐसा हो जहां जब लोग अपने अन्तस्थल से प्रेरित हों, अन्तर से प्रेरणा ग्रहण करें, तभी भाषण करें, तभी वे व्याख्यान करने के लिये अपने को स्वतंत्र समझें। यह प्रेरणा, यह अनुभूति कोयल की स्वतंत्रता के समान होनी चाहिये। जब आप कोयल को गाने के लिये बाध्य करेंगे तो उसके संगीत का सौन्दर्य समाप्त हो जायगा। कृपया आप अपने आपको कृत्रिम या दास- रूपी कोयल न बनायें और कोयल की कूक की आवाज की नकल न करें। आप अपने आप को नियमों और कानूनों से सीमित न करें। सत्य को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है, सत्य को रेखाओं द्वारा आबद्ध नहीं किया जा सकता है।

राम की सर्वोत्कृष्ट कृतियां और रचनायें हिमालय के घनघोर जंगलों में लिखी गयीं जहां उनको सुनने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था। वहां राम अपनी मौज-मस्ती में वनों के वृक्षों के सम्मुख गाता था। इस गायन की ध्वनि को जंगलों की वायु आत्मसात करती थी और बहुत दूर-दूर तक उसको प्रतिध्वनित करती थी। इन कृतियों का प्रसार स्वमेव होने लगा, परन्तु जब कभी भी राम को किसी समाज के सामने व्याख्यान देने के लिये बाध्य किया गया और जब राम ने समाज के नियमों तथा कानूनों के अनुसार भाषण किया तो राम के प्रयत्न उतने अच्छे नहीं सिद्ध हुये जितने अच्छे उन्हें होना चाहिये था। राम का यह प्रयत्न अस्वाभाविक था, फलतः भाषण का सौन्दर्य विलुप्त हो गया। कभी-कभी यह भी होता है कि आपका भाषण केवल एक ही श्रोता सुनता है, उस समय सत्य का उद्घोष अत्यन्त सहज भाव से प्रतिभा तथा ओजपूर्ण

ढंग से होता है। सत्य इस बात की चिन्ता नहीं करता है कि श्रोता अधिक हैं या अत्यन्त कम हैं। सत्य के विचार को भावना पूर्वक ग्रहण कीजिये और फिर धीरे- धीरे सम्पूर्ण विश्व उसका अनुश्रवण करेगा।

आप क्योंकर किसी समाज से आवद्ध रहें? वस्तुतः समाज, आपसे आबद्ध है, आपसे जुड़ा है।

थोड़ा ध्यान दीजिये। आप एक समय में अपने फेफड़ों में सम्पूर्ण वायु-मंडल की अंशमात्र वायु को बहुत थोड़े समय के लिये अपनी स्वांस-क्रिया द्वारा ग्रहण करते हैं, फिर भी संसार की सम्पूर्ण वायु आपकी है। क्या ऐसा नहीं है? आप इस विश्व की सम्पूर्ण वायु के उत्तराधिकारी हैं। सम्पूर्ण वातावरण आपका है, आप चाहें तो सम्पूर्ण वातावरण को अपनी स्वांस में भर सकते हैं। भारत, चीन, इंग्लैण्ड, अमरीका की वायु राम की है और राम भी आपका है। हिमालय की सुगंधपूर्ण मनोरम वायु आपकी है। किसी भी व्यक्ति का हवा के ऊपर स्वामित्वपूर्ण अधिकार नहीं है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति का सत्य या ज्ञान पर एकाधिकार नहीं है, सत्य किसी की सम्पत्ति नहीं है। संसार के सभी धर्म, संसार का सारा सत्य आपका है।

जब आप स्वांस ले रहे हों, उस समय आप इस विचार पर गम्भीर चिन्तन कीजिये और इस विचार की अनुभूति कीजिये कि जिस प्रकार यह शरीर सम्पूर्ण विश्व की वायु की स्वांस ले रहा है, उसी प्रकार आपका मस्तिष्क सम्पूर्ण विश्व के सत्य का उत्तराधिकारी है।

सम्पूर्ण विश्व के सत्य की सांस लीजिये, इस सत्य को इमरसन, ह्विटमैन तथा अन्य दार्शनिकों से, उपनिषदों, गीता तथा अन्य ग्रन्थों से, जहां से भी हो सके, सभी स्रोतों से ग्रहण कीजिये। ये सभी आपके हैं। अनुभूति कीजिये कि ये सब आपके अपने ही हैं।

जब आप किसी पुस्तक को पढ़ने के लिये उठायें,तब आप उसके लेखक पर ध्यान न दें। जिस प्रकार उपनिषद लिखे गये,उन उपनिषदों में उनके रचयिताओं के नाम नहीं दिये गये हैं, उसी प्रकार लेखक के नाम के विना पुस्तकों का आलोकन होने दें।

उपनिषदों के रचयिताओं ने विश्व को अपना दर्शन, अपनी अनुभूति का ज्ञान देने के लिये कोई श्रेय नहीं लिया। भारत की सर्वोत्कृष्ट रचनायें षठ- दर्शन हैं। परन्तु इनके रचयिताओं ने अपना कार्य निष्पक्ष रूप से, व्यक्तित्व-भावना से विरत होकर किया उनमें सर्वाधिकार सुरक्षित रखने की अहंकारी भावना लेशमात्र नहीं थी। वे स्वामित्व प्रदर्शित करने वाली क्षुद्र आत्मा से स्वतंत्र थे, वे तो केवल इसी तथ्य से पूर्णतः भाव-विभोर थे कि "मै ही सत्य हूँ"। इन रचनाकारों की मान्यता थी कि "मैं ही सत्य हूँ" का साक्षात्कार स्वयं में ही पूर्ण आनन्द है। इसी अनूभूति से वे अनुप्राणित हैं। इस विचार में कि "मैने १०० पुस्तकें लिखीं", या मेरे पास ५० करोड़ रूपये हैं", क्या कोई सुख है? किसी व्यक्ति को वास्तविक आनन्द केवल इसका साक्षात्कार करने से ही मिलता है कि "मैं परिपूर्ण, एकमात्र सत्य हूँ" "मैं ही तेजोमय, प्रभुता-सम्पन्न, अविनाशी, आत्मा हूँ, सकल सत्य हूँ"। इस साक्षात्कार से प्राप्त आनन्द,

आपके सांसारिक व्यक्तिगत हर्ष तथा उल्लासों को शून्यवत, तुच्छ बना देता है।

इसलिये आप स्वांस लेने के नैसर्गिक अधिकार का प्रयोग करें और जब भी आप स्वांस लें तब आप उस समय यह अनुभव करें, इसका साक्षात्कार करें कि इस विश्व में हर वस्तु आपकी है। यह अनुभूति करें कि सम्पूर्ण विश्व की वायु आपकी है, सम्पूर्ण विश्व का समस्त सौन्दर्य और प्रेम आपका है। यह अनुभूति ठीक उसी प्रकार होनी चाहिये जिस प्रकार आप अनुभव करते हैं कि आपकी नस-नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले रक्त की प्रत्येक बूंद, आपके शरीर की हर एक कोशिका की है। जो वायु आपके फेफड़ों में से गुजर रही है वह वायु आपकी है-आपके फेफड़ों की है। आपके शरीर की हर एक कोशिका का आपके शरीर के रक्त की प्रत्येक वूंद पर आधिपत्य है। जिस प्रकार आप अपनी कोशिकाओं का अपने रक्त पर अधिकार के बारे में आश्वस्त हैं उसी प्रकार आप यह साक्षात्कार करें कि समस्त ज्ञान, सम्पूर्ण शक्ति, सकल सत्य, परिपूर्ण आनन्द, सभी सिद्धान्त, सभी मत-मतान्तर, कृष्ण, मुहम्मद, राम, ईसा-सभी आपके हैं। इस समय आपके माध्यम से जो प्रवाहित हो रहा है, उसके गुण-दोषों पर विचार न करें।

अब राम आपको बताना चाहता है कि आप नैराश्य तथा विषाद-युक्त दशा से अपने आपको किस प्रकार मुक्त करें। उपचार अत्यन्त सरल है। और चूंकि यह उपचार अत्यधिक सरल और सीधा-सादा है, इसलिये लोग उसकी उपेक्षा करते हैं।

अनुभव ने इस प्रक्रिया को सत्य सिद्ध किया है। राम आपके सामने जिस प्रक्रिया उल्लेख कर रहा है, उसके बारे में सभी महान व्यक्तियों को जाने-अनजाने अनायास सहमत होना पड़ा है। जब आप इसका प्रयोग करेगें तो आप भी इसके अद्भूत, अनुपम प्रभावों के अनुभवों से लाभान्वित होंगे।

यदि आप अपने कमरे में बैठे हुये अपने को निराशा से ग्रसित अनुभव करते हों या आप आपने आपको थका हुआ अथवा थोड़ी-बहुत स्वार्थ-भावना से घिरे हुये महसूस करते हों, या आपके मन में ईर्षा अथवा निम्न प्रकृति की अनुचित आसक्ति के भाव उठते हों तब आप इस बात का अपने अन्दर स्मरण करें कि शरीर के स्वस्थ्य होने की दशा में इस प्रकार के निम्न विचार आप तक कदापि पहुंच ही नहीं सकते हैं। याद रखिये कि आपके पेट में कुछ गड़बड़ी है जिसके कारण ये बुरे विचार पैदा हुये।

जब कोई ऐसा व्यक्ति राम के पास आता है जो राम के प्रति अशोभनीय भाषा का प्रयोग करने लगता है या कर्कश वाणी में राम का अपमान करता है तब राम उसको न तो कोई दोष देता है और न ही उसमें दोष ढूढंता है और न ही राम उसको 'जैसी की तैसी' वाणी में उत्तर देता है। जब कोई भी व्यक्ति आपके प्रति ईर्ष्या, कटाक्ष, अप्रसन्नता या आक्रोश प्रकट करता है तो आपको ऐसे व्यक्ति पर दया आनी चाहिये और उसके पेट की गड़बड़ियों के उपचार के लिये कुछ औषधियां देनी चाहिये। जब आप स्वयं पीड़ित हों तब आपको क्याकरना

चाहिये? क्या आपको वाह्य औषधियों का सेवन करना चाहिये? अरे नहीं, नहीं। इन वाह्य औषधियों से उपयुक्त उपचार नहीं हो सकता है, इनका प्रभाव चिर-स्थाई नहीं होता है।

जब आप निराशा के गर्त में डूबें हों, उस स्थिति में आपको राम का परामर्श यही है कि आप आलस्य का परित्याग करें, आप हाथ में ली गयी किताब को दूर रख दें, अपने पैरों पर खड़े हो जायं, खुली हवा में टहलें और तेजी से टहलें। इससे आपकी स्वांस स्वाभाविक रूप से तेज चलने लगेगी, और आप गहरी स्वांस लेने लगेंगे। जब आपकी स्वांस-क्रिया तेज और दीर्ध होगी, तब इससे आप अपने आप अधिक शक्ति ऊर्जा का अनुभव करेंगे और प्रसन्नचित हो जायेंगे। सभी प्रकार की निराशा आपसे दूर कूच कर जायेगी। आपके मुख को स्पर्श करने वाली ठंडी हल्की बयार (हवा) आप पर अद्भूत प्रभाव डालती है। यह भी बड़ी बिडम्बना है कि अधिकतर लोगों ने इस अद्भुत प्रभाव की ओर ध्यान नहीं दिया।

लोगों ने प्राणायाम अथवा स्वांस क्रिया नियंत्रित करने के बारे में अनेकानेक उपदेश दिये हैं। पर इस क्रिया के लिये राम की पद्धति सर्वाधिक प्राकृतिक तथा नैसर्गिक है। जब आप समुद्र-तट पर या अन्यत्र टहल रहे हों, तब राम की पद्धति अपनाकर आप अपने 'प्राण' को उपयुक्त स्थिति में बनाये रख सकेंगे। एक अन्य तरीका भी है। जब आप अपने कमरे में खुली हवा में टहलने निकलें, उस समय मान लीजिये, आप तेजी से नहीं, वरन् धीरे-धीरे टहलते हैं, मान लीजिये, आप तेजी से

टहलने को भला नहीं समझते हैं, क्योंकि आप स्वाधीनता की अपेक्षा दूसरों की दृष्टि में भले ही दिखने को अच्छा मानते हैं और इस भावना के गुलाम हैं कि आपके लिये स्वयं की भलाई की तुलना में जन-मत (दूसरों की राय), अधिक श्रेयस्कर है और ऐसी स्थिति में आप अपने आपको बाध्य कर धीरे-धीरे ही चलते हैं तो इसका परिणाम यही होता है कि आपकी स्वांस आपके पेट के ऊपरी भाग में ही भरती है और स्वांस आपके पेट में अधिक गहराई तक नहीं जाती है। राम आपको ऐसी स्थिति से उबरने के लिये परामर्श देता है कि आप किसी कोने या ऐसी जगह, जहां आपको कोई देख न सके, वहां खड़े हों और तब वहां आप अपना मुंह खोलें और मुंह से पूरी हवा भर लें। मुंह से भली प्रकार भरी गयी पूरी की पूरी हवा को भीतर की ओर खींचें और उसे अपनी नाक के नथुनों से निकालें। इस प्रक्रिया का कठोरता पूर्वक पालन करें। तब आप देखेंगे कि यह प्रक्रिया आपको कितने अद्‌भुत तरीके से प्रफुल्लित करती है।

राम आपको सर्वाधिक प्राकृतिक और स्वाभाविक 'प्राणायाम' बतलाता है। आप सांस लें, सांस लेते रहें; और फिर गहरी सांस लें। गहरी सांस लेने से वायु आपके आमाशय के निचले भाग में भर जायगी और यही हवा अन्दर ही सम्पूर्ण नली से होकर गुजरेगी। इस प्रकार आप तुरन्त ही निराशा की भावना से मुक्त हो जायेंगे और आपकी शक्तियों का सर्वोत्तम उपयोग होने लगेगा। जब आप गहरी सांस लें, उस समय आप अपने मन को इस भावना का अभ्यास करा सकते हैं- " मैं सम्पूर्ण संसार की हवा की सांस ले रहा हूं, सम्पूर्ण विश्व का सकल सौन्दर्य

तथा प्रेम मेरा ही है।" गहरी सांस लेते हुये आप मन में इस चिन्तन को जारी रखें कि "विश्व का सकल सौन्दर्य और सारी सम्पदा मेरी ही है।" इस चिन्तन से आप हर्षोल्लासित हो जायेंगे। इस तथ्य का परीक्षण करें, यह अत्यन्त सरल है और आपके लिये इसके परिणाम अत्यन्त विचित्र, कितने सुखदायी होंगे।

टहलने के बारे में यह देखा गया है कि लोग अन्य लोगों के साथ, अनेक लोगों को साथ लेकर टहलना पसन्द करते हैं। इसके बारे में एक अनाड़ी कवि ने अपनी कविता में लिखा है:-

ढूढों ऐसे दोस्त को,
जो बात कर सके तेरे साथ।
खोजो ऐसे साथी को,
जो टहल सके तेरे साथ।

राम कहता है कि यदि आप विचारक नहीं हैं या आप आध्यात्मिक प्रवृत्ति के नहीं हैं, यदि आपके पास ऐसा कोई महान या उत्कृष्ट काम नहीं है जिसे आप एकाग्र मन के द्वारा सम्पन्न कर सकें तो आपके लिये यह उचित है कि आप टहलते समय अन्य व्यक्ति का साथ करें। अथवा मान लीजिये, आप अत्यधिक दुर्बल हैं, उस अवस्था में राम आपको सलाह देता है कि आप किसी उपदेशक या विद्वान के साथ टहलने का सौभाग्य प्राप्त करने की कोशिश करें। इससे आपकी कुछ न कुछ भलाई होगी। परन्तु आप ऐसे लोगों के साथ नहीं टहलें जो आपका उन्नयन न कर सकें, आपको ऊंचा नहीं उठा सकें। ऐसे

लोगों के साथ भी नहीं टहलें जो आपके मन में घृणा, ईर्ष्या, तिरस्कार तथा अन्य निम्न कोटि की भावनाओं को जाग्रत करें। यदि आप अकेले टहलते हैं और यदि आप विचारक हैं, तब आपके लिये इससे अधिक कोई अन्य बात हितकारी नहीं हो सकती है कि उस समय जब आपके समीप कोई न हो, आप ॐ, ॐ, ॐ, की ध्वनि का उच्चारण करें। ज्यों ज्यों आप टहलते जायेंगे तथा ॐ का उच्चारण करते जायेगें. त्यों,त्यों आप अनुभव करेंगे कि आपका यही वातावरण आपको प्रेरणा दे रहा हैं और आपमें अद्भुत, अनुपम, अपूर्व विचारों का संचार कर रहा है।

लोग इस तथ्य से लाभ नहीं उठाना चाहते हैं। वे समझते हैं कि यह अत्यन्त साधारण सलाह है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जब आप इस तथ्य का अभ्यास करेंगे तो आप उसके अद्वितीय प्रभावों को देखकर चमत्कृत होंगे जिनको यह अभ्यास प्रकट करता है।

कृपया किसी महान शक्तिशाली तथा विशाल महासागर को देखें। इस महासागर के पानी की एक बूंद के पीछे वही एकमात्र शक्ति है जो उसकी किसी लहर के पीछे है। एक लहर के पीछे भी वही शक्ति है जो दूसरी लहर के पीछे है। इस महासागर के प्रत्येक बुदबुदे की आत्मा में वही एक मात्र महासागर विद्यमान है। हर एक तरंग का आधार अनन्त सागर की आत्मा है।

इसी प्रकार कृपया अनुभव कीजिये, अनुभूति करते जाइये, और इस अनुभूति से परिपूर्ण होते जाइये कि जिसे आप अपना शरीर कहते

हैं, जो छोटी बूंद के सदृश्य आपका शरीर है, जो लहर की भांति आपका शरीर है, उस शरीर का आधार, उसकी रक्षा करने वाला, उसको हृष्ट-पुष्ट करने वाला उसका पालन तथा पोषण करने वाला, उसको सुदृढ़ करने वाला, उस शरीर को बनाये रखने वाला केवल वही शक्तिमान आत्मा है जो महासागरों के महासागर की है, वही शक्ति है जो सूर्य, चांद, तारों को स्थिर किये है और उनका आधार है।

आपकी आत्मा ही सूर्य तथा तारों का अधिष्ठान है, वही आपके रक्त की प्रत्येक बूंद की आत्मा है, वही आपके सम्पूर्ण अस्तित्व की आत्मा है, वही आपके शीश के प्रत्येक बाल की आत्मा है, वही सम्पूर्ण शरीर की आत्मा है।

आप स्वयं वह अनन्त आत्मा हैं, आप केवल अपने इस शरीर का ही पालन-पोषण और इसकी रक्षा नहीं करते हैं, वरन् आप तो सभी देश-काल की आत्मा हैं। कृपया विचार कीजिये! आप वह आत्मा हैं जो सभी देश-काल का अधिष्ठान है, आप ही वह अनन्त, अनादि आत्मा हैं। आप कृपया ध्यान दें, यदि इस शरीर की मृत्यु हो जाती है, तो क्या इसकी आत्मा की भी मृत्यु हो जाती है? नहीं, कदापि नहीं। यदि शरीर समाप्त हो जाता है तो भी जब तक देश-काल है, तब तक आत्मा की मृत्यु नहीं हो सकती है। आश्चर्यों का कितना बड़ा आश्चर्य! "मैं सभी देश की आत्मा हूँ", "मैं अनन्तता की आत्मा हूँ, मैं सभी काल की आत्मा हूँ।"

जब आप अकेले भ्रमण कर रहे हों, जब आप किसी तट पर

या खुली हवा में विचरण कर रहे हों, जब आप अकेले खड़े हों तो आप 'अहम् ब्रह्मोस्मि' के विचार की अनुभूति कीजिये, इसी प्रकार का अनुभव कीजिये। आप स्वतंत्र रूप से ॐ का उच्चारण भले ही न कर सकें, परन्तु भावना के माध्यम से 'ॐ' के उच्चारण से जो अनुभूति प्राप्त होती है, वह स्वयं में श्रेयस्कर है।

आपको वाह्य रूप से 'ॐ' के उच्चारण करने पर अधिक बल देने की आवंश्यकता नहीं है, परन्तु भावना के माध्यम से आपको यह अनुभूति करनी चाहिये कि "मैं परिपूर्ण अनन्त हूँ, मैं सभी देश हूँ, सारे शरीर मुझमें ही पूर्णतः व्याप्त हैं, शत्रु-मित्र सभी की इच्छायें मेरी हैं, सभी अभिलाषायें मेरी हैं।"

एक व्यक्ति है जिससे मुझे अत्यधिक ईर्ष्या है, एक अन्य व्यक्ति है जिसे मैं अपना शत्रु मानता हूँ। अब आप इस तथ्य पर गम्भीर होकर विचार कीजिये और अनुभव कीजिये कि "वह शत्रु मैं ही हूँ"; इस तरह सारे भेद-भाव, सारे द्वैत को तिलांजलि दे दीजिये। इस बात की अनुभूति कीजिये कि क्षुद्र ईर्ष्या करने वाले आप ही हैं। मान लीजिये कि आप किसी से प्यार करते हैं और आपको यह भी पता है कि दूसरा भी उससे प्यार करता है जिसे आप चाहते हैं। तब ईर्ष्या और डाह की भावना पनपती है। इस भावना को प्रोत्साहन मत दीजिये, क्योंकि जिसको प्यार किया जा रहा है, वह आप ही हैं, दूसरा व्यक्ति जो आपके हृदय की प्रियतमा या प्रियतम से प्रेम करता है, वह भी आप ही हैं, उसका हर्ष आपका हर्ष है- इस सत्य का साक्षात्कार कीजिये। इस सत्य की अनुभूति

करने के लिये आपको स्वमेव अपने आपको मूर्तिमान सत्य बनाना होगा। यह विचार कीजिये-"मैं वही हूँ, जिसका सानिद्धय पाने के लिये वह व्यक्ति आता है, मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है,कोई द्वैत नहीं है।" आप क्षुद्रात्मा से ऊपर उठिये। छोटे बड़े की भावना से छुटकारा पाइये। आप किसी को छोटा या किसी को बड़ा मत मानिये और इसी भावना का साक्षात्कार करने के लिये आप वेदान्त को व्यवहृत कीजिये। यह सोचिये कि "मैं ही वह व्यक्ति हूँ, जो आज बड़ा है और मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो आज बड़ा नहीं है- मै ही दोनों हूँ।" एक व्यक्ति आपसे अधिक महान हो सकता है, अधिक सम्पदा एकत्र करने की उसकी क्षमता आपसे अधिक हो सकती है, उसको आपसे अधिक सम्मान मिल सकता है। परन्तु आपकी उन्नति की एकमात्र विधि यही है कि आप यह सुनिश्चित करें कि जिससे आपको ईर्ष्या है वह एक शरीर है, परन्तु वह शरीर, उस व्यक्ति, उस नायक की आत्मा नहीं है। उस नाम धारी मनुष्य की आत्मा और मैं, दोनों एक हैं। इसकी अनुभूति कीजिये और ईर्ष्या के क्षुद्र विचार से ऊपर उठिये।

प्रकृति में जो सर्वोत्कृष्ट है, उसके साथ आपके हृदय का जितना अधिक स्पन्दन होता है, उतना ही अधिक आप यह अनुभव करेंगे कि सम्पूर्ण प्रकृति के पूरे परिवेश में वह आप ही हैं जा स्वांस ले रहे हैं। आप ही वृक्षों के विकास और विनाश, दोनों में सांस ले रहे है। सूर्य उदय और अस्त होता है। यही प्रक्रिया आपके स्वांस अन्दर लेने एवं बाहर निकालने की होनी चाहिये।

जीवन और मृत्यु स्वांस अन्दर करने तथा स्वांस को बाहर करने की प्रक्रिया के सदृश्य है। जब तक आप प्रकृति से अपने सम्बन्धों का विच्छेदन करते रहेंगे तब तक आप विभ्रमित, खोये हुये रहेंगे। जितना अधिक आप यह अनुभव करेंगे कि सम्पूर्ण विश्व आपकी स्वांस है और यह अनुभव करेंगे कि आप वही अनन्त, अनादि शक्ति हैं जो जीवन-मृत्यु के परिदृश्यों के माध्यम से, आवागमन के माध्यम से, सभी माध्यमों से स्वांस लेती है तभी आप छोटी-छोटी चिन्ताओं तथा दुःख-दारूण्य से ऊपर उठ जायेंगे। यही अन्तर्निहित सौन्दर्य है। जो व्यक्ति आन्तरिक रूप से सुन्दर बन जाते हैं, भले ही उनके मुखड़े कैसे क्यों न हों, वे स्वतः ही सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्व के लिये आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बन जाते हैं।

सुकरात अत्यन्त कुरूप था, परन्तु वह अन्तर्मुखी सौन्दर्य के लिये प्रार्थना करता था। अच्छे विचारों से अभिभूत होना ही आन्तरिक सौन्दर्य है।

अन्तर्मुखी सौन्दर्य के इस विचार, इस भाव से आपके लिये सम्पूर्ण संसार कितना सुरूचिपूर्ण और भव्य बन जाता है! आप यह अनुभव करें कि आप स्वतंत्र हैं तब संसार में आपके लिये कोई विषमता, कोई असमानता नहीं रह सकती है।

हे वास्तविक, सच्चे आत्मन्! यही तो आप हैं। फिर यदि सूर्य गिर पड़े, चन्द्रमा धूल-धूसरित हो जाय, सभी नक्षत्र-मंडल विनाशलीला

में समा जांय, तो इससे आपको क्या अन्तर पड़ता है? आप अपनी वास्तविक आत्मा का अनुभव कीजिये, तो कोई भी आपको किंचित हानि नहीं पहुंचा सकेगा। सूर्य, चन्द्र, तारे, सभी विनष्ट हो सकते हैं, परन्तु आपका नाश नहीं हो सकता है। आप तो सभी देश, काल की आत्मा हैं। आप अविनाशी हैं, आप अविचलित चट्टान की भांति खड़े हैं। इसका साक्षात्कार कीजिये। यही विधि है जिसके अनुसार आप सांस लें, इसी के अनुसार आप अपनी पूरी शक्ति से सम्पूर्ण जगत की अपने फेफड़ों तथा मन द्वारा सांस लें। जब मन के माध्यम से आप सम्पूर्ण जगत की आत्मा की सांस लेंगे, तभी आप सकल प्रकृति के साथ अपना सामन्जस्य स्थापित कर लेंगे। इस प्रकार आप के जीवन का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से तादात्म्य हो जाता है, सामन्जस्य हो जाता है।

सामन्जस्यपूर्ण गति क्या है? बुद्धि की गति को सामन्जस्यपूर्ण होने दें। सामन्जस्यपूर्ण गति ब्रह्माण्ड के सभी मंडलो का संगीत है। सभी ब्रह्माण्ड मंडल इसी सामन्जस्य पूर्ण गति से स्वांस ले रहे हैं।

इस सामन्जस्य पूर्ण गति को प्राप्त कीजिये। सभी ब्रह्माण्ड-मंडलों की संगीत स्वर-लहरी से अपना स्वर मिलाकर उसके समन्वय से आप एकात्मता स्थापित कीजिये।

एक विशाल महासागर में एक मछली तैर रही है। महासागर का पानी उस मछली के गले की स्नायुयों को जल-प्लावित करता है और उन स्नायुयों से समुद्र-जल प्रवाहित होता है। सारी गति उसमें है।

इसी प्रकार अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण संसार मेरा है। वह क्या है जो आपके शौर्य, आपकी वीरता को, आपकी प्रसन्नता, आपकी प्रफुल्लता को हतोत्साहित करता है? वह है जिसे आप आध्यात्मिक अपारदर्शिता और मलिनता कहते हैं। आपको स्वयं को पारदर्शी बनाना है, आपको अपने अन्दर की मलिनता को समाप्त कर देना है जो आपको अंधकारमय बनाती है।

यह अपारदर्शिता, यह मलिनता क्या है? यह आपका क्षुद्र अहंकार है, अपने स्वामित्व की भावना को प्रदर्शित करने वाली तुच्छात्मा है जो कहती है- "यह मेरा है, इस पर मेरा आधिपत्य है, इत्यादि ।" यह वह मलिनता है जिसका परित्याग अवश्य किया जाना है। इसलिये जब आप खुली हवा में सांस ले रहे हों, जब आप यह अनुभव कर रहे हों कि सम्पूर्ण संसार से आपकी अभेदता, आपकी एकता अविछिन्न है, तभी आप पारदर्शी बन जाते हैं और तभी सभी चीजें आपके पास अपने आप चलकर आ जाती हैं।

एक बार दो व्यक्ति एक सम्राट के पास आये और उनसे प्रार्थना की कि वे अपने राज-प्रासाद की भित्तियों को रंगने तथा उनका सुसज्जित करने के लिये उन्हें सेवक रख लें। ये दोनों व्यक्ति प्रतिद्वन्दी कलाकार थे और दीवालों को चित्रित करने के काम-काज का ठेका लेने के उद्देश्य से ये लोग सम्राट के पास आये थे और उनसे नौकरी के लिये निवेदन किया था। सम्राट इनको सेवा में रखने के पूर्व इनकी प्रतिभा, इनके काम- काज की परीक्षा लेना

चाहते थे। इसके लिये सम्राट ने इन कलाकारों को आमने सामने की दीवालों को चित्रित करने के लिये आज्ञा दी।

आमने-सामने वाली इन दीवालों के सामने परदे टांग दिये गये जिससे ये कलाकार अपने-अपने ढंग से, स्वतंत्र रूप से, बिना एक दूसरे को देखे हुये, अपना-अपना काम कर सकें। इन लोगों ने लगभग एक महीने तक काम किया और समय समाप्त होने पर उनमें से एक कलाकार सम्राट के पास गया और उनसे निवेदन किया- "मैंने अपनी कला-कृतियों का काम पूरा कर लिया है, माननीय सम्राट महोदय! अब आप आने की कृपा करें और मैंने जो कृतियां बनायी हैं उनका निरीक्षण करने की अनुकम्पा करें।" सम्राट ने तब दूसरे कलाकार से पूंछा कि उसे अपना काम समाप्त करने के लिये और कितना समय लगेगा? तब दूसरे कलाकार ने उत्तर दिया- "महाराज! माननीय सम्राट महोदय! मैंने भी अपनी कृतियों का काम पूरा कर लिया है।" तब निरीक्षण का एक दिन निर्धारित किया गया और उस दिन सम्राट अपने सभी दरबारियों तथा परामर्शदाताओं और अन्य दर्शकों के साथ यह देखने के लिये आये कि कौन सा कलाकार दूसरे से बढ़ा- चढ़ा है, अधिक प्रतिभा-सम्पन्न है। पहले कलाकार की दीवाल के सामने के पर्दे को अलग किया गया। सम्राट, उसके दरबारियों और परामर्शदाताओं तथा दर्शकों ने एक स्वर से निर्णय किया कि वे इस कलाकार की कला देखकर मंत्र-मुग्ध हैं और उन्होंने सोचा कि इस कलाकार की कला वास्तव में महान तथा उत्तम है।

दरबारियों ने राजा से विनम्रतापूर्वक अत्यन्त धीरे से कहा कि इससे और अधिक अच्छी कला की आशा नहीं की जा सकती है और अब दूसरे कलाकार की कला-कृतियों का निरीक्षण करना निरर्थक है। क्योंकि पहले कलाकार ने उन सभी की आशाओं से कहीं अच्छी कला प्रदर्शित करके दिखला दी है। इसलिये उन सभी की राय थी कि सम्पूर्ण कार्य का ठेका इसी पहले कलाकार को ही दे दिया जाय। परन्तु सम्राट अपने दरबारियों से कहीं अधिक बुद्धिमान था। फलतः उसने आज्ञा दी कि दूसरी दीवाल के सामने पड़े पर्दे को हटा दिया जाय। अब क्या था? सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये। उनके मुंह खुले के खुले रह गये और हाथ उठे के उठे! उनकी सासें यह अचम्भा देखकर रुक सी गयीं थीं। कितना बड़ा आश्चर्य, आश्चर्यों का आश्चर्य! दूसरी भित्त की कला तो अद्वितीय थी।

क्या आप जानते हैं, यह सब कैसे हुआ? वस्तुस्थिति यह थी कि दूसरे कलाकार ने पूरे महीने अपनी दीवाल पर कुछ भी चित्रित नहीं किया था। जहां तक सम्भव हो सकता था, उसने अपनी दीवाल को पारदर्शी बनाने का ही प्रयत्न किया था। वह लगातार अपनी दीवाल को रगड़ता रहा, घोंटता रहा और इस तरह दीवाल को चिकना बनाकर उसे सुन्दर बनाता रहा। वह अपनी दीवाल को पूरी तरह से पारदर्शी बनाने में सफल हो गया। निरीक्षण से पता चला कि उसके प्रतिद्वन्दी ने सामने की दीवाल पर जो भी चित्रित किया था, वह सबका सब इस दूसरे कलाकार की दीवाल में ज्यों का त्यों हू- बहू चित्रित दिखाई दिया। इसके अतिरिक्त, पहले कलाकार की तुलना में दूसरे कलाकार की दीवाल

अधिक चिकनी, अधिक समतल यहां तक कि अधिक सुन्दर दिखायी दी, जबकि पहले कलाकर की दीवाल खुरदरी, विषम और कुरूप दिखाई देती थी। इस दूसरी सुन्दर तथा चिकनी दीवाल पर सामने की दीवाल पर बनायी गयी कुल चित्रकारी पूरी की पूरी प्रतिबिम्बत हो गयी थी। फलतः पहली दीवाल की जो भी सुन्दरता थी, वह सुन्दरता दूसरी दीवाल में और अधिक बढ़ गयी।

उस क़ाल के राजाओं तथा निवासियों को दर्पण की जानकारी नहीं थी और वे बारीकी से, अति सूक्षमता से किसी चीज का निरीक्षण नहीं कर सकते थे। फलस्वरूप ये सभी लोग एक स्वर से बोल उठे- ''महाराज, सम्राट महोदय! इस कलाकार ने तो दीवाल के अन्दर घुसकर चित्रों को बनाया है। इसने दीवाल को दो-तीन गज अन्दर की ओर खोदा और फिर हर चित्र का चित्रण किया।''

दर्पण से जितनी दूरी पर पदार्थ रखे जाते हैं, दर्पण में उनका प्रतिबिम्ब उतनी ही गहराई तक धंसा हुआ प्रतीत होता है।

चूंकि इस दूसरे चित्रकार ने अपनी दीवाल को बालू से अत्यधिक रगड़ा और घोंटा था और यह कार्य वह उस समय तक करता रहा था जब तक वह दीवाल ही दर्पण की तरह न हो जाय। इसलिये राम आपसे अनुरोध करता है कि जो लोग ज्ञान अर्जन के लिये पुस्तकों के अध्ययन में तल्लीन हैं, और वाह्य ज्ञान प्राप्त करने में लगे है, उन्हें चाहिये कि बाहरी चित्रकारी करते हुये भी वे अपनी दीवालों पर इस तरह

के चित्र अंकित करें जिससे वे दीवालें सम्पूर्ण ज्ञान के अर्जन की प्रक्रिया द्वारा अत्यधिक सुन्दर बन जांय।

इस प्रक्रिया का तात्पर्य है कि जैसी भी आपके मन या बुद्धि की दीवालें हो, उन्हें रगड़-रगड़ कर, घोंट-घोंट कर अधिकाधिक पारदर्शी, चिकना और पतला बनाये। अपने हृदयों को विशुद्ध करने, अपने हृदयों को पारदर्शी बनाने की जो विधि है, यदि आप उसे अपनायें तो आपके मन में विश्व का समस्त ज्ञान स्वतः प्रतिबिम्बित होने लगेगा, आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ज्ञान से अनुप्राणित हो उठेंगे।

राम आपको अपने व्यक्तिगत अनुभव से बताता है कि जब राम हिमालय के अत्यन्त घने जंगलों में रह रहा था, उस समय यदा, कदा राम को यह अनुभूति होती थी कि जब कभी भी उसका मन पारदर्शी होता था, जब कभी उसका मन सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टिकोण से ऊपर उठकर 'नेति-नेति' की अवस्था में होता था, उस स्थिति में अनुप्रेरणा द्वारा राम के मन में सर्वाधिक अद्वितीय विचार, विलक्षण दर्शन तथा अनुपम शक्ति का संचार होता था! इसलिये राम आपके सामने सिद्ध करता है कि सर्वोत्कृष्ट कृतियों की रचना, प्रेरणा द्वारा ही होती है, चाहे वह बाइबिल हो, या उपनिषद, वेद, कुरान, या मिल्टन की पुस्तकें हों या इमरसन की किताबें, यहां तक कि इंगरसोल की कृतियां हों, यह दूसरी बात है कि इंगरसोल तथाकथित ईसाई नहीं था। स्पेंसर की पुस्तकें भी ठीक उसी प्रकार अनुप्रेरित होकर लिखी गयीं थी, जिस प्रकार वेद, कुरान या बाइबिल! बिना प्रेरणा के कोई भी ज्ञान अर्जित नहीं होता है,

सारा ज्ञान प्रेरणा द्वारा ही प्राप्त होता है। लेखक की सर्वाधिकार सुरक्षित करने की आकांक्षा, व्यापारिक और अहंकार से परिपूर्ण लोलुपता, अपनी योग्यता का मूल्य वसूल करने की वाणिज्यिक वृत्ति और लोगों से यश, कीर्ति प्राप्त करने की मनोभावनायें ही ऐसी होती हैं जिनके कारण लेखकों के हृदय की दीवालें अपूर्ण, खुरदरी, असमतल और विषम बन जाती हैं। यह क्षुद्र, धीरे-धीरे प्रवेश करने वाला और लोभ-ग्रसित अहंकार है। जब यह अहंकारी मनोवृत्ति स्वच्छ बना दी जाती है तभी इससे छुटकारा पा लिया जाता है और हृदय की दीवाल की पारदर्शिता की पूर्णावस्था होती है।

जब आपका हृदय सम्पूर्ण विश्व के हृदय के साथ स्पंदन करता है, जब संसार का समस्त कार्य-कलाप आपका स्वयं का काम-काज बन जाता है, जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का हृदय आपका हृदय बन जाता है, जब आपकी स्वांस समस्त ब्रह्माण्ड की स्वांस से एकरस हो जाती है, जब आप जाने- अनजाने इस अवस्था में अपने को प्रतिष्ठित कर लेते हैं, तभी ज्ञान आपके पास स्वतः आता है और आप ज्ञान से परिपूर्ण हो जाते हैं। बस, यही विधि है।

पुस्तकों और मंदिरों में सत्य की आपकी खोज निरर्थक होगी। इसके रहस्य का अन्वेषण आप अपने अन्तस्थल में करें, सम्पूर्ण संसार की वायु की स्वांस लें। आप पारदर्शी बनें। आपकी मलिनता, आपकी अपारदर्शिता उसी समय समाप्त होगी, जब आपके मन में कोई प्रतिद्वन्दिता न रहे, जब आपको अपने पर कोई अधिकार न रहे, जब आप यह

अनुभव करें कि आपके तथाकथित शत्रु की इच्छायें आपकी स्वयं की इच्छायें हैं, जब आप इस कसौटी, इस परीक्षण पर अपने हृदय को कसेंगे और देखेंगे कि जिन लोगों के प्रति "मैं" इर्षालु होता था, वह "मैं" ही हूँ और "मैं" ही उनकी इच्छाओं का स्वामी हूँ। यदि आपके तथाकथित शत्रुओं की इच्छा आपके शरीर की हत्या करने की है और यदि उनकी इस इच्छा से आपको वही सुख मिलता है जो आपके शरीर की हत्या से उनको मिल सकता है, तब आप पारदर्शी हैं। अरे! तभी आपका ब्रह्माण्ड के साथ तादात्म्य है, सभी विश्व से आपका परिपूर्ण सामन्जस्य है! तभी आप पारदर्शी बन गये, सारी मलिनता, सभी तुच्छता विलीन हो गयी, समाप्त हो गयी और अब आप सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक ईश्वर हो गये। सफलता का यही रहस्य है। और देखिये तो सही, विश्व के सभी कोष आपके हो गये। आप सर्वस्व बन गये। 'पूर्ण' बन गये।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

मनुष्य का भ्रातृत्व

उपस्थित महिलाओं तथा सज्जनों के रूप में विद्यमान मेरे आत्मन् !!

इसके पूर्व कि राम आज अपना व्याख्यान प्रारम्भ करे, यह आप सब लोगों के लिये श्रेयस्कर होगा कि आप मानव की तात्विक समग्रता, प्रत्येक मानव की एकता, मनुष्य के भ्रातृत्व पर अपने मन को एकाग्र करें। इस सत्य का अनुभव करें, इसके बारे में आश्वस्त हों।

यदि मनुष्य के भ्रातृत्व की चर्चा निपट थोथी और कोरी कल्पना है तो इस विषय के व्याख्यान को सुनने के लिये यहां बैठकर घंटे दो घंटे का समय व्यय करने की कोई उपयोगिता नहीं है, वह निरर्थक है। यह विषय व्यवहार का मुद्दा है, इसे व्यवहार में लाना होगा। तभी इससे वस्तुतः आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। ओह! जब हम यह अनुभव करते हैं कि इस संसार के सभी लोग 'मेरे अपने, स्वयं मैं ही हूँ' तो इससे कितना हर्ष होता है! जो संगीत मैंने सुना था वह 'मेरा ही' था। जब हम यह अनुभव करते हैं कि इस संसार में जो लोग समृद्धि के सर्वोत्तम शिखर पर हैं और जो आशातीत रूप में लोकप्रिय हैं, वे 'सब मैं ही हूँ' सब मेरे ही स्वरूप' हैं तब कितनी प्रसन्नता

(स्वामी राम द्वारा १५ फरवरी, १६०३ को अमेरिका में दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तिर)

होती है। इस अनुभव से कितना वर्णनातीत आनन्द मिलता है! इस सत्य की अनुभूति करने की चेष्टा कीजिए और आप देखेंगे कि इसके स्वाभाविक परिणाम आपके व्यवहार में परिलक्षित होने लगते हैं। ठीक जिस प्रकार आप मानते हैं कि यह एक शरीर आपका है, ठीक उसी प्रकार आप यह अनुभव करना प्रारम्भ करें और इसका साक्षात्कार करें कि सभी शरीर आपके ही हैं और जब आप इसकी अनुभूति करना प्रारम्भ करेंगे तभी आप देखेंगे कि जिस शरीर को आप अपना कहते हैं वह शरीर आपकी आज्ञाओं तथा आपकी अभिलाषाओं का पालन करता है; जिस प्रकार आपकी अपनी इच्छा पर, आपकी अपनी अभीप्सा पर आपके पैर चलने-फिरने लगते हैं; जिस प्रकार आपके आदेश पर आपके हाथ काम करने लगते हैं; जिस प्रकार आप अपनी इच्छानुसार अपने शरीर के द्वारा विभिन्न कृत्यों को करते हुये देखते हैं ठीक उसी प्रकार आप यही अनुभव, यही अनुभूति विश्व के समस्त शरीरों के साथ कर सकते हैं। यह एक तथ्य है। इसका साक्षात्कार किया जा सकता है। यह एक प्रयोगात्मक तथ्य है। यदि आप 'एकता' के सत्य पर अपने मन तथा अपनी ऊर्जाओं को केन्द्रित करें तो आप महसूस करेंगें कि इस संसार के सभी शरीर आपकी इच्छाओं, आपकी अनुज्ञाओं का ठीक उसी प्रकार पालन करते हैं जिस प्रकार आपका तथाकथित अपना एक शरीर व्यवहार करता है। यह एक प्रयोगात्मक सत्य है, इस सत्य पर विश्वास कीजिए, इस सत्य की खूब ठोंक बजाकर परीक्षा लीजिये। यह कल्पना का विषय नहीं हैं। यह एक थोथी चर्चा नहीं है। यह तथ्य उतना ही सत्य है जितना यह शरीर, जिसे आप अपना मानते हैं और स्वीकार करते हैं।

मानव की एकता, मनुष्य का भ्रातृत्व एक कठोर सत्य है। फिर भी थोड़े समय के लिये तर्क के लिये यह मान भी लें कि यह धारणा अव्यवहारिक है, तो इससे क्या होगा? इसके विपरीत, मानव की एकता का साक्षात्कार करने से एक सुख तो आपको तत्काल अनुभव होने लगेगा। कृपया ध्यान दीजिए कि ये अमीर लोग अपनी सम्पति, अपने धन के बारे में क्यों चिन्तित तथा दुखी रहते हैं? कुछ लोग तो बागों पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं तो कुछ बड़े-बड़े हरे भरे घास के मैदानों को अपना बनाना चाहते हैं। कितना दुखद विचार है यह! क्या आप यहां धनाढ्य व्यक्तियों के बागों में या सार्वजनिक बागों में नहीं जा सकते हैं और वहां घंटों-घंटों नहीं बैठ सकते हैं और उसी प्रकार उन बागों से आनन्द नहीं उठा सकते हैं जिस प्रकार वह सज्जन उठाता है जो यह कहता है कि यह बाग मेरा है? क्या आप इनसे सुख नहीं ले सकते है? जो सज्जन उस बाग को अपना कहकर पुकारते है वे क्या वहां के फल-फूलों को चार आंखों से देखते हैं? क्या इन बागो, इन फल-फूलों, इन पल्लिवित कलियों और इन हरे भरे मैदानों को बाग का मालिक उसी प्रकार की दो आंखों से नहीं देखता है जो आपके पास भी हैं? क्या ऐसा नहीं है? वह भी बाग के पक्षियों का कलरव और कोयल की कूक को उसी प्रकार के दो कानों से सुनता है जो आपके पास हैं। तब उस बाग का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए मूर्खतापूर्ण अभिलाषा के बारे में क्यों चिन्ता की जाय और क्यों परेशान हुआ जाय?

राम का आपसे सानुरोध आग्रह है कि आप यह अनुभव करें कि विश्व के सभी बाग आपके अपने हैं। राम का आपसे आग्रह है

कि आप यह अनुभव करें तथा साक्षात्कार करें कि सभी मनुष्यों के शरीर आपके अपने हैं। बस, आप यह अनुभव करें कि सभी प्रतिभाशाली शक्तियां और जन्मगत प्रवीण बुद्धियां सभी आपकी अपनी हैं। यह वह भावना, वह धारणा नहीं है जिसे आप अप्राकृतिक मानें या यह सोचें कि इस तथ्य को किसी न किसी तरह तर्क द्वारा खींच-खांच कर सिद्ध किया गया है। क्या आपको जीवन के उच्च आदर्शों के साक्षात्कार के लिये विभिन्न सद्‌गुणों का अभ्यास नहीं करना पड़ता है। इन सद्‌गुणों की प्राप्ति आपके लिये लाभदायक है। परन्तु आपके लिये इन सद्‌गुणों में से इस सर्वोत्तम सद्‌गुण को प्राप्त करना उचित होगा कि आप सत्यों के सत्य पर, इस वास्तविकता पर कि 'सभी एक हैं, सभी शरीर आपके हैं', आप अपनी ऊर्जा को, अपने विचारों को केन्द्रीकृत तथा ध्यानास्थित करें। आप अपनी शक्तियों,अपने मनोभावों को इसी सत्य पर, इसी वास्तविकता पर एकाग्र करें और निरन्तर यह अनुभव करें, इसकी अनुभूति करें, इस पर आश्वस्त हों कि सभी आपके शरीर हैं। उदाहरण के लिए यह देखें कि इग्लैण्ड़ के सम्राट, रूस के ज़ार, अमरीका के राष्ट्रपति या अन्य कोई भी सम्मानित तथा माननीय महानुभाव सड़कों पर चले जा रहे हैं तो उस समय आप अपने मन में ईर्ष्या या भय का कोई भी विचार न घुसने दें। आप इस बात से आनन्द उठायें कि उनकी राजसी दृष्टि आपकी ही अपनी दृष्टि है और यह अनुभव करें कि "मैं ही वह महान व्यक्ति हूँ और अन्य कोई नहीं हूँ"। उनको आप अपना ही स्वीकार करें। जब आप इस विधा से अनुभव करने का प्रयत्न करेंगे तो आपका स्वयं का अनुभव इस सत्य को सिद्ध कर देगा कि सब एक हैं, हर एक व्यक्ति, यहां तक कि उसके कान,नाक,आंख,पैर आपके अपने

है और यह कि और सभी लोगों का शरीर आपका अपना शरीर है। मनुष्य का भ्रातृत्व! यही तो है सत्य। तर्क शास्त्र इसे सिद्ध कर सके या न कर सके, विज्ञान इसकी पुष्टि कर सके या न कर सके, दर्शनशास्त्र इसे प्रमाणित कर सके या न कर सके, परन्तु यह तथ्य है और इसे अनुभव सिद्ध करता है।

अब राम आपके सामने कुछ तर्क प्रस्तुत करेगा, कुछ कारण बतलायेगा जिनसे मनुष्य के भ्रातृत्व का सत्य सिद्ध होगा, इस सत्य की प्रतिष्ठापना होगी। जब राम इन तर्कों को बतायेगा तब आपको इन तर्कों के निष्कर्षों को अपनी भावनाओं में ग्रहण करने तथा उनको हृदयंगम करने का प्रयत्न करना चाहिए, आपको इन बातों और इन भावनाओं को अपने हृदय में अधिग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए। आपको चाहिए कि राम के मुख से निकलने वाले निष्कर्षों का आप स्वयं साक्षात्कार करने का प्रयत्न करें।

जब राम ने अपने भाषण के लिए 'मनुष्य के भ्रातृत्व' शीर्षक का सुझाव उस सज्जन को दिया जिसने इसके बारे में समाचारपत्रों में विज्ञापन दिया तब यह सुझाव देने के बाद राम को महसूस हुआ कि राम से भूल हो गयी है। 'मनुष्य का भ्रातृत्व' एक भ्रामक विचार है। 'सार्वभौमिक भ्रातृत्व' की भ्रान्तिपूर्ण अवधारणा है। ये विचार लक्ष्य के बिल्कुल सटीक समीप नहीं पहुंचते हैं। 'भ्राता' शब्द में भेदभाव का थोड़ा अन्तर देखने को मिलता है। कभी-कभी देखा गया है कि 'भ्राता' एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं, आपस में युद्ध करते हैं। परन्तु जिस

विषय के मूल पर चर्चा की जानी है उसमें किसी भेदभाव के होने का लेशमात्र प्रश्न ही नहीं उठता है। इसके मूल में 'भ्राता' शब्द से अधिक गहन तत्व निहित है। 'मानव की एकता या समन्वित एकता' का शीर्षक आज की चर्चा का अधिक उपयुक्त शीर्षक होता।

आप कहेंगे कि "स्वामीजी! कृपया हमें 'आत्मा' की कल्पनाओं से परेशान न करें। आत्मा जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, आप उसी 'आत्मा' के बारे में हमेशा चर्चा करते रहते हैं।" ठीक है, वस्तुस्थिति यह है कि यदि आप आत्मा के बारे में बातचीत सुनने के लिए उत्सुक हों भी, तब भी आपकी यह सहमति निरर्थक है, क्योंकि 'आत्मा' बातचीत का विषय है ही नहीं और यह तथ्य आपकी सभी शंकाओं का समाधान कर देता है। इतना तो तय है कि कम से कम 'आत्मा' के क्षेत्र में हम सब एक हैं, कोई भी शब्द 'आत्मा' के बिल्कुल समीप नहीं आ सकता है, कोई भाषा आत्मा के समीप नहीं पहुंच सकती है।

परन्तु जो आत्मा शब्दातीत है, यदि आप उस 'आत्मा' के बारे में चर्चा नहीं सुनना चाहते हैं तो राम इस विषय की स्थूलतम दृष्टिकोण से व्याख्या करेगा। राम अपनी बात स्थूल शरीर से प्रारम्भ करेगा। शरीर तो स्थूल होता है। यदि हम 'आत्मा' की प्रकृति के कारण को छोड़ भी दें, यदि हम 'आत्मा', 'सच्ची आत्मा' पर विचार नहीं भी करें तब भी भौतिक शरीरों द्वारा यही सिद्ध होता है कि आप सभी एक हैं। आपकी बुद्धि भी यही सिद्ध करती है कि आप सभी एक हैं, यहां तक कि भावना के धरातल पर एक हैं। विज्ञान प्रदर्शित करता है कि आप सभी एक

हैं, भौतिक धरातल पर, मानस धरातल पर आप सभी एक हैं। यदि आप इस सत्य की अनुभूति नहीं करते हैं और यदि आप अपने-अपने व्यावहारिक दैनिक जीवन में 'इस भ्रातृत्व' को व्यवहृत नहीं करते हैं, तब आप सर्वाधिक पवित्रतम सत्य का उल्लघंन कर रहे हैं।

आप जानते हैं कि जो व्यक्ति राज्य के कानूनों को भंग करने की कोशिश करता है, उसको दंड मिल सकता है, उसे अपराध के दंड को भोगने से छुटकारा नहीं मिल सकता है। इसी प्रकार, जो व्यक्ति प्रकृति के विधान-इस भ्रातृत्व की अनुभूंति नहीं करता है और दिन प्रतिदिन के अपने जीवन के व्यवहार में इस भ्रातृत्व का अनुशीलन नहीं करता है; उसको अवश्यमेव कष्ट झेलने ही पड़ते हैं। इस ब्रह्माण्ड में जितना भी दुख-दारूण्य है, जितनी भी व्यथाये हैं, जितना भी कष्ट तथा आक्रोश है, उसका कारण यह है कि आप सर्वाधिक पवित्रतम विधान, सर्वोत्तम पवित्रतम सत्य, विधानों के विधान को भंग करने का प्रयत्न करते हैं। यह विधान है-'मनुष्य के भ्रातृत्व कां', नियम है-'सभी की तथा प्रत्येक की एकता का'। अब देखिये, हम सभी के भौतिक शरीर एक समान हैं, एक है। प्रिय आत्मन! आप पूंछ सकते हैं- 'यह कैसे हो सकता है? यह शरीर यहां बैठा है और वह शरीर वहां खड़ा हुआ है। तब फिर सारे शरीर एक कैसे हो सकते हैं?' जिस प्रकार आप महासागर में एक लहर इधर देखते हैं और दूसरी तरंग उधर देखते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित हैं तथा उनके आकार भी विभिन्न हैं, परन्तु वास्तविकता यही है कि लहरें तथा तरंगें दोनों ही एक हैं, क्योंकि दोनों एक ही जल से बनती हैं। वस्तुस्थिति यही

है कि वह एक ही महासागर है जो इन विभिन्न लहरों में दिखायी देता है। जिस जल से यहां अभी एक लहर या तरंग बनी है, वही जल थोड़ी देर बाद दूसरी जगह दूसरी लहर या तंरग बना देगा। ठीक जिस प्रकार लहरों के सम्बन्ध में आप सत्य को देखते हैं, वही सत्य आपके भौतिक शरीरों पर भी लागू होता है। जिस तत्व से शरीर बना है उसी तत्व से कुछ समय बाद दूसरा शरीर बन जायेगा। इतना ही नहीं, ऐसा भी होता है कि जिन भौतिक परमाणुओं से यह शरीर निर्मित प्रतीत होता है, जिसे आप राम का शरीर कहते हैं, वे ही परमाणु राम के जीवन काल में ही दूसरे शरीरों में चले जाते हैं। यही सत्य श्वांस-क्रिया भी सिद्ध करती है। जिस 'आक्सीजन' हवा को अन्दर खींचकर आप श्वांस ले रहे हैं, उसी हवा को आप 'कार्बन डायोक्साइड गैस' के रूप में परिवर्तित करके श्वांस द्वारा बाहर निकाल रहे हैं। इसी 'कार्बन डायोक्साइड गैस' की सांस पेड़-पौधे लेते हैं और फिर वे 'आक्सीजन' के रूप में उसे निकालते हैं। इसी 'आक्सीजन' की श्वांस आप फिर लेते हैं और सांस से कार्बन डायोक्साइड' निकाल बाहर कर देते हैं तथा पेड़-पौधे पुनः यही 'कार्बन डायोक्साइड' ग्रहण करते हैं। इससे आप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि आप पेड़-पौधों से भी भाई की तरह सम्बन्धित हैं, क्योंकि आपकी सांस ये पेड़ ग्रहण करते हैं और उनकी सांस आप अपने अन्दर ले जाते हैं; इस प्रकार आप पेड़-पौधों की सांस लेते हैं और पेड़-पौधे आपकी सांस स्पष्टतः आप बागों, पेड़-पौधों से भी एक ही हैं।

अब मानव की एकता के प्रश्न पर एक दूसरे दृष्टिकोण से

विचार करें। जिस 'आक्सीजन' वायु की आपने सांस ली और वही 'आक्सीजन' बाद में 'कार्बन डायोक्साइड' में परिवर्तित हो जाती है, और उसे पेड़-पौधे पुनः ग्रहण कर 'आक्सीजन' के रूप में उन्मुक्त कर देते हैं। यह वही 'आक्सीजन' है जो आपके भाइयों के फेफड़ों में प्रवाहित होती है। इस प्रकार जो 'आक्सीजन' आपके शरीर में थी, वह कालान्तर में आपके भाईयों के शरीरों में पहुंच गयी। आप उसी हवा का सेवन करते हैं, आप सभी लोग यही करते हैं। इसलिए आप निरन्तर यह अनुभव कीजिये कि आप लोग एक ही हवा की सांस लेते हैं और इन सांसों के परिपेक्ष्य में आप सबके शरीर एक ही हैं। जिस प्रकार आप सभी एक ही पृथ्वी पर रह रहे हैं, उसी प्रकार एक ही सूर्य, एक ही चन्द्रमा, एक ही वातावरण आप सबके चारों ओर होता है। आप फल, शाक-सब्जी या गोश्त खाते हैं या इन सभी चीजों का भोजन करते है। इनसे आपके शरीर की संरचना होती है। इस भोजन को आप मल-मूत्र के रूप में अन्ततः त्याग देते हैं और यही त्यक्त मल-मूत्र खाद बनकर वनस्पतियों तथा फलों में प्रवेश करता है और फिर सभी प्रकार के फल-फूलों तथा शाक-सब्जियों का पुनः प्रादुर्भाव होता है। जिन पदार्थो को आप अपने शरीरों से निकाल बाहर कर देते हैं वे ही पदार्थ जब शाक-सब्जियों के रूप में पुनः प्रकट होते हैं, तब आपके भाई इन्ही चीजों का सेवन करते हैं और ये ही चीजें दूसरों के शरीरों में प्रवेश कर जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो पदार्थ कभी आपका था, वही अल्पातिअल्प काल में दूसरों का बन गया है।

यदि आप किसी सूक्ष्मदर्शी यंत्र से अपनी त्वचा को ध्यान से

देखें तो आप यह निरीक्षण करेंगे कि छोटे जीवित परमाणु आपके शरीर से निकल रहे हैं, अत्यन्त लघुतम परमाणु आपके शरीर से स्वतः निर्गत हो रहे हैं। यही नहीं, ये परमाणु न केवल आपके शरीर से बाहर जा रहे हैं, परन्तु इसी प्रकार के परमाणु आपके शरीर में भी प्रवेश कर रहे हैं। इस प्रकार, कुछ परमाणु तो शरीर से बाहर निकल रहे हैं और कुछ परमाणु उसी शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। यही निरन्तर विनिमय, अदान-प्रदान की प्रक्रिया इस संसार में चलती रहती है। इस प्रकार आपके शरीर से जो जीवित परमाणु निकल रहे हैं वे इसी वातावरण में फैल रहे हैं, उनका विकीर्ण हो रहा है और यही जो जीवित परमाणु अभी तक आपके थे, थोड़े समय बाद आपके साथी के शरीर के परमाणु बन जाते हैं। विज्ञान इस तथ्य को असंदिग्ध रूप से सिद्ध करता है कि आप सभी लोगों के भौतिक शरीर एक ही हैं। कदाचित आप इस सत्य पर विश्वास न करें। पर तथ्य यही है कि आपके मित्रों के शरीरों से जो जीवित तथा अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखे जा सकने वाले छोटे परमाणु निकल रहे हैं, वे ही आपके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं और जो परमाणु आपके शरीर से बाहर आ रहे हैं, वे ही आपके मित्रों के शरीरों में अन्दर जा रहे हैं। प्रश्न यह है कि क्या यह तथ्य सम्भव है? आइये, इस तथ्य का विश्लेषण करें।

क्या आप जानते है कि गंध किस प्रकार बनती है? यह तो आपको मालूम ही है कि गंध का कारण वे छोटे-छोटे जीवित परमाणु हैं जो उन पदार्थों से निकलते है जिन्हें आप सूंघते हैं। फूल इसलिये सुगन्धित हैं, क्योंकि इनसे छोटे-छोटे जीवित परमाणु बाहर निकलते हैं।

यह ऐसा तथ्य है जिसे विज्ञान सिद्ध करता है। आप यहां विभिन्न शरीरों को देखते हैं। क्या उनसे भी गंध नहीं निकलती है? आपकी सूंघने की इन्द्रिय-(घ्रानेन्द्रिय) इतनी अधिक तीव्र नहीं है, या यों कहें, उस प्रकार की नहीं है या उसमें इतनी क्षमता नहीं है कि वह हल्की-हल्की गंध को सूंघ सके या उसका अनुभव कर सके। आपके शरीरों से भी गंध निकलती है। कभी-कभी यहां तक कि आप अपने शरीर को सूंघने लगते हैं। कुत्ते सूंघकर आपको ढूंढ लेते हैं। यदि आपके शरीरों से गंध नहीं निकलती होती तो किस प्रकार कुत्ते सूंघकर आपका पता लगा सकते थे? आपके शरीरों से निकलने वाली सभी प्रकार की गंध सिद्ध करती है कि छोटे-छोटे जीवित परमाणु आपके शरीर को छोड़ रहे हैं और बाहर निकल रहे हैं। दूसरी ओर उसी समय दूसरों के शरीरों से निकलने वाले इसी प्रकार के परमाणु आपके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। इस दृष्टि से आप सभी एक हैं। ओह! आप सभी का एक ही प्रकार का शरीर है! इस गंध का अनुभव कीजिये। गंध के इस संदर्भ में आप सब लोगों के शरीर एकात्मक हैं। एक व्यक्ति बीमार है, आप उसे देखने जाते हैं तो उसका कमरा, उसका कक्ष उसकी बीमारी की गंध बिखेरता रहता है। एक व्यक्ति है जो चेचक या प्लेग या हैजा जैसे संक्रामक रोग से पीड़ित है। दूसरे लोग उसे देखने जाते हैं। यह कैसे होता है कि ये दर्शक उस संक्रामक रोग से ग्रसित हो जाते हैं। इसका एक ही कारण है और वह यह है कि रोगी के शरीर से जो छोटे-छोटे जीवित परमाणु निकल रहे हैं, वे आपके शरीर में घुस जाते हैं। क्या इससे यह प्रदर्शित नहीं होता है कि जो परमाणु बीमार व्यक्ति के शरीर से निकलते हैं, वे आपके शरीर से चिपक जाते हैं ? इस प्रकार आप

संक्रामक रोगों के परमाणुओं को ग्रहण कर लेते हैं और फलस्वरूप बीमार पड़ जाते है। एक व्यक्ति सर्दी-जुकाम से पीड़ित है, दूसरा व्यक्ति उसके साथ रहता है और यदि इस दूसरे व्यक्ति की बहुत नाजुक प्रकृति है तो वह भी सर्दी-जुकाम से ग्रसित हो जायेगा। एक व्यक्ति यक्ष्मा रोग से पीड़ित है। दूसरा व्यक्ति उसके संसर्ग से इस संक्रामक रोग का शिकार बन सकता है। जिन जीवित परमाणुओं से आपके बीमार भाई के शरीर की संरचना होती है, यदि वे जीवित परमाणु उसके शरीर से बाहर नहीं निकलते और वे आपके शरीर में घुसकर आपके अभिन्न अंग नहीं बनते तो आप किस प्रकार उस संक्रामक रोग से पीड़ित हो सकते थे? इससे यही प्रदर्शित होता है कि आप सभी एक हैं। 'आत्मा' के बारे में यदि कुछ भी नहीं कहा जाय फिर भी तथ्य यही है कि आपके भौतिक शरीर सभी एक ही हैं।

इन तथ्यों से राम एक विचित्र, विलक्षण निष्कर्ष निकालता है। यदि एक व्यक्ति बीमार पड़ता है तो उसकी बीमारी का मुख्य अभिप्राय क्या है, उसकी बीमारी से उसका कौन सा उत्तरदायित्व जुड़ा है? वह बीमार है, वह स्वयं कष्ट भोग रहा है, यह सब सही है। पर क्यों? क्योंकि वह अपनी स्वयं की अज्ञानता से पीड़ित है और इसीलिये कष्ट भोगता है। पर क्या वह अपनी बीमारी के लिए सम्पूर्ण संसार के प्रति उत्तरदायी नही है? वह बीमार है और वह अपने रोग-ग्रस्त शरीर के माध्यम से अनजाने ही अपनी बीमारी के कीटाणुओं का बाहर संचार कर रहा है। राम को बीमार पड़ने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिये नहीं कि बीमारी से राम को कष्ट और दर्द होगा, वरन् इसलिए क्योंकि

राम अपने शरीर की बीमारी के लिए सम्पूर्ण विश्व के प्रति उत्तरदायी है। आपको बीमार होने का कोई अधिकार नहीं है। आप अपनी बीमारी के लिए सम्पूर्ण विश्व के प्रति उत्तरदायी हैं, क्योंकि रोग-ग्रस्त आपका शरीर सम्पूर्ण विश्व को बीमार बना रहा है, वह बीमारी के विषाक्त कीटाणुओं को जन्म दे रहा है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अत्यधिक सतर्क होना चाहिए। बीमारी न केवल शारीरिक रोग है, वरन् वह नैतिक रोग भी है। आपको अपने शरीर को स्वस्थ्य तथा हृष्ट- पुष्ट रखने के लिये सदैव सतर्क और सावधान रहना होगा। जब आप कोई चीज खा रहे हों या कोई चीज पी रहे हों, तब आप न केवल अपने स्वयं की व्यक्तिगत शारीरिक सुख-सुविधा के लिए, अपितु सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के प्रयोजन के लिए सतर्क बने रहें। अत्यधिक भोजन मत खाइये, अत्यधिक पेय न पीजिए। आप निरन्तर सतर्क रहिये।

आप इस बात पर भी विचार करें कि जो व्यक्ति स्वस्थ है, उसका बीमार व्यक्तियों के प्रति क्या कर्तव्य है? जो लोग स्वस्थ हैं, उन्हें इस आधार पर बीमार व्यक्ति की सेवा-सुषूसा नहीं करनी चाहिए कि वे बीमार के प्रति कृपा या अनुग्रह कर रहे हैं, अपितु उन्हें यह भान होना चाहिए कि वे सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए उनकी सेवा कर रहे हैं। आपको पूरे संसार की भलाई के लिए, मानवता तथा सत्य के हित में, सार्वभौमिक भ्रातृत्व के नाम पर, अपने स्वयं की भलाई के लिए बीमार व्यक्तियों की देखभाल तथा सेवा सुषूसा करनी होगी। यह बीमार के प्रति आपकी कोई अनुकम्पा नहीं हैं, वरन् बीमार की सेवा करना और उसको पुनः स्वास्थ्य लाभ यथाशीघ्र सुलभ कराने में सहायता देना

मानवता के प्रति आपका दायित्व है। तब आप देख सकेंगे कि मानव के जो शरीर इतने विचित्र तथा विविध प्रतीत हो रहे हैं, वे सभी एक दूसरे के लिए कष्ट उठा रहे हैं। शारीरिक धरातल पर आप सभी भाई-भाई हैं जो सामान्य हाड़-मांस, रक्त और रचना के सर्वाधिक पवित्र बंधनों द्वारा एक दूसरे से बंधे हैं। चिकित्सा-विशेषज्ञ सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक सात वर्ष बाद, प्रत्येक व्यक्ति का शरीर पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है। शरीर के प्रत्येक परमाणु का स्थान दूसरा नया परमाणु ले लेता है। इस तथ्य से यह भी शिक्षा मिलती है कि जिन परमाणुओं से शरीर में बदलाव आ रहा है और जो परमाणु निरन्तर परिवर्तन-प्रक्रिया के अधीन कार्य कर रहे हैं, उनसे बने हुए शरीर को आपको 'केवल मेरा या केवल तेरा' कहने का कोई अधिकार नहीं है।

राम को यह अधिकार नहीं है कि वह इस शरीर को अपना कहे और उस शरीर को आपका! यह शरीर तो प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है और जिस शरीर को राम इस क्षण अपना बतला रहा है वह सदैव अपरिवर्तित, बदलाव-रहित नहीं रह सकता है। वह क्या है, जिसे राम अपना कहता है? जो शरीर राम का अब है, वह सात वर्ष पूर्व किसी दूसरे व्यक्ति का शरीर था। जो शरीर राम का चौदह वर्ष पहले था, वह अब किसका है, उसका स्वामी कौन है? वह शरीर तो अब तक अनेक व्यक्तियों का हो गया। इसलिए, जिस शरीर को आप अपना कह रहे हैं, वह सबका है। कृपया इस सत्य की अनुभूति कीजिए। शारीरिक धरातल पर भी आप सभी एक हैं।

अब आइये, 'मनुष्य के भ्रातृत्व' पर मानसिक धरातल पर

विचार करें। आपके बाल उगते हैं, बढ़ते हैं, आपकी नस-नाड़ियों में रक्त का संचार होता है। कृपया ध्यान दें। वह क्या है जो आपके बालों का बढ़ा रहा है? क्या वह एक ही शक्ति नहीं है जो आपके और आपके साथियों के बालों को बढ़ा रही है? क्या आप अपने बालों को बढ़ाने वाली और दूसरों के बालों को बढ़ाने वाली शक्तियों में किसी प्रकार के भेदभाव की परिकल्पना कर सकते हैं? वह क्या है जो आपकी नस-नाड़ियों में रक्त का संचार कर रही है? क्या वह एकमात्र शक्ति नहीं है जो हर एक की तथा सभी की नस-नाड़ियों में रक्त प्रवाहित कर रही है? वह क्या है जो आपके पेट में भोजन को पचा रही है? क्या वह एकमात्र शक्ति नहीं है जो हर एक के तथा सभी के पेटों में भोजन की पाचन-क्रिया को सम्पादित कर रही है? कृपया आप अपने मस्तिष्क के सामने यह सत्य निरन्तर रखें और इसकी अनुभूति करें, भले ही वह क्षण भर के लिये हो। ओह! आप देखेंगे आश्चर्यों का आश्चर्य! राम कौन है? क्या राम वह शक्ति नहीं है जो बालों को बढ़ाता है, जो भोजन को पचाता है और जो नस-नाड़ियों में रक्त का संचार करता है? यदि राम वही एकमात्र शक्ति है, तो राम अखण्ड है, एक है, हर एक के तथा सभी के शरीरों मे विद्यमान है। तब राम एकमात्र अखण्ड, परिभाषातीत, अविनाशी, अप्रमेय शक्ति है जो सभी शरीरों को नियंत्रित तथा प्रशासित कर रही है। कृपया इस सत्य का अनुभव कीजिए। यह सत्य मानसिक धरातल का है। आप सभी एक हैं। समस्त लोग एक हैं, कोई अन्तर, कोई भेदभाव नहीं है। इस तथ्य की अनुभूति कीजिए। उस एक शरीर को, जिसे आप अपना कहते हैं, जब वह भूख से तड़पता है तो आप दुखी क्यों होते हैं? यह विशेष शरीर, जिसे आप अपना

कहते हैं, जब वह बीमार पड़ता है, तब आप क्यों दुखी, पीड़ित तथा अप्रसन्न होते है? वे सभी व्यक्ति, जो स्वस्थ हैं, आप ही तो हैं, आपके अतिरिक्त तो नहीं हैं। इस सत्य का अनुभव कीजिए, इस सत्य का साक्षात्कार कीजिए।

दूसरों के प्रति आपका क्या दायित्व है? जब दूसरे व्यक्ति बीमार पड़ें, उन्हें आप अपने पास लायें। उनके घावों की उसी तत्परता और उसी भावना से उपचार करें तथा उनकी सेवा करें, जिस प्रकार आप अपने इस विशेष शरीर के घावों की करते हैं। आप यह मान लें कि सभी आपके हैं। दूसरों के प्रति आपका उत्तरदायित्व, उनका उन्नयन करना है, अपनी ही भांति उनको भी महसूस कराना है, अपनी ही तरह उनके साथ सहानुभूति करनी है। आपका कर्तव्य अपने आपके शरीर के प्रति यह है कि आप अपने को सभी परिस्थितियों में प्रसन्नचित और आनन्दित रखें। सभी प्रकार की चिन्ताओं और क्लेशों से दूर रहें, उनकी अवहेलना करें।

आइये, 'मनुष्य के भ्रातृत्व' के विषय में मनोवैज्ञानिक धरातल और भावनात्मक धरातल पर विचार करें। भावना के धरातल पर भी आप सभी एक हैं। मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी आप सभी एक हैं। यह सत्य है, तथ्य है, इसका साक्षात्कार करें। यहां एक वीणा रखी है। यह तार वाला वाद्य यंत्र भली प्रकार सन्तुलित तथा बिल्कुल ठीक-ठाक कसा हुआ है। इस वीणा के सामने इसी प्रकार की दूसरी वीणा भी रखी है। ये दोनों वाद्य यंत्र एक ही प्रकार के हैं और समान रूप से

कसे हुये हैं। जब आप एक वीणा का कोई एक तार बजायेंगें तब आप देखेंगे कि सामने रखी हुई वीणा से उसी प्रकार की झंकार निकल रही है। जब आप एक वाद्य यंत्र के किसी एक तार को झंकृत करेंगे और उससे जो संगीत लहरी पैदा करेंगे, उसी प्रकार की संगीत लहरी उसी के सामने रखे दूसरे समान वाद्य यंत्र से भी निकलेगी। यह क्या है? कारण यह है कि जो विकम्पन, जो लहरी एक वाद्य यंत्र से निकलती है, वही विकम्पन और वही लहरी सामने रखे वाद्य यंत्र में भी विद्यमान है। यदि आप किसी एक भावना से अभिभूत हों तो आपका पड़ोसी भी उस भावना से प्रभावित हो जाता है। आप देखते हैं कि नाट्य-मंचों पर, नाट्य -अभिनयों में अभिनेता सभी प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं। ये भावनाएं सच्ची नहीं होती हैं। एक ओर ये अभिनेता रोने लगते हैं, तो दूसरी ओर हंसने लगते हैं। उनकी भावनायें सच्ची नहीं होती हैं, फिर भी यह देखा गया है कि जब अभिनेता अपने उत्कृष्ट अभिनय में प्रलाप या चिल्लाने लगता है तब दर्शक भी प्रभावित हो उठते हैं और यहां तक कि कभी-कभी उनके आंखों से आंसू निकलने लगते हैं। यह क्या है? जब आपके एक मन या आपकी एक भावना की वीणा को झंकृत किया जाता है तब आप सभी के मनों तथा भावनाओं की वीणायें भी उसी प्रकार झंकृत होने लगती हैं। यदि आप सभी के एक प्रकार के मन न होते, यदि आप सभी की भावनायें तथा मन एक न होते, यदि आप सभी मनुष्यों के मनोवैज्ञानिक अस्तित्व एक दूसरे से भाइयों की भांति सम्बद्ध न होते और एक नहीं होते तो एक ही प्रकार की झंकार और संगीत लहरी निकलना असम्भव होता। यदि आप सभी के मन एक दूसरे से उसी प्रकार जुड़े न होते जिस प्रकार पानी की विभिन्न

लहरें एक-दूसरे से सम्बद्ध होती है, यदि आप सभी के मन एक ही महासागर की लहरें तथा तरंगें नहीं होती तब भाई-चारे, भ्रातृत्व की भावनाएं असम्भव होतीं।

विज्ञान बतलाता है कि यदि एक शरीर की क्रिया का प्रभाव दूसरे शरीर पर पड़ता है तो दोनों शरीरों के बीच निरन्तरता होनी चाहिए। कोई भी शक्ति निरन्तरता के विधान का उल्लंधन करके कार्य नहीं कर सकती है। एक ठोस,कठोर मेज या डेस्क को लीजिए। इसे किसी एक बिन्दु से उठाइये तभी वह पूरी की पूरी हिल जायेगी। कारण यह है कि जिस बिन्दु से आपने मेज को उठाया है, उस बिन्दु का कठोर और अविछिन्न सम्बन्ध अन्य बिन्दुओं से है। यदि किसी शक्ति को क्रिया करनी है तो उस शक्ति को निरन्तर क्रिया के अनुसार कार्यरत होना पड़ेगा। यह भी देखिये कि एक मनुष्य की भावनाओं का प्रसारण दूसरे मनुष्य तक कैसे हो जाता है। यदि एक मनुष्य का हृदय दूसरे मनुष्य के हृदय के साथ सतत और निरन्तर माध्यम द्वारा सम्बद्ध नहीं होता तो भावनाओं का यह संचार और प्रसारण असम्भव था। इसी प्रकार यदि आप सभी लोगों के हृदय एक दूसरे से सतत निरन्तर तथा कठोर प्रक्रिया के माध्यम से नहीं जुड़े होते, तो एक व्यक्ति की भावनायें कभी भी दूसरे व्यक्ति के पास नहीं पहुँच पाती। यह एक निरापद सत्य है। क्या आप नहीं देखते हैं कि एक व्यक्ति की भावनाओं का दूसरे व्यक्ति तक संचार करने का ठोस तथ्य आपको यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य नहीं करता है कि आप सभी के मस्तिष्क एक दूसरे से एक शरीर की भांति सम्बद्ध हैं? कहने का तात्पर्य यह है कि विचार तथा भावनाओं में एकता तथा ठोसपन है।

राम ने बहुधा यह देखा है कि जब राम भाषण करते हुए हंसता है तभी हर एक श्रोता भी अपने आप हंसने लगता है। यह भी देखा गया है कि जब एक मनुष्य चिल्लाने लगता है तभी दूसरे मनुष्यों के मन कोमल और संवेदनशील बन जाते हैं। यदि एक व्यक्ति गाना गा रहा है तो उस व्यक्ति के आसपास बैठे अन्य व्यक्ति गायन के प्रकम्पनों की अनुभूति करने लगते हैं। राम ने यह भी देखा है कि जब एक मनुष्य गाना गाना प्रारम्भ करता है तो दूसरे व्यक्ति भी उसके साथ गाने और गुनगुनाने लगते हैं। यह एक तथ्य है। यदि आप सभी लोगों की भावनायें तथा मस्तिष्क एक समान नहीं होते तब यह सब कैसे सम्भव होता? कृपया इस तथ्य पर ध्यान दें। हम विभिन्न पदार्थों के बारे में ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते हैं? हम इन चीजों, या उन पदार्थों की जानकारी अपने मित्रों तथा अन्य लोगों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। यदि शिक्षक तथा शिक्षार्थी का एक ही प्रकार का मन न होता और यदि मानसिक धरातल पर कोई भ्रातृत्व न होता तो शिक्षक अपने विद्यार्थी को कैसे शिक्षा दे सकता था? कारण यह है कि एक मनुष्य के मन का दूसरे मनुष्य के मन से सीधा प्रसारण होता है, सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है, तभी शिक्षक का ज्ञान शिष्य का ज्ञान बन जाता है। यदि दोनों के मन एक दूसरे से सीधे सम्बन्धित न होते तो क्या यह संचार और प्रसारण सम्भव हो सकता था? आप यह भी जानते हैं और अनुभव भी यह सिद्ध करता है कि जब आप सच्चे भाव से अपने किसी विशेष मित्र के लिए भावातुर होते हैं और किसी व्यक्ति विशेष के लिये प्रेम, दया, कृपा, उदारता और प्रशस्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत होते हैं, तभी वह व्यक्ति, चाहे वह आपसे हजारों मील की दूरी पर क्यों न बैठा हो, आपके द्वारा अभिव्यक्त

किये गये प्रकम्पनों का अवश्य ही अनुभव करता है। इस तथ्य की सच्चाई की परीक्षा तो करें। राम प्रतिदिन इस तथ्य के सत्य का परीक्षण करता है। सैकड़ों-हजारों मीलों की दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता है। क्या यह तथ्य इस सत्य की पुष्टि नहीं करता है कि आप सभी लोगों के मनों का एक ही धरातल है और ये मन आपस में धनिष्ठतम रूप से आवद्ध हैं? मानसिक धरातल पर आप सभी भाई-भाई हैं।

इस संसार में अपराधियों तथा आतताइयों की उत्पत्ति कैसे होती है? एक आदमी आता हैं और आपकी भावनाओं को आहत कर जाता है। पर यह आदमी आप से बहुत ही अधिक शक्तिशाली और बहुत ही कठोर है। इसलिए आप केवल उसे कोसने, उससे घृणा करने के विचार ही व्यक्त करते हैं, क्योंकि आप इन विचारों को कार्यरूप देने में अक्षम हैं, आप कमजोर हैं। यही शक्तिशाली, बलवान व्यक्ति अन्य दूसरे विनीत व्यक्ति की भावनाओं को भी चोट पहुंचाता है। यह विनम्र व्यक्ति भी उसके व्यवहार का प्रतिवाद करना चाहता है पर वह उसके विरूद्ध कुत्सित विचार ही व्यक्त करता है, क्योंकि वह भी कमजोर है, इसलिए अपनी भावनाओं को कार्यान्वित नहीं कर पाता है। यही बलवान व्यक्ति तीसरे आदमी की भावनाओं को मसलता है, यह तीसरा व्यक्ति भी गरीब है और इस आततांई व्यक्ति पर सीधे ढंग से प्रतिकार स्वरूप कोई चोट नहीं कर पाता है। इसी प्रकार यह क्रूर व्यक्ति अन्य लोगों के साथ व्यवहार करता रहता है और इससे पचासों, सैकड़ों व्यक्तियों को कष्ट उठाने पड़ते हैं। पर एक समय ऐसा भी आता है जब

इस आततांई का सामना उससे अधिक बलिष्ठ तथा ताकतवर व्यक्ति

से होता है। इस बलिष्ठ व्यक्ति के सामने पहले का आतताई कुछ भी नहीं है। चूंकि पहले का आतताई आदमी नये बलिष्ठ व्यक्ति की भावनाओं को एक प्रकार से ठेस पहुंचाता है, इसलिये यह नया बलिष्ठ व्यक्ति इस सीमा तक आक्रोश से, क्रोध से आपे से बाहर हो जाता है कि वह यह नहीं सोचता है कि उक्त पहले आततायी व्यक्ति ने आखिरकार उसका कितना अपमान किया, और वह बिना सोचे-विचारे उठ खड़ा होता है और अपने हाथ में बंदूक लेकर पहले वाले आतताई व्यक्ति की जीवन-लीला समाप्त कर देता है। इस प्रकार पहले वाले आतताई व्यक्ति का अन्त होता है और दूसरे बलिष्ठ व्यक्ति को पुलिस अपराधी के रूप में पकड़कर ले जाती है।

यह मामला न्यायाधीश के पास निर्णय के लिये लाया जाता है। न्यायाधीश इस मामले की छानबीन करते हैं। उन्हें यह जानकर आश्चर्य होता है कि पहले वाले आततायी व्यक्ति द्वारा इस बलिष्ठ व्यक्ति का जितना अपमान किया गया था, उसके हिसाब से उसे इतना अधिक क्रोधित नहीं होना चाहिये था। उसका अपमान तो बहुत थोड़ा हुआ था, परन्तु इससे बलिष्ठ अपराधी में उत्पन्न क्रोध भयावह था। न्यायाधीश इस पर अचम्भा प्रकट करते हैं, समाचार पत्रों में इस घटना को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। यह बलिष्ठ अपराधी अत्यन्त तुनक मिजाज था, वह अत्यन्त दुराचारी था. फलतः वह थोड़े से अपमान से इतना अधिक क्रोधित हो उठा कि उसने हत्या जैसा जघन्य अपराध कर दिया। क्या ऐसी घटनायें दिन-प्रतिदिन नहीं होती हैं? न्यायाधीश और समाचार पत्र इस घटना की व्याख्या नहीं कर पाते हैं कि इस प्रकार का भयंकर

क्रोध इतने छोटे से अपमान से क्यों उत्पन्न हुआ? वेदान्त दर्शन इसको स्पष्ट करता है।

वेदान्त कहता है कि मानसिक धरातल पर एक प्रकार की संयुक्त पूंजी कम्पनी अर्थात् "ज्वाइंट स्टाक कम्पनी" होती है। आप जानते ही हैं कि ऐसी कम्पनियों में अनेक हिस्सेदार या भागीदार होते हैं। इस कम्पनी का एक प्रबन्धक या संचालक होता है। इस प्रकार जब मौलिक अपराधी ने आपकी भावनाओं को आहत किया और आपको उत्तेजित किया तो आपने इस व्यक्ति के विरूद्ध घृणा और शत्रुता की भावनाओं का संचार किया और इस प्रकार आपने घृणा तथा विद्वेष की कम्पनी में इस व्यक्ति के विरूद्ध आक्रोश तथा घृणा का अपना हिस्सा और अपना अंशदान जमा किया। जब दूसरे व्यक्ति का भी अपमान हुआ तो इसी प्रकार दूसरे व्यक्ति ने भी आक्रोश तथा घृणा के अपने हिस्से का अंशदान किया। जब तीसरा व्यक्ति अपमानित हुआ तो उसने भी घृणा तथा विद्वेष की इस कम्पनी में अपने हिस्से का भुगतान किया। इसी प्रकार चौथे, पांचवें, छठे आदि अनेकानेक लोग इस कम्पनी में अपना योगदान उस समय तक करते रहे जब तक कि इस कम्पनी की कार्य-पूंजी पूरी तरह एकत्र न हो गयी। तभी यह कम्पनी अपना कामकाज प्रारम्भ करती है। आप यह भी जानते हैं कि जब तक कम्पनी के आवश्यक हिस्सों अर्थात् शेयरों की पूंजी जमा नहीं हो जाती है तब तक व्यापार शुरू नहीं किया जा सकता है। जब कम्पनी के पर्याप्त हिस्सों की पूंजी जमा हो जाती है तभी उसका संचालक बनाया जाता है। इस घृणा तथा विद्वेष की कम्पनी के आवश्यक हिस्सों की पूंजी जमा होने पर उसका संचालक एक बलिष्ठ व्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ । जब इस बलिष्ठ व्यक्ति

का अपमान किया गया तो फिर क्या था? आध्यात्मिक सादृश्य या आध्यात्मिक एकता के विधान के अनुसार जिस क्रोध का प्रसारण पहले, दूसरे, तीसरे,चौथे, पांचवे, तथा सैकड़ों लोगों ने किया था, इन सभी क्रोधों को समन्वित रूप से इस संचालक के सामने प्रस्तुत किया गया। ये सभी क्रोध एक-दूसरे से आकर्षित होकर, एक होकर और एकत्रित होकर इस संचालक के व्यक्तित्व में समाहित हो गये और फिर जिस मौलिक अपराधी ने सर्वप्रथम संचालन का थोड़ा सा अपमान करने की कोशिश की थी, उसने क्रोधाग्नि से आग-बबूला होकर उसे गोली मार दी और उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार यह व्यक्ति, जो क्रोध तथा घृणा की कम्पनी का संचालक था, अन्ततः अपराधी बन गया।

राज्य या प्रशासन केवल इसी व्यक्ति को, इसी संचालक को दण्ड देगा, परन्तु ईश्वर की निगाह में, दिव्यता या सत्य की दृष्टि में वे सभी लोग, जो इस घृणा तथा शत्रुता की कम्पनी के हिस्सेदार हैं, वे सभी लोग हत्यारे हैं। आप भी हत्यारे हैं क्योंकि आपने भी घृणा या शत्रुता की भावनाओं को व्यक्त किया था। जिस प्रकार, वह व्यक्ति जिसने हत्या की थी, दोषी है, उसी प्रकार आप भी दोषी हैं। ईसा मसीह ने कहा था कि "इतना ही पर्याप्त नहीं है कि आप स्वयं हत्या न करें, वरन् यह भी आवश्यक है कि आप घृणा, विद्वेष की भावनाओं के प्रसारण से विरत रहें, उससे दूर रहें।" जो व्यक्ति अपने साथी से घृणा करता है, वह भी उतना बड़ा हत्यारा है जितना वह व्यक्ति जो वास्तविक रूप से हत्या करता है। ऐसा क्यों है? इससे यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि अपमान बहुत थोड़ा होता है, परन्तु उस अपमान की तुलना में उन लोगों

का क्रोध और आक्रोश कहीं अधिक होता है, उन लोगों का क्रोध सीमा पार कर जाता है जो गुस्से में आकर हत्या कर बैठते हैं। आप देखेंगे कि हत्यारे के अतिभयंकर क्रोध और विद्वेष को उत्पन्न करने में केवल उसी एक मनुष्य के व्यक्तिगत क्रोध की उत्तेजना शमिल नहीं है, वरन् उन सभी भाइयों का क्रोध भी, हत्यारे के क्रोध को उभारने के लिये उत्तरदायी है जिनका सारे का सारा क्रोध मिलकर हत्यारे के सामने आता है और हत्यारे को क्रोध के बशीभूत कर देता है। फिर तो हत्यारा पागल हो जाता है और उसके साथियों का गुस्सा हत्यारे पर हावी हो जाता है। वह यह नहीं सोचता है कि जिस व्यक्ति की हत्या की जा रही है, उसने उसका बहुत थोड़ा ही अपमान किया था और उसके लिये हत्या उचित दण्ड नहीं है। लोग कहते हैं कि जिस प्रकार कभी-कभी मनुष्य पर दानव हावी हो जाता है या उसे भूत दबोच लेता है, उसी प्रकार आप भी अपने साथियों के प्रति क्रोध के अधीन वशीभूत हो जाते हैं। एक बार आप क्रोध के पराधीन हुए, फिर तो आप आग-बबूला हो जायेंगे और गुस्से से नशे में पागल हो जायेंगे। इस स्थिति में आप प्राणघातक अपराध भी कर सकते हैं। लोग इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि अपमान की मात्रा का अनुपात से अधिक गुस्सा क्यों उत्पन्न होता है, क्यों अधिक उत्तेजना पैदा होती है? अनाधिकारपूर्ण तथा अनुचित क्रोध के एकत्र होने के कारण ही हत्यारे पैदा होते हैं।

यदि आप विश्व का इतिहास पढ़ें तो देखेगें कि आतंक और अत्याचार के शासन के कारण तत्कालीन सभी लोग यही प्रार्थना करते हैं कि कोई ऐसा लौह-पुरूष पैदा हो जो परिस्थितियों को ठीक कर दे

और जो अनियंत्रित भीड़ को अनुशासन में कर ले। हर एक व्यक्ति लोगों की बिखरी भीड़ को नियत्रित देखना चाहता है, परन्तु ऐसा करने की शक्ति उस व्यक्ति में नहीं होती है। अब देखिये, हर एक की और सभी लोगों की व्यक्तिगत तथा सम्मलित रूप से यही इच्छा है कि ऐसा व्यक्ति आये जो विद्रोह करने वाले लोगों को काबू में रख सके। उदाहरणार्थ फ्रांस में ''नैपोलियन'' के रूप में ऐसा व्यक्ति प्रकट हुआ। नैपोलियन ठीक उस समय आया जब उसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। उसमें हजारों को नहीं, अपितु करोड़ों लोगों की शक्ति निहित थी। जो नायक होते हैं, उनमें लाखों-करोड़ों लोगों की ताकत कहां से आती है? देखिये, एक पूरी की पूरी सुसज्जित सेना नैपोलियन को पकड़ने के लिये आती है, पर नैपोलियन अकेले ही, बिल्कुल अकेले, उस सेना के सामने जाता है और उस पूरी सेना को आज्ञा देता है-''रुको, फौरन रुको''। फिर नैपोलियन की आज्ञा के अनुसार पूरी सेना रुक जाती है। नैपोलियन ऐसा व्यक्ति था जिसने उन हजारों सैनिकों को डांट लगाकर चुप करा दिया जो उसे पकड़ने आये थे। लोग इस प्रकार के तथ्य सुनकर अचम्भित हो जाते हैं। ऐसे प्रकरणों की व्याख्या वेदान्त करता है।

वेदान्त स्पष्ट करता है कि हजारों लोगों के विचार, हजारों लोगों की शक्ति उस एक व्यक्ति, उस एक नायक में कैसे संचित हो जाती है? वस्तुतः हजारों व्यक्तियों की लालसा एक ऐसे नायक को प्राप्त करने कीं होती है जो उनकी सहायता कर सके। इन लोगों के विचार संग्रहीत होते हैं, फलतः उस नायक का उद्भव होता है। इस दृष्टिकोण से नैपोलियन को आत्मोन्नति या आत्म- प्रशस्ति का श्रेय लेने का कोई

अधिकार नहीं है, किसी भी नायक को इस प्रकार के श्रेय लेने का विचार नहीं करना चाहिए। नायक! आप भी नायक हो सकते हैं। यदि आप में लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की शक्ति सन्नहित हो जाय, तो आप भी लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का मूर्तिमान समन्वित रूप बन जाते हैं। आपका वह दिव्य व्यक्तित्व कहां से आता है जिसे विशेष रूप से पाल-पोसकर बनाया गया था? वास्तविकता यही है कि लाखों-अरबों व्यक्तियों की भावनायें आपके माध्यम से काम कर रही होती हैं। एक दूसरा उदाहरण शेक्सपियर का लीजिए। आप जानते है कि शेक्सपियर एक महान नाटककार था, नाटय-लेखक था। आज के युग में किसी शेक्सपियर की आवश्यकता नहीं है। उस युग में लोगों को शेक्सपियर की आवश्यकता महसूस हुई और शेक्सपियर प्रकट हो गया। वह नाट्य-कला का युग था, वह युग था जब लोग रंगमंच पर नाटकों को देखने के लिए उत्सुक रहा करते थे। वह काल ऐसा था जब नाट्य लेखकों तथा नाट्य-अभिनेताओं की मांग थी, अभिनीति नाटक लोग देखना पसन्द करते थे। जनता ऐसे लोगों को चाहती थी और लाखों-करोड़ों लोगों के मन तथा विचार ही ऐसे बन गये थे जिनसे शेक्सपियर का प्रार्दुभाव हुआ। आप यह भी देखें कि शेक्सपियर या अन्य कोई महान व्यक्तित्व अकेले प्रकट नहीं होता है। हम देखते हैं कि शेक्सपियर के साथ मारलो, ब्यूमाउन्ट,फलेचर आदि जैसे अनेकानेक तेजस्वी व्यक्तियों, प्रतिभा-सम्पन्न महापुरूषों तथा दार्शनिकों का भी उदय हुआ, फलतः हमको उसी तरह के समकक्ष साहित्य का अपार भंडार प्राप्त हुआ। यहां आप देखें कि उस समय लोगों की ऐसी परिस्थितियां थीं, ऐसा वातावरण था, जिनमें लोग एक दिशा में अपने विचारों, अपनी

भावनाओं का प्रेषण करते थे। रासायनिक एकता का सिद्धान्त भी यही सिद्ध करता है कि ये सारे विचार अन्ततः एक शरीर में केन्द्रीभूत होते है। फलतः शेक्सपियर उत्पन्न हुआ। आप यह भी देखें कि यदि लाखों करोड़ों लोगों के विचार केन्द्रीभूत न होते या समन्वित नहीं होते तो क्या कभी ऐसा हो सकता था कि आपके मधुर भाषी, विनीत स्वर वाले शेक्सपियर और आपके अन्य सम्मानित वक्ता,श्रोताओं की बड़ी-बड़ी भीड़ को मंत्र मुग्ध बनाये रख सकते थे या एक व्यक्ति हजारों लोगों पर नियंत्रण रख सकता था, अथवा किसी सेना नायक का एक शब्द ही लाखों- करोड़ों लोगों के लिये कानून का रूप ले सकता था या एक महापुरूष लाखों-अरबों व्यक्तियों को ऊर्जा तथा कर्मशीलता के मंत्र से ओतप्रोत कर सकता था। इस परिपेक्ष्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे नैपोलियन हो या शेक्सपियर, ये सब आपकी ही कृतियां हैं, आप ही इनके सृष्टिकर्ता हैं। आपकी भावनायें और आपके विचार समभाव से उनकी भावनाऐं और उनके विचार बन जाते हैं। ये ऐतिहासिक तथ्य हैं और इन तथ्यों को हम प्रतिदिन अपने चारों ओर घटित होते देखते हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी आप सभी एक हैं।

धर्म-युद्धों अर्थात् क्रुसेडों का मूल कारण क्या था? ये युद्ध क्यों हुये? बस एक व्यक्ति ने जेरूसलम की दशा की, हृदय के अन्तस्थल से, अत्यन्त गम्भीरता से अनुभूति की। वह यूरोप वापस आया और उसने जेरूसलम की दुर्दशा का यूरोपियन लोगों के सामने अत्यन्त भावुकतापूर्वक विवरण प्रस्तुत किया। उसने वहां की दुर्दशा बतायी, उसकी जानकारी दी, वह दुर्दशा पर रोया-चीखा-चिल्लाया। केवल एक ही व्यक्ति ने

इस दुर्दशा को हृदयंगम कर उसकी इतनी अधिक अनुभूति की थी कि उसकी तथा अन्य लागों की भावनायें एक समान हो गयीं, उस एक व्यक्ति की भावनाएं सभी अन्य लोगों की भावनायें बन गयीं। इन सब लोगों ने मिलकर तुर्कों तथा मुसलमानों के विरुद्ध हथियार उठा लिये। इस प्रकार धर्म-युद्ध शुरू हुये। अमरीका में स्वतंत्रता-युद्ध किस प्रकार प्रारम्भ हुआ। इसी तरह के एक ही व्यक्ति ने,जो अमरीका के प्रथम कांग्रेस अर्थात् संसद का राष्ट्रपति बना, जब यह देखा कि लोग उससे सहमत नहीं है, तो उसने अपनी म्यान से तलवार निकाली और उद्घोष किया- "मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ, जो अकेले ही स्वतंत्रता-युद्ध लड़ूंगा, और युद्ध बराबर करता रहूँगा"। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस के उन सभी सदस्यों, सांसदों को, जो युद्ध के विरुद्ध थे, जो राष्ट्रपति के खिलाफ थे, उस महान व्यक्ति का अनुसरण करना पड़ा। आप यहां यह ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें कि यदि इन लोगों के हृदय और मन एकता के सूत्र में नहीं बंधे होते तो वे किस प्रकार अद्वितीय, महान कार्यो को सम्पादित कर सकते थे? हृदय और मन की एकता प्रमुख है। इस धरातल पर हम सभी एक हैं। कृपया इस एकता की अनुभूति कीजिये।

अब मनुष्य के भ्रातृत्व पर एक अन्य धरातल से विचार किया जाये। आप देखते हैं कि सुषुप्ति अवस्था में, गहन निद्रा की अवस्था में आप सभी एक समान हैं। निद्रा में साम्यावस्था या समता वाली स्थिति पैदा करने की शक्ति होती है। सुषुप्ति की अवस्था में कोई भेदभाव नहीं होता है,चाहे वह राजा हो या रंक। भले ही राजा कोमल और मखमली बिस्तरों पर नींद ले रहा हो, या भले ही एक आदमी सड़कों

पर बिना किसी बिस्तर के लेटे हुए नींद का स्वाद ले रहा हो, पर दोनों ही निद्रा में समान हैं। इन दोनों की सुषुप्ति अवस्था पर विचार कीजिये। क्या दोनों की सुषुप्ति अवस्थाओं में कोई अन्तर हैं? दोनों एक हैं, दोनों समान हैं। सुषुप्ति अवस्था में आप सब एक हैं, जाग्रत अवस्था में आपके सारे शरीर एक हैं, आपके मन और आपकी भावनायें, जो स्वप्नावस्था में घूमती रहती हैं, वे भी सब एक हैं।

अब हम इस पर विचार करें कि 'वास्तविक आत्मा' या 'वास्तविक सत्य' क्या है? ओह, बस एक ही आत्मा है, एक ही वास्तविक सत्य है, एक ही सच्ची आत्मा है। इसमें भेदभाव पैदा करने या उसकी अभिव्यक्ति करने की क्षमता, न तो किसी भाषा में है और न किसी व्यक्ति में। आत्मा में तो 'लहर' या 'तरंग' होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा में आप सभी एक हैं, अद्वय हैं। आप कह सकते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं है, मेरा पुत्र मेरा ही है, और वह व्यक्ति मेरा नहीं है। यदि आप इस प्रकार सोचते हैं तो आप भूल कर रहे हैं। ऐसा नहीं है। जिन लोगों को आप अपने से भिन्न कहते हैं, वे भी आपके उतने ही आत्मीय हैं जितने आपके स्वयं के आत्मज। क्या आप जानते हैं कि आप अपने पूर्व जन्मों में कितनी बार उनसे भाई, पुत्री, पुत्र या माता-पिता के रूप में सम्बद्ध रहे? क्या आप यह भी जानते हैं कि जिस व्यक्ति को अब आप शत्रु मानते हैं, हो सकता है कि वही आपके पूर्व जन्मों में कभी आपका पिता या पुत्र रहा हो? जो व्यक्ति इस जन्म में आपका पिता है, हो सकता है आगामी जन्म में आपका पिता न हो। आगामी जन्म में आप किसी दूसरे माता-पिता के यहां पैदा हो सकते हैं। आपकी

भावनायें और सहानुभूतियां निरन्तर बदल रही हैं, उनमें परिवर्तन हो रहा है। क्या यह नहीं होता है कि जिस शिशु ने एक ही छत के नीचे कुछ अन्य बालकों तथा बालिकाओं के साथ जन्म लिया हो, वह अपना सम्पूर्ण जीवन उनसे विलग होकर व्यतीत करे और अपने जीवन में उन्हें कभी नहीं देखे? क्या यह भी नहीं होता है कि इस देश में पैदा एक व्यक्ति दूसरे देशों में अपना पूरा जीवन बिता दे। ऐसा क्यों? इसका कारण यह है कि जो लोग दसरे देशों में पैदा हुए थे, वे उसके आध्यात्मिक सम्बन्धी रहे थे, तभी वह उनके साथ रह रहा होता है। इस प्रकार आप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि आपको "भ्रातृत्व" या "अपनेपन" की भावना केवल उन्हीं लोगों तक सीमित नहीं रखनी चाहिए, जिन्हें आज आप भाई-बहिन, पति-पत्नी, माता-पिता कहते हैं। निश्चित रूप से, सभी और प्रत्येक व्यक्ति आपकी अपनी आत्मा है। इस सत्य का साक्षात्कार कीजिए। विज्ञान इसे सिद्ध करता है।

अब राम अपने भाषण का उपसंहार कर रहा है। विज्ञान ने इसे सिद्ध कर दिया है कि जिस विशेष शरीर को आप अपना कहते हैं, वह एक है, क्योंकि आपके पैर का अंगूठा, आपके पैर की एड़ी से जुड़ा है और वह शरीर के अन्य भागों से सम्बद्ध है। आपके सम्पूर्ण शरीर के परमाणुओं में "निरन्तरता का विधान" व्याप्त है। इसलिए आपका शरीर एक है, अविछिन्न और अखण्ड है। इस आधार पर आप स्वयं देखते हैं कि वही एकमात्र शक्ति है, वही एकमात्र आत्मा है जो सिर से लेकर पैर तक आपके पूरे शरीर में पूर्णरूप से समायी हुई है और वही आत्मा आपके पैरों तथा आपके हाथों में समान रूप से विद्यमान है। आपने इस तथ्य का तो निरीक्षण किया ही होगा।

विज्ञान यह भी सिद्ध करता है कि इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न पदार्थ एक दूसरे से उसी प्रकार सम्बद्ध है जिस प्रकार यदि आप किसी अविकसित प्ररस या जीवद्रव्य अर्थात् 'प्रोटोप्लाज्म' को उससे अधिक विकसित प्ररस के पास रख दें और यदि इस अधिक विकसित प्ररस के पास उसको भी अधिक विकसित प्ररस के पास रख दें और यह क्रिया निरन्तर चलाते रहें तो आप अविछिन्न निरन्तरता को परिलक्षित करेंगे। इसी प्रकार यदि आप ब्रह्माण्ड की हर एक वस्तु को उसके सही क्रम में व्यवस्थित कर सकें तो आप देखेंगे कि इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ में निरन्तरता ही प्रवाहित हो रही है। आप देखेंगे कि सम्पूर्ण विश्व इस सर्वाधिक सत्य तथा अहस्तकक्षेपनीय और निर्विवाद "निरन्तरता" से जुड़ा है, उसी से स्थिर है। जब यह तथ्य सत्य है तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक, अभिभाज्य शरीर है। जिस प्रकार एक सकल शरीर के बारे में आपको यह विश्वास करना पड़ता है कि एक ही आत्मा आपके कानों और नाकों में समायी है, उसी प्रकार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बारे में, जो एक पूर्ण निरन्तर शरीर है, आपको ऐसा ही विश्वास करना होगा कि सूक्ष्मतम अल्प जीवाणु से लेकर महानातिमहान देवदूत तक यही एक आत्मा, यही वास्तविक सत्य परिपूर्ण रूप से व्याप्त है। इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट देवदूत की एकमात्र वही आत्मा है जो निकृष्टतम कीड़े-मकोड़े की आत्मा है। अतएव आत्मा के दृष्टिकोण से भी आप सभी एक हैं।

आपके सम्मुख "मनुष्य के भ्रातृत्व" को सिद्ध करने के लिए कुछ युक्तिसंगत तर्क कुछ सीमा तक प्रस्तुत किये गये हैं। राम तो इस सत्य के व्यावहारिक पक्ष को स्वीकार करने पर सर्वाधिक बल देता है।

इस तथ्य को आप बौद्धिक स्तर पर स्वीकार न भी करें, परन्तु नैसर्गिक नियम आपके ऊपर यह सत्य आरोपित कर देगा और फिर आपको उसे स्वीकार करना होगा। आपको अपने जीवन में इस सत्य का अनुशीलन करना पड़ेगा, अन्यथा आपकी मृत्यु होगी।

एक बार मनुष्य के हाथ के साथ यही हुआ, वह स्वार्थी बन गया। इसलिए वह भ्रातृत्व या एकता के विधान का उल्लंघन करना चाहता था। इस निमित्त हाथ ने इस तरह तर्क करना प्रारम्भ किया-"मैं ही हूँ, जो सारे दिन काम करता हूँ, परन्तु मेरे काम का पूरे का पूरा लाभ सम्पूर्ण शरीर का पेट तथा अन्य अंग उठा रहे हैं, मुझे कुछ भी नहीं मिलता है, मैं तो कुछ भी नहीं खाता हूँ। मुझे दांतों या मुंह को सभी लाभ हड़पने की अनुमति नहीं देनी चाहिये। सारे का सारा लाभ अब मैं ही उठाऊंगा।" इस तर्क से सहमत होकर हाथ ने सारे का सारा लाभ उठाने के अपने निर्णय को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। भोजन की मेज पर दूध, दही, गोश्त, सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ, फल तथा शाक-सब्जियां तथा इसी प्रकार की अन्य खाद्य-सामग्री जो परोसी गई थी, वह सब की सब हाथ अब अपने निर्णय के अनुसार अकेले ही खायेगा और केवल हाथ ही स्वयं उसका लाभ उठायेगा। हाथ ने एक नोंकदार पिन उठाया और हाथ में एक बड़ा छेद कर दिया, फिर उसमें दूध उड़ेल दिया, दूध का इन्जेक्शन लगवाया, जिससे भोजन का कोई लाभ मुंह को न मिल सके। नतीजा यह हुआ कि अन्ततः हाथ स्वयं बीमार पड़ गया और इस प्रक्रिया से हाथ को कोई लाभ नहीं पहुंच सका।

हाथ ने एक अन्य उपाय भी किया। उसने अपने को मोटा बनाने के लिए यह निर्णय किया कि वह शहद का सेवन करेगा। परन्तु शहद कहां से आता है? मधुमक्खी से। इसलिये हाथ ने मधुमक्खी को लिया और अपने आपको मधुमक्खी से कटवाया। इस प्रकार हाथ ने मधुमक्खी में निहित अधिकाधिक शहद का सेवन किया, वस्तुतः हाथ ने अपने में मधुमक्खी का जीवन समाहित कर लिया। आप तो जानते हैं कि जब मधुमक्खी काटती है, उसके बाद वह मर जाती है। फल यह हुआ कि हाथ बहुत मोटा हो गया, मधुमक्खी का सारा शहद हाथ में आ गया। ओह! फिर क्या हुआ? हाथ में भयंकर दर्द होने लगा, वह व्यथित हो गया। इससे हाथ को अत्यधिक पीड़ा होने लगी। अब तो हाथ को दर्द सहन करना पड़ा, पीड़ा को भुगतना पड़ा। तभी कुछ समय बाद हाथ को होश आया।

शोकाकुल होकर हाथ ने कहा- "मैं जो कुछ भी कमाता हूँ, उसका लाभ केवल मुझे ही नहीं मिलना चाहिये। मैं जो भी अर्जन करता हूँ, वह सब पेट में जाना चाहिए और उसके लाभ का उपभोग रक्त को, हाथ को, पैर को और शरीर के प्रत्येक अवयव को करना चाहिए। केवल तभी, केवल उसी अवस्था में मैं, अर्थात् हाथ लाभान्वित होगा। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।" सत्य यही है कि केवल इसी दृष्टिकोण से हाथ को लाभ पहुंच सकता था, अन्यथा नहीं। अब हाथ को यह विश्वास करने के लिये बाध्य होना पड़ा कि हाथ की आत्मा केवल हाथ की संकुचित सीमा तक ही आवद्ध नहीं है। हाथ की आत्मा उसी समय लाभान्वित होगी जब सम्पूर्ण शरीर की आत्मा को लाभ पहुंचेगा। हाथ

की आत्मा तभी लाभ उठा सकेगी जब आंखों की आत्मा को लाभ होगा। इस प्रकार हाथ की आत्मा वही है जो आंखों की आत्मा है, जो कानों की आत्मा है, जो सम्पूर्ण शरीर की आत्मा है। इसलिए यदि आपने उसी प्रकार स्वार्थी बनने की चेष्ठा की जो स्वार्थ हाथ प्रदर्शित कर चुका है तो आपको इसका परिणाम भुगतना होगा। जब हाथ ने अपनी स्वार्थपरता को क्रियान्वित करने की कोशिश की तो उसे कष्ट भुगतना पड़ा। यदि आप भी ऐसा करेंगे तो आपको भी दुख उठाने पड़ेंगे।

दैवी विधान आपको कभी भी अनुमति नहीं देता है कि आप अपनों से विलग हों। जब आप सोचते हैं कि आपकी एकता, आपका तादात्म्य अपने सभी साथियों से नहीं है, तभी सर्वाधिक पवित्र विधान का उल्लंघन होता है।

जो व्यापारी अपने ग्राहकों के हितों को अपना स्वयं का हित नहीं मानते हैं या जो दुकानदार यह मानते हैं कि उनके हित उनके ग्राहकों के हित से विलग है और एक नहीं है, उनसे ग्राहक लोग कतरायेंगे, उनसे दूर भागेंगे। फलतः ये व्यापारी, ये दूकानदार, अपने को बरबाद कर लेगे हैं। आपको अपने जीवन में इस तथ्य का साक्षात्कार करना है, केवल तभी, केवल उसी अवस्था में, आप उन्नति कर सकेंगे। हे हाथ! आपकी आत्मा समस्त ब्रह्माण्ड की आत्मा है, आपकी आत्मा आंखों की, पैरों की, दांतों की तथा शरीर के अन्य सभी अवयवों की आत्मा है। इस सत्य की अनुभूति कीजिये, इस सत्य का साक्षात्कार कीजिये।

यदि आप अपने को दुख-दारूण्य से परे रखना चाहते हैं तो हर एक

के साथ, सभी के साथ एकता की अनुभूति कीजिये। इसका साक्षात्कार कीजिये। आपका अभ्यास यह बतलायेगा; आपका स्वयं का अनुभव यही सिद्ध करेगा कि जब आप इस एकता की अनुभूति कर लेंगे और इसका साक्षात्कार कर लेंगे, जब आप अपने मन को इस सत्य पर केन्द्रित कर लेंगे तो आपके चारों ओर का प्रत्येक व्यक्ति आपकी सहायता के लिए स्वमेव बाध्य होगा, वह उसी प्रकार बाध्य होगा, जिस प्रकार यदि आपके शरीर के किसी अंग में खुजली हो रही हो या दर्द हो रहा हो तब आपका हाथ अपने आप शरीर के उसी स्थल पर आपकी सहायता करने के लिए खिंचा चला आता है। बस, आप खुजली की संवेदना मह़सूस करें, हाथ स्वतः ही उस जगह पहुंच जायेगा। इसीलिये आप यह साक्षात्कार करें कि आपकी आत्मा या अपनी स्वयं की 'अस्ति' की वास्तविक प्रकृति वही है जो आपके संगी-साथियों की है। आपके ये साथी आपके स्वयं की वास्तविक आत्मा की तरह आप से सम्बद्ध हैं। यह साक्षात्कार करने पर जब भी आपको आवश्यकता होगी, आपके सभी साथी तुरन्त ही आपके पास खिंचे चले आयेंगे और आपकी सहायता करेंगे। यह अनुभव का विषय है, अभ्यास का विषय है। यह ऐसा सत्य है जिस पर आप प्रयोग करके उसको सिद्ध कर सकते हैं। आप स्वयं सिद्ध हैं, स्वयं आत्मा हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

हमारे प्रकाशन

हिन्दी में:-

स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली

{ हमने राम की वाणी को हिन्दी में तीन संस्करणों में प्रकाशित किया है। पहला है- साधारण संस्करण, जिसके अन्तर्गत राम के व्याख्यानों और उपदेशों को १७ ग्रन्थों में लगभग ३००० से अधिक पृष्ठों में प्रकाशित किया गया हैं। पुस्तकालय संस्करण के अधीन प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है जिसकी पृष्ठ संख्या ६२५ है। अन्य भाग मुद्रणाधीन हैं। एकल व्याख्यान माला के अधीन एक-एक व्याख्यान ही संग्रहीत हैं।}

साधारण संस्करण

१. अन्तरात्मा
२. सफलता का रहस्य
३. आत्मानुभव
४. विश्वानुभूति
५. धर्म-तत्व
६. वेदान्त-शिखर से
७. भारत माता
८. अरण्य-संवाद
९. भक्तियोग रहस्य
१०. व्यावहारिक वेदान्त
११. आनन्द
१२. सुलह की जंगः गंगा तरंग
१३. शान्ति का उपाय
१४. स्वतंत्रता
१५. सनातन धर्म
१६. गणित और वेदान्त

पुस्तकालय संस्करण

भगवदानुभूति के अरण्य में (भाग-१)

अन्य ग्रन्थ

१. राम जीवन कथा
२. राम : वेदान्त-मूर्ति
लेखक-राम-पट्ट शिष्य
नारायण स्वामी
३. राम-पत्र
४. स्वामी राम चित्रावली
कार्ड कवर में:-
पक्की जिल्द में:-
५. राम हृदय
६. राम वर्षा
७. स्वामी राम की नीति कथाएं
८. स्वामी राम के चुने पद
९. स्वामी राम : संक्षिप्त परिचय

एकल व्याख्यान माला

१. उपासना
२. विश्वव्यापी एकता
३. घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं?
४. शान्ति का उपाय
५. मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है
६. आत्मानुभूति के अवलम्ब
७. जीवन का लक्ष्य
८. आनन्द अपने अन्तर में
६. सफलता की कुंजी
१०. आत्मा का विस्तार
११. शाश्वत जीवन का विधान
१२. धर्म का लक्ष्य
१३. सत्य का मार्ग
१४. 'ॐ' का पवित्र मंत्र
१५. वास्तविक आत्मा
१६. यज्ञ का भावार्थ
१७. मनुष्य का भ्रातृत्व
१८. उन्नति का मार्ग
१६. नकद धर्म
२०. पुरुषार्थ और प्रारब्ध
२१. हिन्दू समाज और समाजवाद
२२. धर्मोपदेशक राम

अन्य प्रकाशन

श्रीमद्भगवद्गीता (तीन भागों में)
भाष्यकार- नारायण स्वामी
(क) प्रथम भाग-प्रस्तावना
(ख) द्वितीय भाग (१ से ६ अध्याय तक)
(ग) तृतीय अध्याय (७ से १८ अध्याय तक)

आत्मदर्शी बाबा नगीना सिंह द्वारा रचित वेदान्त ग्रन्थ

(क) वेदानुवचन
(ख) आत्म-साक्षात्कार की कसौटी
(ग) भगवद्ज्ञान के विचित्र रहस्य
(घ) जगजीत प्रज्ञा
३. साधारण धर्म
४. गीता सिद्धान्त सार
५. आध्यात्मिक तरंग
६. नारायण स्वामी की जीवनी

उर्दू प्रकाशन

१. नारायण चरित्र
२. जगजीत प्रज्ञा

In English:

Complete works of Swami Rama
OR
"In Woods of God-Realizaton"

{ We have published Rama's words in three editions- Library, Popular and single Lecture. The Library Edition consists of Seven Volumes, containing about 3,000 page. }

Library Edition

1. Volume I
2. Volume II
3. Volume III
4. Volume IV
5. Volume V
6. Volume VI
7. Volume VII

Popular Edition

1. Pole Star Within
2. Fountain of Power
3. Aids to Realization
4. Cosmic Consciousness
5. Spirit of Religion
6. Sight-Seeing from the Hill of Vedanta
7. India, the Mother Land
8. Forest Talks
9. Mathematics and Vedanta
10. Snapshots and Impressions

Single Lecture Series

1. Upasana
2. Reality of Religion
3. Peace or War
4. Rama's Thoughts and Ecstasy
5. Flashes from Himalayan Heights
6. Way to Peace
7. Brotherhood of Man
8. Sanatana Dharma.
9. Idealism & Realism Reconciled
10. Real Self
11. Expansim of Self
12. Power that Wins
13. Law of Life Eternel
14. The Sacred Syllable-OM
15. Way to Success
16. Make your Homes Happy
17. Man-Master of his own Destiny

Other Publications

1. Story of Rama by Sardar Puran Singh
2. Parables of Rama
3. Heart of Rama
4. Life &Legacy of Swami Rama by B.N.Shargha
5. Poems of Rama
6. Life-Sketch of Swami Rama
7. Rama's Scattered Pearls by D.R. Saini
8. Swami Rama Tirth: Great Mystic Poet of Modern India
9. Practical Vedanta by B.L. Atreya
10. Swami Narain: Life sketch
11. Adi Bhagwat Gita
12. Krishna Speaks of Himself
13. Philosophy of Rama by Dr. H. Maheshwari
14. Songs of Enlightenment by Dr. Alston
15. Thus Spake Rama
16. Swami Rama Tirtha (Life) by S.R. Sharma

राम वेदान्त हैं, जहाँ ज्ञान मौन है और होता है 'ॐ' का प्रादुर्भाव। 'सर्वंखलविदम् ब्रह्म' और 'ब्रह्मोस्मि' की अनुभूति ही 'ॐ' में रमण है, 'ॐ' का साक्षात्कार है। स्वामी रामतीर्थ ने आदि शंकराचार्य, ईसामसीह आदि दिव्यात्मों की तरह ३३ वर्ष (१८७३-१६०६) की अल्पायु में वेदान्त को सिद्ध किया और आत्मानुभूति की मस्ती में 'ॐ' बने। ऐसे राम के प्रतिः-

स्वामी विवेकानन्द :

'...तीर्थराम (जो सान्यासाश्रम में रामतीर्थ के नाम से विख्यात थे) आपको अद्वैत का उद्घोष करना है।...'

महात्मा गांधी :

' ... स्वामी राम भारत की नहीं, विश्व की महानतम विभूति थे...'

महामना मालवीय :

'...स्वामी राम से अधिक आत्मानुभवी महात्मा से मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ...'

विनोवा भावे :

'...स्वामी राम भारतीय आत्मा के प्रतीक हैं...'

स्वामी शिवानन्द :

'...स्वामी राम जीवन्त, शाश्वत और अविनाशी हैं...'

लाला हरदयाल :

'...स्वामी राम सार्वभौमिक आत्मा हैं...'

सरदार पूर्ण सिंह :

'...स्वामी राम सजीव वेदान्त मूर्ति हैं...'

लाल बहादुर शास्त्री :

'...स्वामी राम से सर्वाधिक प्रेरण मिली...'

मोहम्मद इकबाल :

(सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा, के रचयिता) '...राम 'होश' हैं...'

शेख अब्दुल्ला :

'... स्वामी राम ने खुदा ढूँढ़ने का रास्ता दिखाया...'

प्रो० ताकाकुत्सू, टोकियो विश्वविद्यालय :

'...स्वामी राम वास्तविक धर्म हैं...'

अमरीका प्रेस :

"स्वामी राम अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी हैं। वे एक पैगम्बर, एक दार्शनिक, एक वैज्ञानिक और एक उपदेशक हैं।"